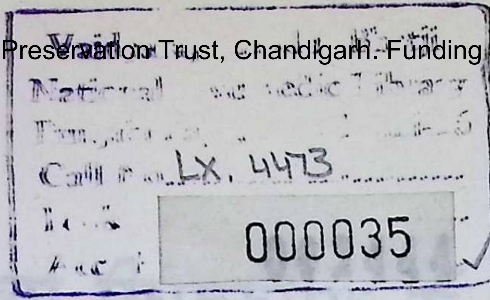
बिहार के आदिवासी
एवम्
जड़ी-बूटियाँ

बिहार के आदिवासी एवं जड़ी-बूटियां
(सचित्र)

लेखक :
डा० मायाराम उनियाल
वनौषधि विद्यापति (श्रीलंका)
आयुर्वेद पुनर्बसु (भारत)

बैद्यनाथ आयुर्वेद शोध संस्थान
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि०
श्री बैद्यनाथ भवन रोड, पटना (बिहार)



भूमिका :

आचार्य, वैद्यशिरोमणी, पद्मभूषण
बृहस्पति देव त्रिगुणा

प्रकाशक :

बैद्यनाथ आयुर्वेद शोध संस्थान
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि०
श्री बैद्यनाथ भवन रोड़, पटना - 800001

प्रथम संस्करण : एक हजार प्रतियाँ

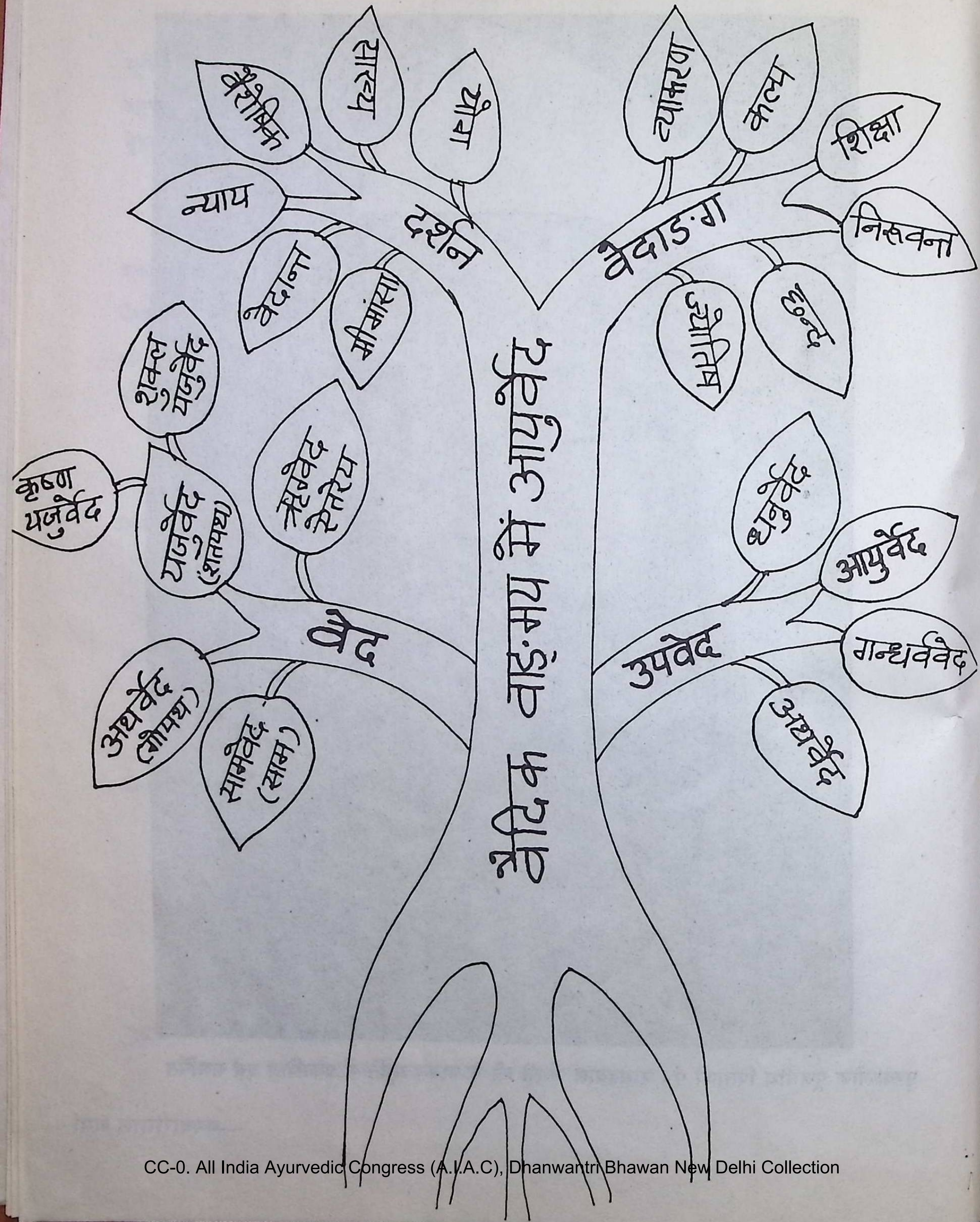
मूल्य : 275.00 रुपये

मुद्रक : प्रतीक इन्टरप्राईजेज,
ए-18, अवन्तिका, सैक्टर 2, रोहिणी, दिल्ली-110085



पुण्यश्लोक पूजनीय पिताजी पं० रामदयाल जोशी जी के पावन स्मृति में प्रकाशित एवं समर्पित

—बनवारीलाल शर्मा


वैदिक वाङ्मय में आयुर्वेद
दर्शन
न्याय
वैशेषिक
सांख्य
योग
वेदान्त
मीमांसा
वेदाङ्ग
व्याकरण
कल्प
शिक्षा
निरुक्त
छन्द
ज्योतिष
वेद
शुक्ल यजुर्वेद
कृष्ण यजुर्वेद
यजुर्वेद (शतपथ)
ऋग्वेद ऐतरेय
अथर्ववेद (गोपथ)
सामवेद (साम)
उपवेद
धनुर्वेद
आयुर्वेद
गन्धर्ववेद
अर्थवेद

विषय-अनुक्रमणिका

नवभारत टाइम्स पटना, शुक्रवार, १६ अक्तूबर, १९८७

सन्देश

बिहार की वनौषधियों पर जिस गोष्ठी का आयोजन दिनांक १६-१७ अक्टुबर, १९८७ को किया जा रहा है उससे देशी-चिकित्सा की पद्धतियों को, जन-जातियों की चिक़ित्सा प्रणाली को और वनस्पतिशास्त्र की इस शाखा को बहुत लाभ और प्रोत्साहन मिलेगा।

मुझे विश्वास है कि इस गोष्ठी का स्तर वैज्ञानिक और शोधपूर्ण होगा और विशेषकर बिहार की लोकोपयोगी वनौषधियां और उनके उपयोग प्रकाश में आएंगे।

इस गोष्ठी की सफलता हेतु मेरी शुभकामनाएं।

ह./-

(बिन्देश्वरी दूबे)

हर्ष का विषय है कि भारत सरकार और बिहार सरकार के संयुक्त तत्वावधान में पटना में दिनांक १६-१७ अक्टुबर, १९८७ को, बिहार की वनौषधियों पर कार्यशाला का आयोजन किया गया है।

इसमें वनस्पतिशास्त्र के विद्वान तथा आयुर्वेद, यूनानी, होम्योपैथी तथा घरेलू इलाज से संबंधित विशेषज्ञ भाग लेंगे। छोटानागपुर और संथाल परगना की जन-जातियों की चिकित्सा प्रणाली के प्रतिनिधि भी भाग लेंगे।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस राज्य के स्वास्थ्य तथा पर्यावरण के हित में बहुत से उपयोगी निष्कर्ष निकलेंगे एवं सर्वसाधारण इससे लाभान्वित होंगे।

ह०/-

(दिनेश कुमार सिंह)

सन्देश

बिहार की वनौषधियों पर जिस कार्यशाला का आयोजन दिनांक १६-१७ अक्टुबर, १९८७ को पटना में किया गया है उसमें भाग लेने वाले सभी लोगों को मेरी शुभकामना है।

बिहार के विस्तृत मैदानों एवं वन-क्षेत्रों में जो पेड़-पौधे हैं उन्हीं से प्राप्त भोजन और औषधि पर इस राज्य की जन-जातियां मुख्यतः निर्भर है। कई जड़ी-बूटियां लुप्त होती जा रही है जो एक चिंतनीय विषय है।

मुझे आशा एवं विश्वास है कि इस कार्यशाला में उन सभी पेड़ पौधों के अनुरक्षण एवं संवर्द्धन के उपाय सोचे जाएंगे जिनसे मनुष्यों और मवेशियों को स्वस्थ रखा जा सके और आवश्यकतानुसार उनकी बीमारियों के इलाज में भी उनका उपयोग हो सके।

(भुखला भगत)
मंत्री, वन एवं पर्यावरण विभाग,
बिहार, पटना

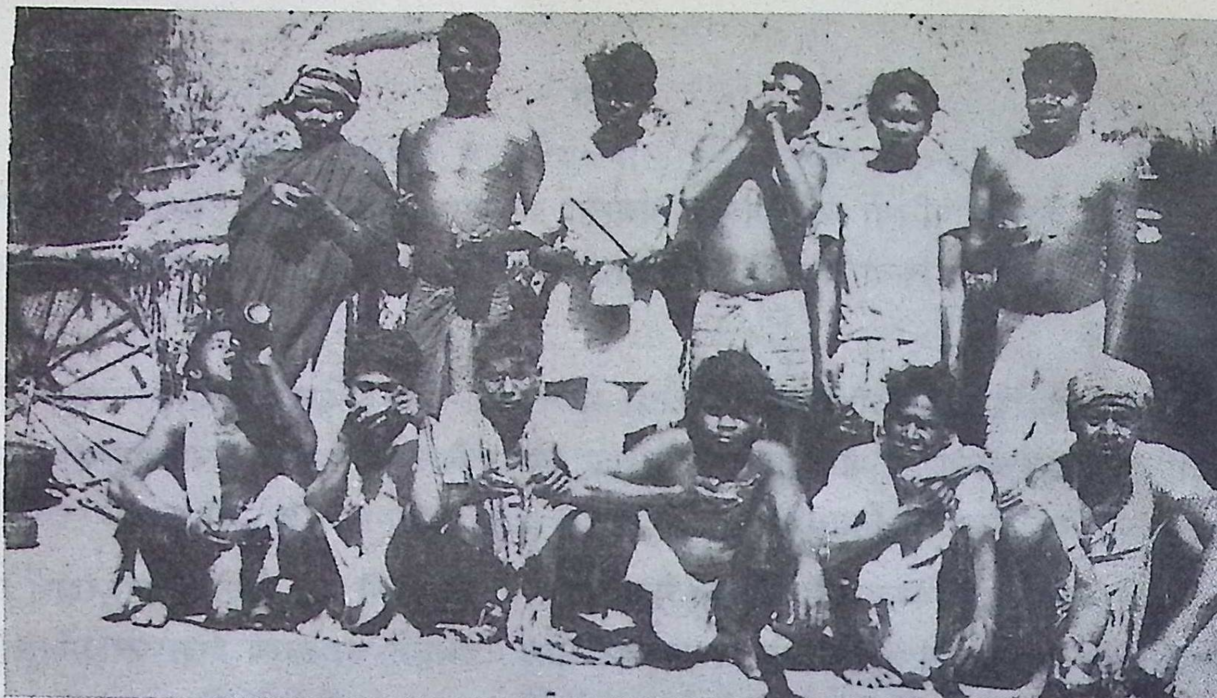
सन्देश

बिहार अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण वनौषधियों का विपुल भण्डार है। वनौषधियों के उपयोग की ओर ध्यान देना आवश्यक है।

यह हर्ष की बात है कि स्वास्थ्य विभाग ने दिनांक १६-१७ अक्टुबर, १९८७ को पटना में बिहार की वनौषधियों पर एक कार्यशाला का आयोजन किया है। मुझे विश्वास है कि इस कार्यशाला में वनौषधियों के विस्तृत उपयोग पर नई रोशनी पड़ेगी।

कार्यशाला की सफलता के लिए मैं अपनी शुभकामनाएं भेजता हूं।

(आर. श्रीनिवासन)
मुख्य सचिव, बिहार







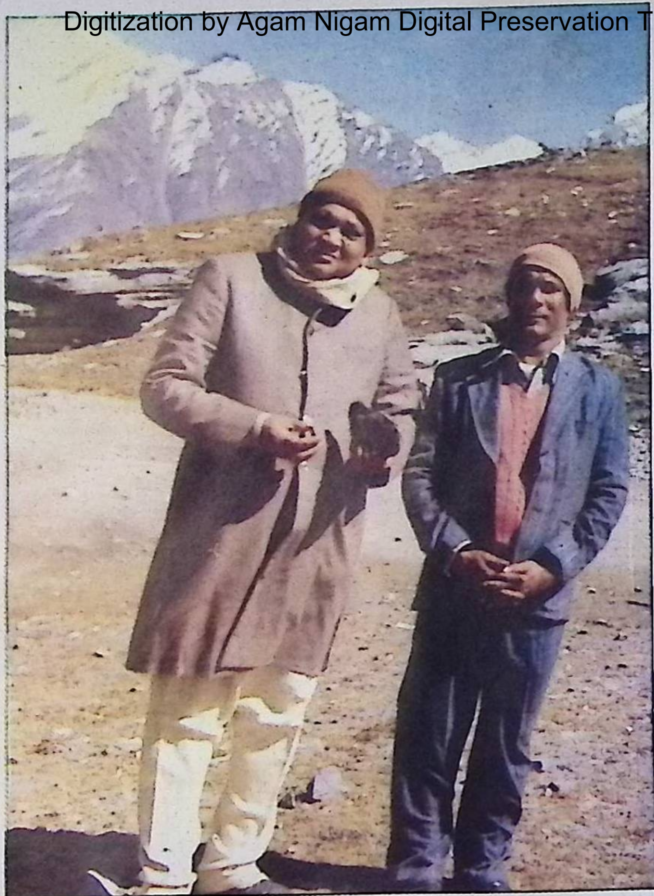


↑ छोटा नागपुर एवं संथाल परगना के आदिवासी जनजातियाँ

← डा. बलवन्त सिंह, डा. के.सी. चुनेकर एवं डा. मायाराम उनियाल बनौषधि अन्वेषण करते हुये परिलक्षित

प्रयोगात्मक अभिनव द्रव्यगुण विज्ञानम् नामक ग्रन्थ को महामहिम राष्ट्रपति डा॰ शंकरदयाल शर्मा जी को भेंट करते हुये श्री बैद्यनाथ आर्युवेद भवन के प्रबन्ध निदेशक श्री बी. एल. शर्मा एवं डा. मायाराम उनियाल परिलाक्षितः। ▲

संस्कृत साहित्य में पर्यावरण एवं कालिदास की बनस्पतियाँ नामक रचना का विमोचन करते हुये महामहिम राज्यपाल श्री मोतीलाल बोरा एवं रचना के लेखक डा. मायाराम उनियाल परिलक्षितः ▼



हिमाचल प्रदेश रोटांगपास ३,८०० मीटर की ऊंचाई पर वैद्यशिरोमणि बृहस्पतिदेव त्रिगुण के साथ वैद्य डा. मायाराम उनियाल जड़ी बूटियों की पहिचान करते हुये परिलक्षितः

भव्य Dillenia indica Linn.

भूमिका

आयुर्वेद विश्व के प्राचीनतम चिकित्सा विज्ञानों में से है क्योंकि इसके मूल आधार वेद हैं, जो विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ माने जाते हैं। ईसा के बाद बारहवीं शताब्दी तक इस पद्धति का निरन्तर विकास होता रहा है। एशियाई देशों से छात्र और अन्य पद्धतियों के चिकित्सक आयुर्वेद की शिक्षा प्राप्त करने के लिए तक्षशिला और नालन्दा के विख्यात विश्वविद्यालयों में आते थे। तेरहवीं शताब्दी से आयुर्वेदीय संस्थाओं का विभिन्न कारणों से क्रमशः ह्रास होना शुरू हुआ। इसके बावजूद भी पिता-पुत्र, गुरू-शिष्य परम्परा से आयुर्वेद की शिक्षा चलती रही। इन विपरीत परिस्थितियों में भी वैद्यों ने आयुर्वेद को जीवित रखा। यही कारण है कि आयुर्वेद संसार का न केवल प्राचीनतम चिकित्सा विज्ञान है अपितु जीवन का विज्ञान भी है। अतैव स्वस्थ एवं आतुर दोनों के लिए उपयुक्त त्रिसूत्रात्मक शाश्वत विज्ञान में आयुर्वेद की महत्ता सर्वोपरि है, जिसका उपदेश स्वयं पितामह ब्रह्मा ने जन-हित में किया है। यथा -

हेतु लिङ्गौषधंज्ञानं स्वस्थातुर परायणम्।
त्रिसूत्रं शाश्वतं पुण्यं बुबुधेयंपितामहः ॥ **॥ - चरक सूत्रस्थान ॥**

हेतु ज्ञान में व्याधियों के उत्पन्न होने का कारण बताया गया है। शरीरस्थ दोषों के संचय, प्रकोप, प्रसर, स्थान-संश्रय, व्यक्ति तथा भेदावस्था में जो लक्षण शरीर में उत्पन्न होते हैं उसे लिंगसूत्र कहते हैं। शरीर को स्वस्थ रखने और शारीरिक विकृति को दूर कर शरीर में दोषों की साम्यावस्था औषध द्वारा होती है, जिसे औषध ज्ञान कहते हैं। अतः तीनों सूत्रों में औषध (निघण्टुशास्त्र) का महत्व विशेष है। आयुर्वेदिक चिकित्सा के लिए द्रव्यगुण विज्ञान का विशेष महत्व है। इसलिए आयुर्वेद के अध्ययन-अध्यापन एवं अनुसंधान में द्रव्यगुण (निघण्टु) का महत्वपूर्ण स्थान है। इसलिए आयुर्वेद के चिकित्सकों के लिए इसका ज्ञान होना आवश्यक है, क्योंकि प्राचीन काल से ही द्रव्यगुण शास्त्र को निघण्टु कहा गया है तथा इसी आधार पर संहिता ग्रंथों के बाद कितपय निघण्टु ग्रंथों की रचना की गई है। जिसमें धन्वन्तरि-निघण्टु, राजनिघण्टु, कैय्यदेव-निघण्टु, मदनपाल-निघण्टु, भावप्रकाश निघण्टु आदि निघण्टु प्रमुख हैं। यथा -

निघण्टुना बिना वैद्यो, विद्वान् व्याकरणं बिना।
अनभ्यासेन धानुष्क त्रयोहास्यस्य भाजनम् ॥ **॥ राजनिघण्टु ॥**

अतैव चिकित्सक को द्रव्यगुण का ज्ञान होना अनिवार्य है। आचार्य चरक ने चिकित्सा की सफलता के लिए चतुष्पाद्-भिषक् का उल्लेख करते हुए चिकित्सक के बाद रोग निवारण के लिए जड़ी-बूटियों की पहिचान एवं गुण-कर्मो की महत्ता पर जोर दिया है।

वैदिक काल से ही मानव ने जड़ी-बूटियों द्वारा रोगों की चिकित्सा करना तथा रोग से मुक्ति दिलाने में सफलता प्राप्त की है। आज भी भारत के कतिपय सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाले आदिवासी जनजातियां लोक प्रचलित कतिपय स्थानिक जड़ी-बूटियों द्वारा सफल चिकित्सा करने में सक्षम हैं। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए जनश्रुतियों पर आधारित बिहार प्रदेश के छोटा-नागपुर एवं संथाल-परगना के आदिवासी जन-जातियों में लोक प्रचलित उपयोगी वनस्पतियों की विषय सामग्री लेखक ने आलेख रूप में तैयार की है जोकि सराहनीय है।

बिहार प्रदेश का चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में भी विशेष सहयोग रहा है। नालन्दा (बिहार) विश्वविद्यालय के भग्नावशेष विशेषतः रसशाला के अवशेष से यह स्पष्ट होता है कि इस प्रान्त में इस चिकित्सा विज्ञान संबंधी उपक्रम काफी समृद्ध थे। आयुर्वेद वाङ्गमय में वर्णित अनेक आचार्यों में से आचार्य जीवक विख्यात हैं जिनकी शिक्षा तक्षशिला में हुई। बोधि-सत्व नागार्जुन का भी कार्य क्षेत्र बिहार रहा। आठवीं सदी के रससिद्ध रसविद्या के आचार्य नागार्जुन भी नालन्दा विश्वविद्यालय के कुलपति थे। इस सिद्ध नागार्जुन के बाद आचार्य सरभ भी इसी विश्वविद्यालय के कुलपति बने ऐसा उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार बिहार प्रदेश के कतिपय वर्षों के अंतरालों के बाद पं० ब्रजबिहारी मिश्र एवं पं० हजारीलाल शुक्ल आदि चिकित्साविदों का कार्य उल्लेखनीय है। छपरा निवासी रूपलाल वैश्य का रामनिघण्टु एवं अभिनव बूटी-दर्पण का वैद्य समाज में बहुत आदार हुआ। तदनन्तर श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद आयुर्वेद भवन लि० के संस्थापक पं० रामदयाल जोशी एवं पं० रामनारायण शर्मा वैद्य जी के सौजन्य से ठा० बलवन्त सिंह जी द्वारा वर्ष १९४९ में वनौषधि सर्वेक्षण यात्राएं की और "बिहार की वनस्पतियां" नामक लेखमाला का सचित्र आयुर्वेद में प्रकाशन किया। वैद्य मायाराम उनियाल ने भी समय-समय पर इस क्षेत्र में कतिपय वनौषधि सर्वेक्षण यात्राएं की। केन्द्रीय आयुर्वेद एवं सिद्ध अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के अधीनस्थ क्षेत्रीय आयुर्वेद अनुसंधान संस्थान, पटना, इस प्रदेश के वनौषधि सर्वेक्षण कार्य में संलग्न है। तथापि वैद्य मायाराम उनियाल द्वारा विरचित पुस्तक का प्रकाशन सामयिक आवश्यकता की पूर्ति की दिशा में एक प्रशंसनीय प्रयास है। वैद्य उनियाल इस विषय के न केवल अधिकारी विद्वान हैं, अपितु उन्होंने स्वयं दुर्गम पर्वतांचलों-सिक्किम, लेह-लद्दाख, हिमाचल प्रदेश, अरुणाचल प्रदेश एवं मैदानी भागों बिहार, मध्य प्रदेश, उत्तराखण्ड हिमालय, बुन्देलखण्ड आदि वन प्रदेशों का अनेक बार भ्रमण किया और कतिपय संशोधनात्मक लेखों का प्रकाशन किया है तथा द्रव्यगुणशास्त्र पर उपयोगी ग्रंथ प्रकाशित किये हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में छः सौ से भी अधिक वनस्पतियों के संस्कृत, स्थानिक, बोटेनिकल नामों के साथ-साथ स्थानिक प्रयोगों के विषय में विद्वान् लेखक ने विशेष उल्लेख किया है। आशा है यह प्रकाशन बिहार राज्य के आदिवासी क्षेत्र में प्रचलित जड़ी-बूटियों के विषय में

महत्वपूर्ण उपलब्धि होगी। ऐसे महत्वपूर्ण प्रणयन के लिए वैद्य मायाराम उनियाल बधाई के पात्र हैं।

पुस्तक के प्रकाशन के लिए श्री बनवारीलाल शर्मा प्रबन्ध निदेशक, श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन, पटना का विशेष रूप से धन्यवाद करना चाहूंगा जिनकी निष्ठा एवं प्रयास से आयुर्वेद की महत्वपूर्ण सामग्री का प्रकाशन किया गया है। अतः मुझे विश्वास है कि आयुर्वेद जगत एवं अनुसंधान के क्षेत्र में इस पुस्तक का यथोचित स्वागत होगा।

दिनांक : जनवरी, १९९५ **(वैद्यशिरोमणि पद्मभूषण आचार्य बृहस्पतिदेव त्रिगुणा)**
अध्यक्ष,
वैज्ञानिक परामर्शदात्री समिति (आयुर्वेद),
केन्द्रीय आयुर्वेद एवं सिद्ध अनुसंधान परिषद,
एवं अध्यक्ष-शासी-निकाय राष्ट्रीय आयुर्वेद विद्यापीठ, नई दिल्ली
(भारत सरकार) नई दिल्ली।

लेखकीय-प्राक्कथन

मानव समाज एवं उसकी संस्कृति से वनस्पतियों का घनिष्ठ सम्बन्ध अति प्राचीन काल से है। मानव के समाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास क्रम के सभी स्तरों एवं आनुवांशिक परिस्थितियों में वनस्पतियों का प्रमुख योगदान रहा है तथा मनुष्य ने भी अपना आभार प्रदर्शन कर इन वनस्पतियों का उचित सम्मान द्वारा पूजित किया है। इसी अनुबन्ध में वृक्ष पूजन की मान्यता वैदिक काल से चली आ रही है। भारत ने बहुत प्राचीनकाल से ही पेड़ पौधों का महत्व पहचान लिया था। इसलिए हमारे यहां पूजा-अर्चना, खान-पान, वस्त्र, औषध, निवास, जन्म-मरण एवं प्राणिमात्र के जीवन में वनस्पतियों का विशेष महत्व स्वीकार किया है।

पृथ्वी पर जीव-जन्तुओं के आने से पूर्व वनस्पति जगत का आविर्भाव हुआ। इसलिये पौधों की दुनियां अग्रगामी है। इस वनस्पति शास्त्र ने प्राणिमात्र के जीने के लिये रास्ता बनाया है। इन पौधों ने भूमि को हरा-भरा और सुन्दर बनाना ही शुरू नहीं किया बल्कि उसे उर्वरक भी बनाया है। यह भी कहा जाता है कि पादप के जीवन का प्रारम्भ समुद्र से हुआ है। सम्भवतः हजारों वर्ष तक पौधे समुद्र में ही रहे होंगे बाद में पृथ्वी का धरातल उसके लायक बन गया तो पौधे स्थल की और अग्रसर हुये। जैसी भूमि, और मृदा रही जहां का जैसा मौसम रहा उसी के अनुरूप घास, पेड़, पौधे, फल, फूल आदि वनस्पतियों ने अपना स्थान ग्रहण किया और धीरे-धीरे वन, उपवनों में परिवर्तित हो गये। इनमें, वन्य जीव-जन्तु, पशु-पक्षियों और हवा-पानी के संतुलन में पूर्ण योगदान रहा है। पशु-पक्षी आदि जीव-जन्तुओं द्वारा बीजों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने में सहायक रहे हैं! इस तरह पेड़ पौधों को दूसरे स्थानों पर फलने-फूलने का अवसर मिला तथा पर्यावरण के संतुलन बनाये रखने में सार्थक सिद्ध हुये। आदिकाल से यह देखा गया है कि मानव सृष्ठी के साथ-साथ मानव रोगमुक्ति हेतु जड़ी-बूटियों का उपयोग करता आ रहा है। मणी-मंत्र एवं परम्परागत जड़ी बूटियों द्वारा मानव आदि काल से चिकित्सा करते चला आ रहा है। इसी आशय को ध्यान में रखते हुये लोक प्रचलित एवं जनश्रुति पर आधारित आदिवासी जन जातियों में प्रचलित छोटा नागपुर एवं संथाल परगना क्षेत्र की जड़ी-बूटियों पर प्रकाश डाला गया है। प्रस्तुत पुस्तक के प्रारम्भ में इस क्षेत्र के बनों आदिवासी जड़ी बूटियां, आदिवासी जनजातियां जीवोपयोगी-वनस्पतिशास्त्र (ईथनोवोटनी) एवं संस्कृत साहित्य में नैसर्गिक वन एवं औषधीय पौधों के विषय में जानकारी दी गई है।

बिहार वनौषधि भ्रमण कार्यक्रम सन् १९४९ में श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के संस्थापक श्री पं० रामनारायण शर्मा वैद्य ने सर्व प्रथम ठा० बलवन्तसिंह जी द्वारा सम्पादित किया गया जो कि बिहार की वनस्पतियां लेखमाला क्रमशः सचित्र आयुर्वेद में प्रकाशित की गई। मुझे भी कई बार छोटानापुर एवं संथाल परगना के रांची, सिंग-भूमि, पलामू, पूर्णियां, राजमहल, गोंड, डुमका आदि कतिपय आदिवासी क्षेत्रों में वनोषधि

सर्वेक्षण करने का अवसर मिला । मार्च १९९९ को रांची में आयोजित आदिवासी जनजातियों में लोक प्रचलित जड़ीबूटियों की कार्यशाला में भाग लेने का सौजन्य मिला । इस कार्यशाला का आयोजन केन्द्रीय स्वास्थ मंत्रालय भारत सरकार एवं बिहार सरकार के स्वास्थ्य कल्याण विभाग द्वारा किया गया । इस अवसर पर आदिवासी जनजातियों द्वारा प्राकृतिक परम्परागत जड़ी बूटियों की प्रदर्शनी का विशेष महत्व था । इन लोगों में लोक प्रचलित स्थानिक जड़ी-बूटियों का संकलन भी इस पुस्तक में किया गया है । इसके अतिरिक्त ईथनोवोटीनी (जीवोपयोगी वनस्पतिशास्त्र) पर किये औषध उपयोगी प्रकाशित लेखों की सहायता से भी पुस्तक तैयार करने में ली गई । लेखन सामग्री में ६०० से भी अधिक वनस्पतियों का समावेश किया गया है । प्रस्तुत सामग्री में वनोषधियों के संस्कृत, स्थानिक, लेटिन, नामों का उल्लेख किया गया है । कतिपय अज्ञात एवं संदिग्ध वनस्पतियों का निर्णयात्मक टिप्पणी वनस्पतियों के प्रसंग में स्पष्ट किया गया है । आशा है कि यह पुस्तक बिहार राज्य के आदिवासी क्षेत्र में प्रचलित जड़ी-बूटियों की उपलब्ध सामग्री में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि होगी ।

लेखक श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० के संयुक्त प्रबन्ध निदेशक श्री बनवारी लाल शर्मा का हृदय से आभार प्रकट करता है जिनके सतत प्रेरणा इस उत्साह वर्धन के फलस्वरूप इस सामग्री का पुस्तक के रूप में तैयार करने में बल मिला । पुस्तक की भूमिका लेखक हेतु आचार्य बृहस्पति देव त्रिगुणा जी का हृदय से आभार प्रकट करता हूँ जिनका सतत स्नेह मेरे पर रहा है । लेखन कार्य के परामर्श एवं प्रोत्साहन हेतु लेखक निदेशक केन्द्रीय आयुर्वेद एवं सिद्ध अनुसन्धान परिषद (केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय भारत सरकार) नई दिल्ली का हृदय से आभार मानता है । जिनके परामर्श से स्थानिक जड़ी बूटियों के नाम एवं स्थानिक प्रयोग (फोक्लोर) की जानकारी उपलब्ध हुई है । लोक प्रचलित परम्परागत ज्ञान कहीं से भी प्राप्त करना बुरा नहीं है, क्योंकि बुद्धिमान मनुष्य के लिए संपूर्ण लोक एवं प्राणी आचार्य है । वे हर प्राणी से कुछ न कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं । यथा-कृतस्नों हि लोको बुद्धिमतामाचार्य, (चरकः) ।

रेखाचित्र तैयार करने में मेरी सुपुत्री कुमारी सीमा उनियाल एवं पुत्रवधु विजयलक्ष्मी उनियाल का सहयोग मिला उसके लिये बधाई देता हूँ । अन्त में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप में मैं अपनी पत्नी सत्तेश्वरी देवी उनियाल एवं सभी सहयोगी मित्रों को धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने मुझे समय-समय पर उत्साहित किया है । मेरा यह प्रयत्न कहाँ तक सफल हो सका यह तो समीक्षकों एवं विद्वानों के निर्णय पर निर्भर है । लेखन त्रुटियों के लिये पाठकों से विनम्र भाव से क्षमा चाहता हूँ । यह प्रयास आयुर्वेद विज्ञान के प्रसार में उपयोगी सिद्ध हुआ तो स्वयं को सफल समझूंगा ।

॥ इत्यलम् ॥

बी-९८, अवन्तिका, रोहिणी, सेक्टर - I, नई दिल्ली-११००८५
जनवरी-१९९५

विदुषां विनीतः
(वैद्य मायाराम उनियाल)

चिकित्सा पद्धतियों के प्रचार-प्रसार पर जोर

पटना १६ अक्तूबर। स्वास्थ्य मंत्री श्री दिनेश कुमार सिंह ने आज यहां कहा कि दो हजार ईस्वी तक सबके लिए चिकित्सा का लक्ष्य तभी प्राप्त किया जा सकता है जब भारतीय चिकित्सा पद्धतियों एवं इसकी दवाओं का पर्याप्त प्रसार किया जाय। उन्होंने कहा कि यदि हमें सबको चिकित्सा सुविधा उपलब्ध करानी है तो हमें उन चिकित्सा पद्धतियों पर नये ढंग से सोचना होगा जिसे धन्वतरि, चरक एवं सुश्रुत आदि विद्वानों ने गरिमा मण्डित किया था।

भारत सरकार के सहयोग से बिहार के स्वास्थ्य एवं वन तथा पर्यावरण विभाग के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित द्विदिवसीय कार्यशाला का उद्घाटन करते हुए स्वास्थ्य मंत्री श्री सिंह ने कहा कि इन ऋषियों ने एक ऐसी विलक्षण चिकित्सा पद्धति का सृजन किया जिसकी दवायें स्थानीय स्तर पर उत्पन्न पेड़-पौधों झाड़ियों आदि से तैयार होती हैं और यह आज भी आयुर्वेदिक, यूनानी तथा अन्य स्थानीय चिकित्सा पद्ध.तेयों का आधार है।

श्री सिंह ने कहा कि इन औषधीय पेड़-पौधों एवं वनस्पतियों के विकास एवं उत्पादन हेतु राष्ट्रीय स्तर पर संस्थान स्थापित किया जाना चाहिये जो शोध कर राज्यों को यह सलाह दे सके कि किस क्षेत्र में किस औषधीय वनस्पति का उत्पादन हो सकता है। उन्होंने कहा कि राज्य में वनौषधियों के निर्माण हेतु प्रयोगशालों एवं शोध संस्थानों की स्थापना पर भी विचार किया जाना आवश्यक है ताकि दवाओं की स्तरीयता को बरकरार रखा जा सके।

उद्घाटन समारोह की अध्यक्षता करते हुए भारत सरकार के स्वास्थ्य सचिव श्री एस. एस. धनोआ ने कहा कि विश्व में बहुत कम देश हैं जहां भारत इतनी प्रचूर मात्रा में वन्य औषधियां मौजूद हैं। उन्होंने कहा कि आदिवासी क्षेत्रों में भी इस प्रकार की कार्यशालायें आयोजित की जानी चाहिये ताकि विचारों के आदान-प्रदान से महत्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में आ सकें। उन्होंने कहा आदिवासी क्षेत्रों में कई ऐसी स्थानीय वन्य औषधियां प्रचलित हैं जिनका विलक्षण प्रभाव है। इनमें कई औषधियों पर शोध भी चल रहा है।

श्री घनोआ ने कहा कि केन्द्र सरकार इन औषधीय पेड़ पौधों के संरक्षण एवं संवर्द्धन हेतू पूर्ण सचेष्ट है लेकिन इसकी सफलता राज्य सरकारों के सहयोग पर ही निर्भर करती है। केन्द्र उन्हें हर संभव सहायता देने को तैयार है। इस अवसर पर भारत सरकार के औषधीय सलाहकार डाक्टर एस. के. मिश्र ने बताया कि अगली सुनियोजित कार्यशाला मार्च में रांची में आयोजित होगी।

आर्यावर्त, पटना १७ अक्तूबर १९८७

वनौषधियों की खेती को प्रोत्साहन जरूरी

बनवारीलाल शर्मा, प्रबन्ध निदेशक श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन, पटना

रोग विनाशक औषधियों का मूल स्रोत प्रायः वनौषधियां है। आयुर्वेद चिकित्सा का तो ये मूल आधार ही है। वन-संपदा की दृष्टि से भारत के समान परिपूर्ण और समृद्ध शायद ही कोई देश हो। इसी कारण वनौषधि विषयक ज्ञान और उसका प्रयोग इस देश में अनादिकाल से होता आ रहा है। हमें इस बात का गर्व है कि हमारे बिहार प्रांत में भी वनौषधियों का भंडार है। आज से लगभग ३७ वर्ष पूर्व श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन द्वारा बिहार में वनौषधियों का सर्वेक्षण आयुर्वेद जगत के प्रसिद्ध विद्वान एवं वनस्पति विशेषज्ञ ठा० बलवंत सिंह, एम. एस. सी., आयुर्वेदाचार्य, प्रोफेसर आयुर्वेदिक कालेज, काशी हिंदू विश्वविद्यालय एवं वैद्य मायाराम उनियाल से कराया गया। इस सर्वेक्षण पर प्रतिष्ठान ने खर्च किया तथा सर्वेक्षणोपरांत प्रतिष्ठान द्वारा बिहार की वनस्पतियां नामक एक पुस्तक का प्रकाशन कराया गया था, जिसमें बिहार में पाई जाने वाली कतिपय वनस्पतियों का गुण धर्म, उनका परिचय और विभिन्न रोगों पर उनका उपयोग आदि का वर्णन किया गया है। बिहार में इतनी प्रचुर मात्रा में वनस्पतियां उपलब्ध होने पर भी हम उन्हें समय पर प्राप्त नहीं कर पाते। इसका एक कारण यह है कि हम उनकी किसी विशेष स्थान पर सुव्यवस्थित रूप से कराए और जो व्यक्ति इन वनौषधियों को उत्पन्न करना चाहते हों या खेती करना चाहते हों, उनको आवश्यक सहयोग दें। आयुर्वेदिक औषधि निर्माताओं को वे वनौषधियां सरलता से उपलब्ध हो ऐसी व्यवस्था करें। आयुर्वेद की सेवा में लगे औषध निर्माताओं को जमीन आदि की सुविधा और आर्थिक सहायता देकर भी इस कार्य को किया जा सकता है। इस प्रकार वनौषधियों पर आधारित औषधिओं की शुद्धता एवं प्रामाणिकता बनी रहेगी। क्योंकि उन्हें शुद्ध एवं प्रामाणिक मूल द्रव्य सरलता से उपलब्ध हो जाएंगे। यद्यपि बिहार में भारत सरकार द्वारा आयुर्वेदिक जड़ी-बूटियों का सर्वेक्षण किया जा रहा है, किन्तु इस विषय पर अनुसंधान कार्य विशेष नहीं हो रहा है।

एक बड़ी बात ध्यान देने की है कि अभी भी कई जड़ी-बूटियां विवाद का विषय बनी हुई है। ऐसी औषधियों के संबंध, में उनकी सही पहचान और उनके गुण धर्मों का सही निरूपण करने की अत्यंत आवश्यकता है। अतः मेरे विचार से आयुर्वेद के वनस्पति विशेषज्ञों को एक जगह बैठकर निर्णय लेना चाहिए सरकार ऐसे आयोजन अपनी ओर से कराए तो कार्य में प्रगति होगी।

मैं बिहार में पाई जानेवाली वनौषधियों पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक समझता हूँ। ये वनौषधियां बिहार प्रांत के जंगलों एवं पहाड़ों पर पाई जाती है। जैसे राजगीर, रांची, पलामू, छोटानागपुर, डालटेनगंज एवं जमुई के पहाड़ों एवं जंगलों में। उदाहरण के लिए राजगीर, कमीला, अतिबला, बबूल, अपामार्ग, शिरीस, शतावरी, कचनार, चीरौंजी आदि अनेक प्रकार के पेड़ पौधे एवं जड़ी-बूटियां उपलब्ध है, जिसका उपयोग हमारे दैनिक जीवन

में होता रहा है । बिहार में कुछ ऐसी जड़ी-बूटियां हैं, जिनका उपयोग दवा के रूप में किया जाता है, किन्तु इसकी जानकारी सभी लोगों को नहीं है । उदाहरणार्थ यहां के पहाड़ों पर एक पौधा मिलता है जिसका नाम बड़ी-दूधिया हैं इसका बोटेनीकल नाम इफोरवीया हीरटा है । संथाली एवं पहाड़ी लोग इसकी जड़ का उपयोग वमन रोकने के लिए करते है और पंचांग को स्तन्यवर्द्धक के रूप भी, इस प्रकार की अन्य वनस्पतियां भी है, जिसका उपयोग सर्वसामान्य समाज नहीं जानता है । इस विषय में अनुसंधान होना चाहिए और जनता को इसकी जानकारी देनी चाहिए ।

ऊपर संकेत किया जा चुका है कि बिहार की वन-संपदा को सुरक्षित एवं परिवर्द्धित करने के लिए बिहार सरकार को पहल करनी चाहिए तथा ऐसी वनस्पतियों को उत्पन्न करने के लिए बिहार सरकार को पहल करनी चाहिए । मेरा सुझाव है कि ऐसी वनस्पतियों को उत्पन्न करने और उन पर अनुसंधान करे के लिए १००-२०० एकड़ जमीन सुनिश्चित कर उसमें अनुसंधानशाला की स्थापना करे । साथ ही ऐरोमेटीक प्लांट के लिए अनुसंधान की पृथक व्यवस्था हो । आयुर्वेद औषधि निर्माण में कुछ द्रव्यों की बड़ी मात्रा में आवश्यकता होती है । उदाहरण के रूप में सोंठ, काली मिर्च, पीपल आदि । काली मिर्च और पीपल के मूल्य में काफी वृद्धि हो रही है और उनका मिलना भी कठिन हो गया है ।

जरूरत सिर्फ औषधि तत्व वाले पौधों को बचाने की नहीं है, बल्कि उन आदिवासी वैद्यों, आयुर्वेदीय चिकित्सकों और वानस्पतिक विशेषज्ञों को प्रोत्साहित करने की भी है, जिन्हें इन पौधों के बारे में विस्तृत जानकारियां हैं । ये जानकारियां भी प्रायः नष्ट होती जा रही है और इन लोगों की जानकारियों को संग्रहित करने के लिए योजनाबद्ध प्रयास की आवश्यकता है ।

देर से ही सही, किन्तु अब विश्व में सर्वत्र हमारी पुरानी और दादी मां की दवाओं के बारे में सर्वेक्षण, अनुसंधान एवं विकास के कार्य किये जा रहे हैं, वैसे, यह मजेदार बात है कि इन्हें आधुनिक दवाएं (न्यू मेडिसिन) कहा जा रहा है । इस मानव जातीय औषधि विज्ञान (इथनो-मेडिसिन) में दवा के लिए उपयोगी पौधों के पैदावार, संग्रह, बाजार आदि के बारे में अध्ययन किया जाता है । बहुमुखी होने के कारण इथनो-बॉटनी एवं इथनो मेडिसिन अब संबंधित विभागों का ध्यान आकर्षित कर रहा है और सहयोग की भावना बढ़ रही है ।

डा० माया राम उनियाल ने बिहार के आदिवासी एवं जड़ी-बूटियां नामक पुस्तक तैयार की है यह प्रकाशन बिहार प्रदेश के लिये उपयोगी सामग्री के साथ-साथ अनुसन्धायकों, एवं आयुर्वेद साहित्य समृद्धि में सहायक होगी । मुझे विश्वास है कि डा० उनियाल जी द्वारा लिखित पुस्तक के प्रकाशन से वनस्पतियों की पहिचान एवं गुणधर्मों के विषय में सही जानकारी मिल सकेगी । इस महत्वपूर्ण संकलन के लिये डा० उनियाल बधाई के पात्र हैं ।

बिहार में लुप्त होती वनस्पतियां

बिहार में तीन विशेष प्रकार की मिट्टी, जल एवं जलवायु क्षेत्र है - गंगा से उत्तर, गंगा से दक्षिण और छोटानागपुर एवं संथाल परगना के पठारी क्षेत्र। प्रकृति ने इनमें से प्रत्येक को सामान्य एवं विशेष प्रकार की वनस्पतियां तथा जीव-जन्तु दिए है। वैसे, समय के साथ-साथ इनमें परिवर्तन भी होते रहे हैं, वनस्पितयों तथा जीव-जन्तुओं पर जंगलों की कटाई का विशेष प्रभाव महसूस किया जा सकता है। इनकी कई जातियां अब अनुपलब्ध है, कई पर आज खतरा उत्पन्न हो गया है और कई के भविष्य में समाप्त हो जाने का खतरा है। हाल के वर्षों में हरे क्षेत्रों, पेड़, घास, जड़ी-बूटियों के गायब होते जाने से से हमारा ध्यान इस ओर गया है और उत्तम भूमि की रक्षा एवं जलावन लकड़ियां, फल तथा चारे उपलब्ध कराने के लिए हरे क्षेत्रों को विकसित करने के प्रयास किए जा रहे हैं। दवाओं के लिए महत्वपूर्ण पेड़, जड़ी-बूटियों एवं अन्य पौधों की रक्षा की आवश्यकता ने इस दिशा में सबसे अन्त में ध्यान आकर्षित किया है।

कहते हैं, ईश्वर ने मनुष्य, जानवर और वनस्पतियों की रचना अन्य भौतिक वस्तुओं के साथ जीने के लिए की और यदि परिस्थितियों के कारण मृत्यु या रोग हो तो उसकी दवा भी वहीं और हमेशा उपलब्ध रहे, इसकी भी व्यवस्था की ताकि आगे भी पीढ़ियां आती रहें।

प्रकृति ने हर प्रकार की आवश्यकताओं के लिए हर जगह बड़े और छोटे पेड़ पौधों के रूप में दवाएं उपलब्ध कराई है। बिहार के तीन प्रमुख क्षेत्रों की जलवायु में विभिन्न प्रकार के पौधे हैं।

दवा के लिए प्रसिद्ध जड़ी-बूटियों एवं पौधों के अतिरिक्त इन क्षेत्रों एवं पौधों के अतिरिक्त इन क्षेत्रों में कई ऐसे पौधे भी यहां हैं, जिन्हें अभी जंगली माना जाता है, किंतु जिनका भविष्य में उपयोग किया जा सकता है। कहते हैं इस संसार के रचयिता ब्रह्मा ने एक बार अपना एक दूत पृथ्वी के जंगलों में भेजा और उसे दवा के लिए महत्वपूर्ण पौधे पहचानने के लिए कहा। पृथ्वी पर काफी दिनों तक रहने के बाद जब दूत लौटा तो उसने कहा कि वह कोई भी ऐसा पौधा नहीं खोज सका, जिसका दवा के लिए महत्व नहीं हो। इस बात के कहानी से पता चलता है कि हमें सभी पौधों की रक्षा करनी चाहिए और उसके उपयोगों को खोजने का प्रयास करना चाहिए। यथा - नानौषधिभूतं जगतिइति ॥ (चरकः)

इस बात में कोई शक नहीं है कि न जाने कब आदमी विभिन्न प्रकार के पेड़ पौधें और लकड़ियों का उपयोग करता आ रहा है। शहरी क्षेत्रों में भी लोग कुछ रोग दूर करने या उससे रक्षा के लिए फल, पौधों आदि का उपयोग करते हैं। यह बात ग्रामीण क्षेत्रों में आसानी से देखी जा सकती है, जहां लगभग प्रत्येक परिवार पौधों एवं जड़ी-बूटियों के आधार पर दादी मां की दवाओं का उपयोग करता है। किन्तु उन आदिवासी-बहुल क्षेत्रों में

पारंपरिक लोक दवाओं का उपयोग आम है, जहां आदिवासी वैद्य अपने आसपास उपलब्ध जड़ी-बूटियों एवं अन्य सामग्रियों से ब्याधियां अब भी दूर करता है। और इससे सिद्ध होता है कि प्रकृति ने हमारे आसपास के क्षेत्रों में ही दवाएं हमें उपलब्ध की हैं।

गंभीर चिंता का विषय है कि इनमें से कई पौधे क्रमशः विलीन होते जा रहे हैं, जो इन्हें पहचान सकते हैं, जो इनका उपयोग जानते हैं, जिन्हें इनके पैदावार की विधियों का ज्ञान है, जिन्हें विशेष प्रकार की जातियों के पैदा किए जाने या उनकी देखभाल करने के बारे पता है और जिन्हें यह पता है कि वर्तमान अथवा भविष्य के लिए कैसे तथा क्या इकट्ठा या संग्रह किया जाए। आधुनिक चिकित्सा पद्धति और उनकी दवाओं के महंगे होने, इसके सुविधा से उपलब्ध नहीं हो पाने, छुट भैये चिकित्सकों द्वारा इसके दुरुपयोग और एन्टिबायोटिक एवं स्टिरायड्स जैसी जीवन रक्षक दवाओं के दूरगामी दुष्प्रभाव को महसूस करने जैसे कारणों की वजह से पारंपरिक, लोक एवं जातीय दवाओं की तरफ आम देर से ही सही, किंतु अब विश्व में सर्वत्र हमारी पुरानी और दादी मां की दवाओं के बारे में सर्वेक्षण, अनुसंधान एवं विकास के कार्य किए जा रहे हैं, वैसे यह मजेदार बात है कि इन्हें आधुनिक दवाएं (न्यू मेडिसिन) कहा जा रहा है। इस मानव जातीय औषधि विज्ञान (इथनों-मेडिसिन) में दवा आदि के बारे में अध्ययन किया जाता है। बहुमुखी होने के कारण इथनों-बॉटनी एवं इथनो मेडिसिन अब संबंधित विभागों का ध्यान आकर्षित कर रहा है और सहयोग की भावना बढ़ रही है। पौधे सर्वत्र उगते है तथा बरगद और साल वृक्षों से लेकर जल के किनारे उगने वाले दुबले पतले पौधों के रूप में विभिन्न किसान उगाते हैं, कई जल, जंगल, मैदान, घास वाली भूमि में और कई तो वृक्षों पर (परजीवी) इसी तरह उग जाते हैं। फिर भी दवा के लिए उपयोगी पौधे अब विलुप्त होते जा रहे हैं और उनके विषय में हमारी जानकारियां भी कम होती जा रही है। चिकित्सा में उपयोग के लिए वनस्पतियों के संरक्षण की आवश्यकता आवश्यक हो गई है और अब इसे टाल सकना संभव नहीं है। तब हमें क्या करना चाहिए और इस समस्या के पहलू क्या है ?

बिहार के इन तीन क्षेत्रों, विशेषकर जंगल एवं आदिवासी बहुल क्षेत्रों में उपलब्ध चिकित्सीय पौधों (वृक्ष, जड़ी-बूटियों) का सर्वेक्षण की सर्व प्रथम आवश्यकता है। इससे उन जातियों के बारे में जानकारियां मिलेंगी जो प्रायः विलुप्त या बहुत मुश्किल से प्राप्त है या जिनके लुप्त हो जाने का खतरा है या जिनका दुरुपयोग किया जा रहा है।

दूसरी जरूरत वैसे पौधों के संरक्षण की है, जिनके अस्तित्व पर खतरा है। उनका कुछ वर्षों के लिए उपयोग बंद किया जाना आवश्यक है। इसके साथ-साथ वैसे चिकित्सीय पौधों और लुप्त हो चुके है, उन क्षेत्रों से प्राप्त करने की जरूरत है, जहां ये अब भी उपलब्ध है। इस संबंध में टिशू कल्चर की विधि उपयोग में लाना व्यावहारिक होगा प्रथम, इससे पौधों को अधिक संख्या में उगाने .और द्वितीय, उनमें निहित चिकित्सीय गुणों वाले रसायनिक तत्वों का विकास करने में मदद मिलेगी।

कई ऐसे पौधे हैं, जिसका समृद्ध उपयोग किया जा सकता है। इनमें से कई पौधों का बहुमुखी उपयोग संभव है तथा यह अच्छा होगा, यदि वैसे पौधों को सामाजिक वानिकी कार्यक्रम के अंतर्गत खेतों, परती जमीन, सड़क किनारे, रेलवे लाइनों के बगल में उगाया जाए। चिकित्सीय पौधों को घरों, सार्वजनिक स्थानों एवं जंगलों में उगाने का कार्यक्रम सभी वनरोपण कार्यक्रम में शामिल किया जाना चाहिए, क्योंकि उनमें वे सभी चीजें तो रहती ही है, जो आम पौधों में पाई जाती है, साथ हीं साथ उनमें प्राकृतिक औषधि भी रहती है।

इन पौधों की पहचान, पैदावार आदि उन्हें इकट्ठा करने, लंबे समय तक रखने आदि के बारे में उपयोगी और शिक्षाप्रद जानकारियों वाली सामग्रियों के प्रकाशन और ट्रेनिंग प्रोग्राम के आयोजन से औषधि तत्व वाले पौधों के सही उपयोग और उनकी रक्षा में मदद मिलेगी।

दूसरी ओर वैसे पौधों जिनके औद्योगीकरण, जंगलों की कटाई, आग आदि से समाप्त हो जाने या जिनके लुप्त हो जाने का खतरा है, उन्हें बचाने के लिए आधुनिकतम तकनीक और विधियों का उपयोग किया जाना चाहिए।

समय समय पर परिसंवादों के आयोजन, ऑडियो-विजुअल माध्यमों तथा कक्षाओं में विभिन्न विषयों में पढ़ाकर हमें विद्यार्थियों के बीच ऐसे पौधों और वृक्षों को प्राकृतिक संपत्ति के रूप में प्रचारित करना चाहिए, ताकि इनका महत्व समझा जाए। जरूरत सिर्फ औषधि तत्व वाले पौधों को बचाने की नहीं है, बल्कि उन आदिवासी वैद्यों, आयुर्वेदीय चिकित्सकों और वानस्पतिक विशेषज्ञों को प्रोत्साहित बारे में विस्तृत जानकारियां है। ये जानकारियां भी प्रायः नष्ट होती जा रही है और इन लोगों की जानकारियों को संग्रहित करने के लिए योजनाबद्ध प्रयास की आवश्यकता है। इसके साथ-साथ इन पौधों का आर्थिक उपयोग जानने की भी जरूरत है। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि विश्व भर में भारतीय औषधि पौधों की मांग बढ़ रही है तथा विभिन्न रूपों में ऐसे पौधों का निर्यात किया जाता है।

भारत में विश्व के विभिन्न हिस्सों से औषधि तत्व वाले पौधों का आयात भी किया जाता है। इनमें से कुछ तो वैसे है, जो क्षेत्र-विशेष में ही पाए जाते हैं। अतः वनौषधि कृषि को प्राथमिकता दी जाय।

(नवभारत टाईम्स, पटना १६ अक्तूबर १९८७ से साभार)

रांची क्षेत्र के आदिवासी जनजातियों में लोक-प्रचलित जड़ी-बूटियों पर द्वि-दिवसीय कार्यशाला का प्रतिवेदन

दि० १० मार्च को जेवियर समाज सेवा संस्थान, रांची में आदिवासी जनजातियों में परम्परागत उपयोगी जड़ी-बूटियों पर द्वि-दिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया गया। यह कार्यशाला केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्रालय, भारत सरकार एवं बिहार सरकार के स्वास्थ्य कल्याण विभाग के तत्वाधान में सम्पन्न की गयी। कार्यशाला का उद्घाटन रांची-विरसा कृषि विश्वविद्यालय के कुलपति श्री एच० आर० मिश्रा द्वारा किया गया। अपने उद्घाटन भाषण में कुलपति महोदय ने कहा कि स्वास्थ्य संरक्षण के लिए जड़ी-बूटी का इतिहास मानव के स्वास्थ्य एवं सभ्यता के साथ जुड़ा हुआ है। बीज, फल, पुष्प, छाल आदि द्रव्यों की सामाजिक एवं धार्मिक मान्यता के साथ-साथ उनका उपयोग रोग निवारक औषधियों के रूप में विशेष महत्व का है। तुलसी, पुदीना, बेल, गुड़मार आदि कतिपय वनस्पतियां मानव स्वास्थ्य के लिये उपयोगी हैं। छोटा-नागपुर एवं संथाल परगना के वन्य क्षेत्रों में औषध उपयोग के जड़ी-बूटियों की मिलने की अच्छी सम्भावना है। खासकर इस क्षेत्र में जनजातियों में लोकप्रचलित परम्परागत जड़ी-बूटियों से अन्य लोगों को भी लाभ पहुंचाया जा सकता है। इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुये स्थानिक ग्रामीण वैद्यों को साथ लेकर वनौषधि सर्वेक्षण किया जाय। इस अवसर पर कुलपति महोदय ने सुझाव दिया कि इन जड़ी-बूटी पर शोध संस्थान की स्थापना की जाय, जिससे इस निमित शोध एवं विकास केन्द्रों की स्थापना, कृषि उद्यान, संग्राहलय-पादपालय वनौषधि वृक्षारोपण आदि कार्यक्रमों को चलाया जा सके।

अपने स्वागत भाषण में क्षेत्रीय विकास आयुक्त श्री एस० पाटष्कर ने कहा कि आदिवासी क्षेत्र में लोकप्रचलित जड़ी-बूटियों का लाभ एवं उपचार विधि की जानकारी सभी को दी जाय इस ज्ञान को सीमित न रखकर अनुसन्धान के माध्यम से आगे विकसित किया जाय। जेवियर सेवा संस्थान के निदेशक फादर फेंकलिन ने आये हुये अतिथियों एवं प्रतिनिधियों का संस्थान की ओ रसे स्वागत किया। इस अवसर पर स्थानिक आदिवासी जनजातियों द्वारा लोकप्रचलित जड़ी-बूटियों की प्रदर्शनी भी लगायी गयी, जिसका उद्घाटन क्षेत्रीय विकास आयुक्त ने किया।

दि० ११-३-८६ को आदिम जनजातियों में लोकप्रचलित उपयोगी जड़ी-बूटियों पर वैज्ञानिक गोष्ठी का आयोजन दो सत्रों में किया गया, जिसकी अध्यक्षता डा० सत्य प्रकाश गुप्ता ने की। सत्रों के संयोजक का कार्यभार जेवियर सेवा संस्थान के प्रो० डा० चान्द ने सम्पादित किया। इस अवसर पर लगभग ७० प्रतिनिधियों ने भाग लिया विशेषकर छोटानागपुर, पलामू, सिंह-भूमि, गुमला आदि क्षेत्रों के ग्रामीण-जनजाति के वैद्यों ने भाग लिया।

प्रथम सत्र में आदि जनजातियों में मुख्य रूप से प्रचलित रोगों पर विचार-विनिमय किया गया जिसमें यह निष्कर्ष पाया गया कि इन क्षेत्रों में घेंघा (ग्वाईटर), पक्षाघात, एकांगवात, दमा, क्षय (टी० बी०) बालशोष एवं कुछ भागों में रतिजरोगों की संख्या अधिक है। छोटानागपुर, पलामू, गुमला आदि ग्रामीण जनजातियों में घेंघा (ग्वाईटर) के रोगी अधिक है। यह रोग कभी महामारी का भी रूप ले लेता है। इन रोगों के कारण, निदान एवं उपचार के सन्दर्भ में डा० सत्यप्रकाश गुप्ता सेवानिवृत निदेशक, ट्राईवल कल्याण शोध संस्थान, रांची ने विचार प्रस्तुत किये।

द्वितीय सत्र में स्थानिक परम्परागत उपयोगी जड़ी-बूटियों पर गोष्ठी प्रारम्भ हुई जिसमें मुख्य रूप से निम्न वक्ताओं ने भाग लिया —

१. डा० वी० के० राजदन, विरला इन्स्टिट्यूट आफ टेक्नोलाजी, रांची, डा० मायाराम उनियाल, केन्द्रीय आयुर्वेद अनुसन्धान परिषद्, नई दिल्ली, डा० ए० के० राय, रीडर, वनस्पति विभाग, भागलपुर, श्री बी० एन० सहाय, डिपार्टमेन्ट आफ एन्थ्रोपोलाजी, रांची विश्वविद्यालय, प्रो० एस० के० चान्द, जेवियर समाज सेवा संस्थान, रांची, डा० वी० एन० सेलरी, श्री यू० एन० प्रसाद, डिविजनल वन विभाग अधिकारी, डा० डी० के० ठाकुर, पशुपालन महाविद्यालय, रांची, डा० हंग्रम गुमला-रांची, श्री, श्री चन्द्रहास विकास भारती संस्थान, छोटानागपुर आदि कतिपय विद्वानों ने अपने अनुभव एवं सुझाव प्रस्तुत किये।

स्थानिक जड़ी-बूटी के जानकार ग्रामीण वैद्यों का कहना है कि ये लोग आज भी स्थानिक वनस्पति सैईंघ के पेड़ की छाल से कैंसर का इलाज करते हैं। इस छाल के चूर्ण का उपयोग करते हैं। इस छाल के चूर्ण का उपयोग ३ से ४ ग्राम की मात्रा में दिन में दो बार खाली पेट पानी से खिलाते हैं और घाव पर छाल का लेप सरसों का तेल, मालकांगनी का तेल एवं अजवाईन मिलाकर करते हैं। इसी प्रकार पागल एवं मिर्गी पर ऋतुमती की छाल, रतनगोरी की छाल, समभाग में चूर्ण बनाकर गुड़ के साथ देने से लाभ होता है। इसी प्रकार वालपक्षाघात एवं पक्षाघात में झगड़ाही, फलकांदा, सचमुचिया, पपूर की जड़, मुनगा की जड़, हारीजड़, कुजरी की जड़, अंकोल की जड़, हाथी-पंजर की छाल आदि द्रव्यों को सरसों के तैल में तैलपाक विधि से तैल तैयार कर एवं प्रक्षेप में शिंगरफ मिलाकर एक से १॥ मास तक निरन्तर मालिश करने से शर्तिया लाभ होता है। इस प्रकार से सर्पदंश, उदावर्त्त (गैस्टिक) मूत्र विकार एवं परिवार नियोजन की उपयोगी जड़ी-बूटियों की जानकारी एवं पहचान आदिम जनजाति के वैद्यों द्वारा दी गई। आदिवासी जड़ी-बूटियों पर महत्वपूर्ण सामग्री का संकलन किया गया।

कार्यशाला का समापन श्री आर० पी० सिंह, चीफ कन्जरवेटर आफ फौरेस्ट रांची द्वारा किया गया। अपने-अपने समापन भाषण में कार्यशाला में किये गये विचार-निष्कर्षों के आधार पर जो सुझाव तैयार किये गये उनका समर्थन करते हुये कहा कि बोटेनिकल सर्वे

आफ इण्डिया द्वारा वनस्पतियों के पहचान की दिशा में विशेष कार्य किया गया है । आज हमें इन जड़ी-बूटियों के संरक्षण, सम्वर्द्धन, कृषिकरण, वृक्षारोपण कार्यक्रमों पर विशेष जोर देना है । जिन वनस्पतियों का अभाव होता जा रहा है, उनके अनियमित दोहन से सुरक्षा करनी है जिससे इस वनसम्पदा की समृद्धि एवं खुशहाली को विकसित कर सकें ।

अन्त में क्षेत्रीय विकास आयुक्त महोदय ने क्षेत्रीय आदिम जनजाति के स्थानिक परम्परा के ग्रामीण वैद्यों के एसोशियेशन के स्थापना हेतु विचार व्यक्त किया ताकि भविष्य में इस एसोसिएशन के माध्यम से इन क्षेत्रों में मिलने वाली जड़ी-बूटियों के शोध सम्भावनाओं का पता लगाने में सुविधा प्राप्त हो सकेगी ।

इस अवसर पर श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड, पटना द्वारा प्रकाशित बिहार की वनस्पतियां आदि साहित्य वितरित किया गया ।

(सम्पादक सचित्रायुर्वेद, पटना)

कुलानुसार द्रव्यों की सूचि

क्र० सं०	संस्कृत/स्थानिक नाम	बौटेनिकल नाम	पृष्ठ संख्या
१०४.	सुगन्धवास्तूक, जंगलवाथु	Chenopodium ambrosiaides Linn.	१६४
१०५.	पालंकी, पालक	Spinacia oleracea Linn.	१६५
		अमलतासकुल (CAESALPINIACEAE)	१६५
१०६.	आरग्वध, अमलतास	Cassia fistula L.	१६५
१०७.	चक्रमर्द, चकवड़	Cassia tora Linn.	१६६
१०८.	चकवड़	Cassia hirsuta Linn.	१६६
१०६.	आवर्तकी, चर्मरंगा	Cassia auriculata Linn.	१६७
११०.	चक्षुष्या, चाकसू	Cassia absus L.	१६७
१११.	आवर्तनी, मरोड़फली	Helicteres isora Linn. (Sterculaceae)	१६७
११२.	पतंग, बकम	Caesalpinia sappan L.	१६८
११३.	गुलतुर्रा	Poinciara pulcherrima L.	१६८
११४.	दिवि-दिवि	Caesalpinia Coriaria willd.	१६८
११५.	वाकेरी	Caesalopinia digyna Rott.	१६८
११६.	कुवेराक्षी, लताकरञ्ज	Caesalpinia crista Linn.	१६६
११७.	कासमर्द, कसौन्दी	Cassia occidentalis L.	१७०
११८.	कासमर्द, कसौन्दी	C. Shophera Linn.	१७०
११६.	काञ्चनार, कचनार	Bauhinia variegata L.	१७०
१२०.	कठमहली	B. racemosa Lamk.	१७१
१२१.	अश्मन्तक, लावा	B. malabarica Roxb.	१७१
१२२.	कोविदार	B. purpurea L.	१७२

क्र० सं०	संस्कृत/स्थानिक नाम	बौटेनिकल नाम	पृष्ठ संख्या
१२३.	मालायु, मालु	B. vehlii wofa.	१७२
१२४.	अन्जन	Hardwickia binata Roxb.	१७३
१२५.	अशोक, उसंगिद-वा	Saraca indica L.	१७३
१२६.	अम्लीका, ईमली	Tamarindus indica Linn.	१७५
	ज्योतिष्मतीकुल (CELASTRACEAE)		१७५
१२७.	ज्योतिष्मती, कुजरी, मालकांगनी	Celastrus paniculatus Wall	१७५
१२८.	मुष्कक, रतनगरुर	Elaeodendron glaucum Pers	१७६
१२६.	घण्टापाटली	Schrebera swietenioides Roxb.	१७६
१३०.	भंगा, भांग	Canabis sativa Linn. (Cannabinaceae)	१७६
	वरुणकुल (CAPPARIDACEAE)		१७७
१३१.	हुरहुर	Cleome vicosa L.	१७७
१३२.	हुरहुरभेद	C. monophylla Linn.	१७७
१३३.	तिलपर्णी, हुरहुर (श्वेत)	Gynandropsis pentaphylla DC.	१७७
१३४.	हिंस्रा, कन्थारी	Capparis sepiaria L.	१७८
१३५.	ब्याघ्रनखी, करेरुआ	Capparis horrida L.F.	१७६
१३६.	गृध्रनखी	C. zeylanica L.	१७६
१३७.	करीर, करेरुआ	C. decidua Ed.	१७६
१३८.	कवरा	C. spinosa L	१७६
१३६.	वरुण, वरना	Crataeva nurvala Buch-Ham.	१७६

क्र० सं०	संस्कृत/स्थानिक नाम	बौटेनिकल नाम	पृष्ठ संख्या
२६६.	सूर्यवर्ता, पजवातंगो	Chrozonhora prostrata Roxb.	२२०
२६७.	आमलकी, आंवला	Emblica officinalis Gaertan.	२२०
२६८.	अधोगुड़ा, वनमूली	Euphorbia aculis Roxb.	२२१
२६९.	सातला, तितली	Eupherbia dracunculoides Lam.	२२१
२७०.	अंगुलियामोहर	E. tirucalli Linn.	२२२
२७१.	सातला, सप्तला	E. pilosa Linn.	२२२
२७२.	पुसी-तोआर	E. thymifolia Linn.	२२२
२७३.	दुधी	E. microphylla Heyne	२२२
२७४.	दुग्धिका	E. hirta DC.	२२२
२७५.	स्नुही, सेंहुंड	E. Nivulia Ham.	२२२
२७६.	सेहुंड, थोहर	E. nerifolia L.	२२२
२७७.	तिधारा	E. antiuorum L.	२२३
२७८.	शिकाकाई	Acacia concinna DC.	२२३
२७९.	ब्याघ्र एरण्ड, वधरण्डी	Jtropha curcuas Linn.	२२३
२८०.	लाल वघरण्डी	J. gossypifolia L.	२२३
२८१.	कम्पील्लक, रोरी	Mallotus philippinensis Muell.	२२४
२८२.	भूम्यामलकी, भुंईआंवला	Phyllanthus urinaria L.	२२४
२८३.	भंईआंवला	P. niruri Linn.	२२४
२८४.	पुत्रज्जीव, जियापोता	Putranjiva roxburghii Wall.	२२५
२८५.	एरण्ड, अरण्डी	Ricinus communis Linn.	२२५

क्र० सं०	संस्कृत/स्थानिक नाम	बौटेनिकल नाम	पृष्ठ संख्या
३३९.	गंगातुलसी	Hyptis suaveslens Poit.	२४५
३४०.	जंगली लवेन्डर	Lavandula burmanni Benth.	२४६
३४१.	द्रोणपुष्पी,गुमा	Leucas caphalotes Spreng.	२४६
३४२.	गुमा	L. mollissima	२४६
३४३.		L. procumbens	२४६
३४४.	महाद्रोण	Anisemeles malabarica R. Br.	२४७
३४५.	तुलसी, सुरसा	Ocimum sanctum L.	२४७
३४६.	वर्वरी, लोचा	O. basilicum Linn.	२४७
३४७.	राम तुलसर	O. gratissimum Linn.	२४७
३४८.	देवमज्जरी, अर्जक	Orthosiphon pallidus Royle	२४८
३४९.	समुद्रशोष	Salvia plebeja Br.	२४८
३५०.	गठिवन, वरेधोयों	Leonotes nepetaefolia Br.	२४८
३५१.	विल्लिलोटन	Nepeta indesiana Comb	२४८
३५२.	ईश्वरजटा	Pogostemon plectranthoides Deseb	२४९
३५३.	पूतिहा, पुंदीना	Mentha arvensis Linn.	२४९
		शिम्बीकुल (LEGUMINOSAE)	२४९
३५४.	गुञ्जा, करजनि	Abrus percatorius Linn.	२४९
३५५.	बनकुल्थी, गायसनी	Atylosia scrabaeoides Benth	२५०
३५६.	मूंगफली	Arachis hypegea L.	२५०
३५७.	आठकी, अरहर	Cajanus indicus spreng	२५०

क्र० सं०	संस्कृत/स्थानिक नाम	बौटेनिकल नाम	पृष्ठ संख्या
३५८.	ग्वारफली, गुआलिन	Cyamposis tetragenoloba Tauab	२५१
३५९.	मसूरिका, समूर	Lens esculenta Moen.	२५१
३६०.	रवेसारी, मसूर	Lathyrus sativus Linn.	२५१
३६१.	कुलत्थ, कुल्थी	Dolichos biflorus Linn.	२५२
३६२.	चणक चना	Cicer arietinum Linn	२५२
३६३.	निष्पाव, सेमफली	Dolichos lablab Linn.	२५३
३६४.	सोयाबीन, भट्ट	Glycine max Mer.	२५३
३६५.	मुकुष्ठक, मोठ	Phaseolus aconitifolius Jacq.	२५४
३६६.	माष, उड़द	P. radiatus Linn.	२५४
३६७.	मुद्ग, (मूंग)	P. munga Linn.	२५५
३६८.	त्रिपुटक, मटर	Pisum arvense Linn	२५५
३६९.	मेथिका, मेथी	Trigonella foenum graecum L.	२५५
३७०.	राजमाष, राजमा	Vigna cylindriea Skee.	२५५
३७१.	लोबिया, लोभिया	Vigna catiang Enal.	२५६
३७२.	काकाण्डोला, माखनसेम	Canavalia ensiformis DC	२५६
३७३.	काठसेम	C. viresa W. & A.	२५६
३७४.	पलाश, मोरूद	Butea frondosa Roxb.	२५७
३७५.	नारीमुरूष	B. superba Hexb..	२५७
३७६.	सिंहट, रामवारेला	B. parviflora Roxb.	२५७
३७७.	यवासा, जवासा	Alhagi pseudalhagi Duv.	२५८

क्र० सं०	संस्कृत/स्थानिक नाम	बौटेनिकल नाम	पृष्ठ संख्या
३७८.	जवासा	Fagonia cretica L.	२५८
३७६.	शालपर्णी	Desmodium gangeticum DC.	२५६
३८०.	पर्णी, सुकरासोधा	D. polycarpum DC	२५८
३८१.	चारीमारा	D. mycrophyllum DC.	२५८
३८२.	शणपुष्पी, झुनका	Crotalaria juncea Linn.	२५६
३८३.	भुनका	C. alata Datz.	२५६
३८४.	बीरव्रट	Flemingia semialata Roxb.	२६०
३८५.	गलफूली	F. bracteata	२६०
३८६.	नील, नीली	Indigofera tinctoria Linn.	२६०
३८७.	नीलीभेद	I. arrecta Hochst.	२६०
३८८.	नीलीभेद	I. sumatrama Gaertn.	२६०
३८६.	नीलीभेद	I. articulata geun	२६०
३६०.	जिरहुल, जिरूल	I. pulchella Roxb.	२६०
३६१.	हनुमानबूटी	I. enneaphylla Linn.	२६१
३६२.	गध्रफूल	I. cassioides Rotter.	२६१
३६३.	तेजोमाला	I. linnaei Ali.	२६१
३६४.	शिंशपा, सेतसार	Dalbergia sissoo Roxb.	२६१
३६५.	शिंशपाभेद	D. latifolia Roxb.	२६१
३६६.	नारी सीसम	D. volubilis Roxb.	२६१
३६७.	अपराजिता, कोयल	Clitoria ternatea L.	२६२

क्र० सं०	संस्कृत/स्थानिक नाम	बौटेनिकल नाम	पृष्ठ संख्या
३९८.	दावी	Alysicarpus vaginalis DC.	२६३
३९९.	पारिभद्र, पांगरा	Erythrina indica Link.	२६३
४००.	देवपरास	E. resupinata Roxb.	२६३
४०१.	बनमेथी	Melilotus indica All	२६३
४०२.	स्यंदन, सांदन, पाननी (प)	Ougeinia dalbergidies Benth.	२६४
४०३.	कपिकच्छु, खुजनी, आलकुशी (प)	Mucuna prurita Hook	२६४
४०४.	गौज, गुडार	Millettia auriculata L.	२६५
४०५.	गुञ्ज	M. recemosa Benth	२६५
४०६.	काराकश	M. extensa Bakar.	२६५
४०७.	वाकुची, वावची	Psoralea corylifolia DC.	२६५
४०८.	बीजक, बीजा	Pterocarpus marsupium Roxb.	२६६
४०९.	बिदारी, पातालकोहड़ा	Pueraria tuberosa DC.	२६७
४१०.	क्षीरविदारी	Ipomoea disitata Linn.	२६७
४११.	करञ्ज	pogamia glabra Vent	२६७
४१२.	मुद्गपर्णी, मुंगानी	Phaseolus trilobus Ait	२६८
४१३.	माषपर्णी, बनुरद	Teramnus labialis streng.	२६८
	कुम्भीककुल (LECYTHIDACEAE)		२६८
४१४.	हिज्जल, समुद्रफल	Barrigtonia acutangula Gaert.	२६९
४१५.	कुम्भीक, कुम्ब	Careya arboria Gaertn	

क्र० सं०	संस्कृत/स्थानिक नाम	बौटेनिकल नाम	पृष्ठ संख्या
	अतसीकुल (LINACEAE)		२६६
४१६.	कोका	Erthoroxylon Coca Lamk	२६६
४१७.	अतसी, तीसी	Linum usitatissimum Linn.	२६६
	रसोनकुल (LILIACEAE)		२७१
४१८.	शतावरी, ओतरंग, (मेरोमपालो (प) केदार नणि (सं)	Asparagus racemosus wild	२७१
४१६.	श्वेतमूशली, गेरेंगअड़ा	Chlorophytum arundinaceum Baker	२७२
४२०.	मूशली, (श्वेत)	C. tuberosum Baker	२७२
४२१.	सफेदमूशली (प्रचलित)	Asparagus adsendeus Roxb.	२७२
४२२.	घृतकुमारी, घीकुवार	Aloe vera Linn.	२७२
४२३.	पलाण्डु, प्याज	Allium sepa Linn.	२७३
४२४.	रसोन, लशुन	Allium sativum Linn.	२७४
४२५.	कलील लसुन	A. ascallonicum Linn.	२७५
४२६.	लाङ्गली, झगड़ाही	Gloriosa superba Linn.	२७५
४२७.	अटकीर (सं) गुम्बाडो (प) चोबचीनी (हिन्दी)	Smilax macrophylla Roxb	२७६
४२८.	उशवा	S. China Linn.	२७६
४२६.	कोलकन्द, कादरी	Urginea indica Kurth	276
	कुचलाकुल (LONAGIACEAE)		२७७
४३०.	विषमुष्ठी, कुचिला	Strychnos Nuxvomica Linn.	२७७
४३१.	निर्मली, कतक	S. potatorum Linn.	२७७

क्र० सं० संस्कृत/स्थानिक नाम	बौटेनिकल नाम	पृष्ठ संख्या
	कर्पूरकुल (LAURACEAE)	२७८
४३२. कर्पूर	Cinnamomum Camphora Nees	२७८
४३३. अमरबेल	Cassytha filiformis Linn.	२७८
४३४. मेदासक, परूहि	Litsea chinensis Lann.	२७६
४३५. परुहि	L. polyantha L.	२७६
	बांदाकुल (LORANTHACEAE)	२७६
४३६. वन्दाक, वांदा	Dendrophthoe falacata Etti	२७६
४३७. वन्दाक, वांदा, काटकोम जॉगा (सं)	Viscum artuculatum Buk	२७६
	दाडिमकुल (LYTHRACEAE)	२८०
४३८. मदयन्तिका, मेंहदी	Lawsonia inermis Linn.	२८०
४३६. अग्निपत्री, दादमारी	Ammania baccifera Linn.	२८०
४४०. सिद्धक, सेकरे	Lagerstroemia parviflora Roxb.	२८१
४४१. दाडिम, अनार	Punica granatum Linn.	२८१
४४२. धातकी, धवई	Woodfordia fruticosa kurz	२८२
	कार्पासकुल (MALAVACEAE)	२८३
४४३. अतिबला, मिरुवाहा, (सं)	Abutilon indicum G. Don.	२८३
४४४. गोरक्षी, गोरखईमली	Adansonia digitata Linn.	२८३
४४५. लताकस्तूरी, मश्कदाना	Hibiscus abalmoschus Linn.	२८४
४४६. पिचुक, उसंगिद	H. Cancellatus Roxb.	२८५
४४७. भाण्डी, भिण्डी	H. esculentus Linn.	२८५
४४८. जपा, गुड़हल	H. rosa-sinensis Linn.	२८५

क्र० सं०	संस्कृत/स्थानिक नाम	बौटेनिकल नाम	पृष्ठ संख्या
४४९.	बला, बरयारा	Sida cordifolia Linn.	२८६
४५०.	भूमिबला	S. Veronicaefolia Lamk.	२८६
४५१.	बलाभेद	S. spinosa Linn.	२८६
४५२.	जेजरी कीड़दू (प)	S. acuta L.	२८६
४५३.	महाबला	S. rhombeifolia L.	२८६
४५४.	बन्यकार्पासी, तुण्डिकेर	Thespesia lampas Dalx.	२८७
४५५.	पारसपीपल	T. pypulnea Corn.	२८७
४५६.	महाबलाभेद, भिरहिलट, भीड़ी लट्टठा	Urea lobata Linn.	२८७
	चम्पककुल (MANGNOLIACEAE)		२८७
४५७.	चम्पक, चम्पा	michelia champa Linn.	२८७
	माधवीकुल (MALPIGHIACEAE)		२८८
४५८.	माधवी, संगकरला	Hiptage madablota Goertn	288
	सुषनीकुल (MARSILEACEAE)		२८९
४५९.	सुनिषण्डक, सुसनि	Marsilia minuta Linn.	२८९
	गुडूचीकुल (MENISPERMACEAE)		२८९
४६०.	पाठा, तेजामाल, हाड़हा मान्दरा (प) तेजोमाला (सं)	Cissampelos pareira Linn.	२८९
४६१.	पातालगरुड़ी, जलजमनी	Cocculus hirsutus Dielis	२९०
४६२.	आकनादी, पाठाभेद	Stephania herna ndifolia walp	२९१
४६३.	गुडूची, गुरुच	Tinospora cordifolia Miers.	२९१
४६४.	कन्दगुडूची	T. malabarica Miers	२९१

क्र० सं०	संस्कृत/स्थानिक नाम	बौटेनिकल नाम	पृष्ठ संख्या
४६५.	करवैंत	Tiliacora acuminata Miers	२६३
	निम्बुकुल (MILIACEAE)		२६३
४६६.	रोहीतक (प्रचलित) हारितहरा	Amoora rohituka W. & A.	२६३
४६७.	निम्ब, नीम, मीनी (प)	Azardirachta indica A. Juss	२६३
४६८.	प्रियङ्गु (प्रचलित)	Aglaia roxburghiana Miq.	२६४
४६९.	तुन, तूणी	Cedrela toona Roxb.	२६५
४७०.	भरहुल	Chloroxylon swietenia DC.	२६५
४७१.	महानिम्ब, डैकण	Melia azedarach Linn.	२६५
४७२.	लिसे	M. composita willd.	२६६
४७३.	मांसरोहिणी रोहण	Soymida febrifuga A. Juss	२६६
४७४.	सिलोई, वकम	Walsura piscida Roxb	297
	बब्बुलकुल (MIMOSACEAE)		२६७
४७५.	खदिर, खैर	Acacia catechu Willd.	२६७
४७६.	बब्बूल, कीकर	A. arabica Willd.	२६८
४७७.	रेमजा, रेंवा	A. leucophlea Willd.	२६९
४७८.	अरार	A. pennata willd	२६९
४७९.	शिकाकाई	A. Concinna DC.	२६९
४८०.	शिरीष, सिरस	Albizzia lebbeck Benth	२६९
४८१.	किणही, किनई	A. procera Benth	३००
४८२.	कटभी	A. odoratissima Benth.	३००

क्र० सं०	संस्कृत/स्थानिक नाम	बौटेनिकल नाम	पृष्ठ संख्या
५२६.	वेंत, वेत	Calamus niminalis willd.	३२१
५३०.	वेत, वेंत	C. tennis	३२१
५३१.	पूग, सुपारी	Areca catechu L.	३२१
५३२.	नारिकेल, नारियल	Cocas nucifera L.	३२२
५३३.	खजूर, खर्जूर	Foenix sylvestris Roxb.	३२३
५३४.	खजूर, खर्जूर	F. aulis	३२३
		केतकीकुल (PANDANACEAE)	३२४
५३५.	केतकी, केवड़ा	Pandanus tectoris Soland.	३२४
		तिलकुल (PEDALIACEAE)	३२५
५३६.	काकनासा, विछुआ	Martynia diandra Glox.	३२५
५३७.	,, ,,	Pentatropis microphylla	३२५
५३८.	गोखरु, बड़ा	Pedalium murex L.	३२५
५३६.	तिल	Sesamum indicum L.	३२६
		पिप्पलीकुल (PIPERACEAE)	३२६
५४०.	पिप्पली, रानूरैन, रैली (सं), कुनक दू (प.)	Piper longum L.	३२७
५४१.	चब्य, चावो	P. chaba Hunfer.	३२७
५४२.	ताम्बूल, पान	P. betle L.	३२८
		चुक्रकुल (POLYGONACEAE)	३२८
५४३.	पनिसगा, सोरिया	Polygonum glabrum willd.	३२८
५४४.	पनिसगा, सोरिया (ज्योंति (सं)	P. brabatum L.	३२८

क्र० सं०	संस्कृत/स्थानिक नाम	बौटेनिकल नाम	पृष्ठ संख्या
५४५.	चुक्र	Rumex Vescicarius	३२९
		लोणीकुल (PORTULACACEAE)	३३०
५४६.	लोणिका	Portulaca tuberosa Roxb.	३३०
५४७.	लोणिका, लोनिया	P. Oleracea Linn.	३३०
५४८.	जंगली लोनियां	P. ouadrifida L.	३३०
		जोंकमारीकुल(PRIMULACEAE)	३३०
५३६.	जिधना, जोंकमांरी	Anagallis arvensis Linn.	३३०
		चित्रककुल (PLUMBAGINACEAE)	३३०
५५०.	चित्रक, चितार, चितैनी (प) कितौरी (सं)	Plumbago zeylanica Linn.	३३०
५५१.	चितैनी (प) कितौरी (सं)	P. rosea P. copensis	३३०
		वत्सनाभकुल (RANUNCULACEAE)	३३०
५५२.	गोलरंग	Clematis gouriana Roxb.	३३२
५५३.	पीतमूला, ममीरी	Thalictrum foliolosum DC	३३२
५५४.	काण्डीर, जलधनियां	Ranunculus sceleratus Linn.	३३२
५५५.	„ „	R. pensylvanicus Linn.	३३२
५५६.	उपकुञ्चिका, कलौंजी	Nigella sativa Linn.	३३३
		बदरकुल (RHAMNACEAE)	३३३
५५७.	कैवर्तिका, केवटी, बोगा सारजोम (स.) राम वूझरा (प.)	Ventilago maderas patana Gaertn.	३३३
५५८.		V. calyculata	३३२

क्र० सं०	संस्कृत/स्थानिक नाम	बौटेनिकल नाम	पृष्ठ संख्या
५५९.	बदर जनुम-जाम, हिलकरदू (प)	Zizyphus jujuba Lamk.	३३४
५६०.	बेर	Z. Nummularia W. & A.	३३४
५६१.	कर्कन्धु	Z. Oenoplia Mill.	३३४
५६२.	घोंट	Z. xylopyra L.	३३४
		तरुणीकुल (ROSACEAE)	३३५
५६३.	कुब्जकभेद, कुजोई	Rosa involucrata Roxb.	३३५
५६४.	आरुक	Prunus persica Blacsth.	३३५
५६५.	लोकाट	Eriobotrya japonica Lindl.	३३५
५६६.	नाशपाती	Pyrus Communis	३३५
५६७.	हिंसालु	Rubus ellipticus	३३५
		मञ्जिष्ठाकुल (RUBIACEAE)	३३५
५६८.	हरिद्रु, कुरुमवा	Adina cordifolia Hook	३३५
५६९.	कदम्ब, धाराकदम्ब	Anthocephus cadamba Miq.	३३६
५७०.	कैमा, वन्यकदम्ब	Mitragyna parviflora Korth	३३६
५७१.	अच्छूक	Morinda tinctorica Roxb.	३३६
५७२.	महापिण्डी, करकहार, कराड़ी (प.)	Gardenia turgida Roxb.	३३७
५७३.	डिकामाली, बुरुई	Gardenia gummifera Linn.	३३७
५७४.		G. lucida Roxb.	३३७
५७५.	सेरा	Borreria articularis Linn.	३३८
५७६.	मदन, मयना, मेनफल, लोटो (स.) आड़ो (प.)	Randia dumetorum Linn.	३३८

क्र० सं०	संस्कृत/स्थानिक नाम	बौटेनिकल नाम	पृष्ठ संख्या
५७७.	पिडांर	Randia uliginosa DC.	३३८
५७८.	पौडका	R. longispina	३३६
५७६.	सेलौली	Hamiltonia suaveolens Roxb.	३३६
५८०.	भूरकुण्ड, भारतीय सिनकोना (हिन्दी)	Hymenodictyon zxcelsum wall.	३३८
५८१.	भोजराज	Knoxia brachycarpa DC	३४०
५८२.	जूर	Canthium didymum Roxb.	३४०
५८३.	खटवा	Ixora parviflora Vahl.	३४०
५८४.	कोरा	Ixora arboria Roxb.	३४०
५८५.	खेतपापड़ी	Oldenlandia corymbosa Linn.	३४१
५८६.	कौफी	Coffea bengalensis Roxb.	३४१
५८७.	प्रसारिणी, गन्धाली	Paediria foetida Linn.	३४१
५८८.	मञ्जिष्ठा, मंजीठ	Rubia cordifolia Linn.	३४२
५८६.	कटाय अड़ा, वोयबिन्दी (सं), झराएली (प)	Vangnenia pubescens	३४२
५६०.		V. spinosa	३४३
५६१.	तिलक, तिलय	Wendlandia exerta DC.	३४३
५६२.		W. tinctoria	३४३
		निम्बुकुल (RUTACEAE)	३४३
५६३.	ओते अरमु	Chausena excavata Burm.	३४४
५६४.	रोवन	C. pentaphylla DC.	३४४
५६५.	भरुल	Chloroxylon swietenia DC.	३४४

क्र० सं०	संस्कृत/स्थानिक नाम	बोटेनिकल नाम	पृष्ठ संख्या
५९६.	निम्बुक, निम्बु	Citrus medica L.	३४४
५९७.	जंगली नारंगी	C. aurantium Linn.	३४५
५९८.	विजोरानिम्बु, चकोतरा	C. decumana	३४५
५९९.	बिल्व, बेल	Aegle marmelos Cor.	३४५
६००.	कपित्थ, कैंथ	Feronia elphantum Corr.	३४६
६०१.	कैडर्य, गन्धेला	Murrya Koenigii Spreng.	३४६
६०२.	बेली, बेलसेन	Limonia Crenulata Roxb.	३४७
६०३.	बननिंबु, पितौंदी	Glycosmis pentaphylla wall	३४७
६०४.	तिरफल	Zanthoxylum budruga L.	३४७
	अरिष्ठकुल (SAPINDACEAE)		३४[illegible]
६०५.	काकादनी, गलाफूला, शिवफूल (हि), मेरोग मेत् नैंलि (सं)	Cardiospermum halicabum L.	३[illegible]
६०६.	लीची	Litchi chenensis Sonner	३४[illegible]
६०७.	अरिष्ठक, रीठा	Sapindus mukorossi Gae.	३४[illegible]
६०८.	अरिष्ठक, रीठा	S. trifoliatus Linn.	३४[illegible]
	पीलूकुल (SALVADORACEAE)		३४६
६०९.	कोशाम्र	Scheichera trijuga walld.	३४६
६१०.	पीलू	Salvadora persica Linn.	३४९
	कोलाहल, कटुकाकुल (SCROPHULARIACEAE)		३५०
६११.	ब्राहमी, जलनीम	Bacopa monnieri Pennel	३५०
६१२.	कोलाहल	Celsia coromandeliana wall.	३५०

क्र० सं०	संस्कृत/स्थानिक नाम	बौटेनिकल नाम	पृष्ठ संख्या
६१३.	भीतचट्टी	Lindenbergia urticaefolia Lehm.	३५०
६१४.	अंबुली, हेमचा	Limnophila gratioloides Br.	३५१
६१५.	टांटधनियां, जीनीसाग	Scoparia dulcis L.	३५१
	कण्टकारीकुल (SOLANACEAE)		३५१
६१६.	कृणधत्तूर, कालाधतूरा	Datura stramonium L.	३५१
६१७.	श्वेतधत्तूर, धतूरा	D. fastuosa Linn.	३५२
६१८.	काकमाची, मकोय	Solanum nigrum L.	३५२
६१९.	बृहती, अजंड़	Solanum indicum L.	३५३
६२०.	वनभन्टाकी	S. melongena Linn.	३५३
६२१.	वनभंटा	S. Khassianum	३५३
६२२.	कण्टकारी, कटेरी	Solanum Zanthocarpum Sch.	३५४
६२३.	अश्वगन्धा, असगंध	Withania somnifera Don.	३५५
६२४.	लालमीर्च	Capsium annum L.	३५५
६२५.	आलु	Solanum tuferosum L.	३५५
६२६.	टमाटर	Lycopersicum esculentum	३५५
६२७.	तम्बाकु	Nicotiana tabacum Linn.	३५५
६२८.	रसभरि	Physalis peruviana	३५५
	चन्दनकुल (SATALACEAE)		३५५
६२९.	श्वेतचन्दन, चन्दन	Santalum album L.	३५५

क्र० सं० संस्कृत/स्थानिक नाम	बौटेनिकल नाम	पृष्ठ संख्या
लोधकुल (SYMPLOCACEAE)		३५६
६३०. लोध्र, लोध, (लुदैम) (सं)	Symplocos racemosa Roxb.	३५७
मुचुकुन्दकुल (STERCULIACEAE)		३५८
६३१. आवर्तनी, ऐंठनी	Helicterus isora L.	३५८
६३२. मस्वामी	Buettneria herbacea Colebr	३५८
६३३. बन्धूक, दुफरिया, बाड़े बहा (प.)	Pentapetes phoenicea Linn.	३५८
६३४. मुचुकुन्द	Pterospermum acerifolium willd.	३५६
६३५. उद्दालक, उदालो	Sterculia urens Roxb.	३५६
६३६. वहुवार, लिसोड़ा	Cordia myxa Roxb.	३६०
परुषककुल (TILIACEAE)		३६०
६३७. चञ्चु, चेंच	Corchorus copsularis Linn.	३६०
६३८. चेंच	C. olitorius Linn.	३६०
६३९. बड़ाचेंच	C. trilocularis Linn.	३६०
६४०. बड़ाचेंच	C. fasicularis Linn.	३६०
६४१. रुद्राक्ष	Elaeocarpus ganitrus Roxb.	३६१
६४२. धन्वन, धामिन	Gewia tiliaefolia vahl	३६२
६४३. परुषक	G. asiatica L.	३६२
६४४. गुड़ मेली	G. sclerophylla L.	३६२
६४५. नागवला, गुलशन्करी, सेताकाटा (सं) कूचोक ड़िपाली (प.)	G. hirsuta vahal.	३६२
६४६. झिंझिरीटा	Triumfetta rhomboidea	३६३

अकारादि क्रम से संस्कृत, हिन्दी एवं स्थानिक नामों की तालिका

Brief Survey Reports of Tribal Areas in Bihar and useful for Medicinal Plants

Introduction

The history of medicine in India can be traced to thee remote past. The earliest mention of the medicinal use of plants is found in the Rig Veda. In the works which followed, particularly Ayurveda, the properties of various drugs have been given in detail. Susruta-Samhita which was written not later than 1000 B.C. contains a comprehensive chapter on therapeutics and charaka-samhita, written about the same period gives a remarkable description of the materia medica as it was known to ancient Hindus.

During the centuries that have gone by, the meteria medica of the indigenous systems of medicine has become extensive and heterogeneous. Information on the use of medicinal plants is scattered and most of it is found in books and periodicals. Based on the informations available resources survey of medicinal plants were carried out in the tribal and other areas in the North and South Chotanagpur Divisions and also in the districts of Gaya (old), Santhal Parganas (old) and Munger districts. The "Tribal Area" consists of Ranchi, Gulma, Lohardaga, Singhbhum, as well as Dumka districts and also Lather subdivision of Palamau districts. The remaining areas where resources survey of medicinal plants were done fall under "Other Areas".

The geographical area, the forest area and the per capital forest areas of the district surveyed are given in Table-I whereas Table-II relates to the general, Schedule Caste, and Schedule Tribe populations of the surveyed district according to the 1981 Census reports. Table-III shows the average Annual rain fall in mm districtwise of the areas surveyed as per Bihar H-and Book of statistics, 1984.

Table No. 1

Name of Districts	Land area in Sq. Km.*	Forest area in Sq. Km.**	Per capita forest area in hectares
1	2	3	4
1. Gaya	6545.00	717.03	0.022
2. Nawadah Gaya (Old)	2494.00	568.40	0.052
3. AurangabadGaya (Old)	3305.00	210.28	0.017
4. Munger	7908.00	1291.00	0.039
5. Hazaribagh	11165.00	5278.94	0.240
6. Giridih	6892.00	2289.30	0.132
7. Dhanbad	2996.00	263.80	0.012
8. Palamau	12749.00	5559.73	0.290
9. Ranchi Ranchi (Old)	18266.00	1564.87	0.110
10. Gumla Ranchi (Old)	18266.00	1503.75	0.110
11. Lohardaga Ranchi (Old)	18266.00	300.00	0.110
12. Singhbhum	13440.00	4464.00	0.155
13. Santhal Parganas (Old)	14206.00	1923.89	0.052

* Bihar through figures, 1983.

** Annual Administrative Report cum Statistical Glimpset 1985-86 and Working Plan of Gaya Division 1980-81 to 199-2000.

Table No. II

District	General Population	Schedule Caste	Schedule Tribe	Total
1	2	3	4	5
1. Gaya	2332351	800563	1261	3134175
2. Nawadah Gaya (Old)	8284443	269501	1233	1099177
3. AurangabadGaya (Old)	953698	282985	389	1237072
4. Munger	2731252	523324	60851	3315427
5. Hazaribagh	1584547	414971	198792	2198310
6. Giridih	1280591	225993	224878	1731462
7. Dhanbad	1591466	330767	192777	2115010
8. Palamau	1087871	478225	351432	1917528
9. Ranchi	1180301	158099	1732032	3070432
10. Gumla	1180301	158099	1732032	3070432
11. Lohardaga	1180301	158099	1732032	3070432
12. Singhbhum	1463240	137055	1261504	2861799
13. Santhal Parganas (Old)	2037859	311801	1367868	3717528
Total	17071619	3933284	5393017	26397920

Table No. III

Name of Districts	Average Annual Normal Rainfall in M.M.
1	2
1. Gaya	1150.8
2. Nawadah	1047.5
3. Aurangabad	1236.7
4. Munger	1206.7
5. Hazaribagh	1284.5
6. Giridih	1210.8
7. Dhanbad	1310.7
8. Palamau	1335.1
9. Ranchi Ranchi (Old)	1482.6
10. Gumla Ranchi (Old)	1482.6
11. Lohardaga Ranchi (Old)	1482.6
12. Singhbhum	1438.6
13. Santhal Parganas	1377.2

2. Object

The main object of the survey is to study the potentiality and availability of various medicinal plant species in the forests of North and South Chotanagpur Division and also in Gaya (Old), Munger and Santhal Parganas (Old) districts. This survey would also enable us to find out the medicinal species which are rare in the forests and may become endangered if they are exploited. It would also enable us to determine the species, the requirement of which could be made by raising plantations.

3. Brief description

(a) Gaya, Nawadah and Aurangabad districts (Old Gaya)

The districts of Gaya, Nawadah and Aurangabad which lie on the north-eastern and southern part of Bihar comprising a compact block are situated between 24°17' and 25°19' N latitudes and 84° and 86° E longitude.

The districts of Gaya, Nawadah and Aurangabad, that is, old Gaya, are bounded on the east by old Shahabad district on the west by Munger, on the north by old Patna district and on the South by Hazaribagh and Palamau districts.

The principal rivers of these districts are the Sone, Bahamen, Punpun, Adni, Morhar, Sorhar, Lilajan, Mohanee, Tilaiya, Dhanjari and Sokari. Most of the rivers are hill streams and originate from the high lands of the Chotanagpur plateau. They flow from south to north in almost parallel courses.

The district headquarters are respectively located at Gaya, nawadah and Aurangabad. Gaya has two subdivisions with headquarters at Gaya and Jahanabad. Aurangabad and Nawadah has only one subdivision with headquarters at Aurangabad and Nawadah respectively.

A wide alluvial plain stretches away to the north, broken here and there by groups of low ranges of hills or isolated peaks springing abruptly from the level country. The altitude varies between 100 m to 700 m above the mean sea level.

The districts are mainly served by G.T. Road. The G.T. Road passes through Gaya and the heart of Aurangabad district, whereas the main Ranchi-Patna road passes through the Nawadah district. The most important railway station through which all the mails and express pass, is Gaya. The important railway stations from where the forest produce are despatched and imports are made, fall in the districts of Gaya, Nawadah and Aurangabad.

The mica schists are found in the South of the districts and consist mainly of quartz, felspar, muscovite and biotite.

The jurisdiction of Gaya Territorial Division extends to all the three districts of Gaya, Nawadah and Aurangabad.

(b) Munger and old Santhal Parganas districts

The districts of Munger and Santhal Parganas (Old) lie on the North-East part of Bihar and are situated between 23^{o} 45' to 26^{o}16' N latitude and 85^{o}45' to 87^{o}55' E longitude.

Munger and Santhal Parganas districts are bounded on the east by districts of West Bengal, on the west by Patna and Gaya districts, on the north by the river Ganges and on the south by Hazaribagh, Giridih and Dhanbad districts.

The forests of Munger districts are located on the hills and undulating tract lying south of the river Ganga and extend to the some what flat top of the chakai plateau. The hilly tract covered by the forests comprises a number of low ranges and isolated peaks and outlines of the Vindhya series which enter the district from the south and gradually converge towards Munger town where they dip under the Ganga. Kharagpur Hills are the most important and extensive hill range in the region, extending over 676 sq. km. In the valleys and at the foot hills are several hot springs of which the finest are those of Bhimbandh, though those at *Sitakund* and *Risikund* are better known.

To the south-west of the Kharagpur Hill there is another block of hills which are known locally as the Gidheshwar hills or Gidhaur hills.

The principal river of Munger districts is the Ganga which flows on the northern edge of the tract dealt with, Among the smaller rivers that pass through the forest area are the keul and Mani.

The district head quarters are located at Munger. There are four subdivisions namely Munger Sadar, Jamui, Lakhisarai and Seikhpura in Munger district. The entire forest are of the district of Munger are located in Munger and Jamui Afforestation Divisions. Dumka forest division is a part of Santhal Parganas district. The elevation in general varies from 152 metres to 244 metres above the mean sea level though some hills attain an altitude of 457 metres and one or two of them such as Mahuagarhi rise to 503 metres.

All the **nalas** including big rivers like Gumani and the **Kajhia** originate from the central ridge draining to Dumka and Godda districts.

Expect the big valley of thee Brahminis, small valleys are enclosed by forest covered hills. Several hills are found rising from 76 metres to 274 metres above sea level. Among the hills montion may be made of the Belbani Papar, Gawra Pahar and Donia Pahar which form important land marks in the locality.

The Railways in Santhal Parganas district terminate on the fringe of the district. However, practically all the important railway stations like Pakur, Sahebganj, Maheshpur, Rampurhat, Suri, Barharwa etc. are linked by tarred roads. Pitched roads from Dumka to Sahebganj and from Godda to Sahebganj Via Simra Pirpaiti are interesected by a number of kacha roads. All the important railways pass through the Jashidih junction of old Santhal Parganas district.

(c) Hazaribagh, Giridih (old Hazaribagh) and Dhanbad district

The districts of hazaribagh, Giridih and Dhanbad comprising north-eastern portion of Chotanagpur plateau are located between 24°50' and 23°30' N latitude and 86°50' and 84°27' E longitude.

The district of Hazaribagh, Giridih and Dhanbad are bounded on the cast by bankura district (West Bengal), on the west by Palamau district (Bihar) on the north by Nawadah and Gaya districts (Bihar) and on the south by Ranchi district (Bihar). These districts form part of north eastern fringes of the Chotanagpur plateau, mainly the hilly portion tract. The elevation varies from 300 metre to 1366 metres which is the height of the Parasnath Hill. Incidentally this hill is the highest in Bihar.

The principal rivers of these districts are Damodar, Barakar, Konar, Usri and Lilajan. All these rivers are rain fed and not navigable. There are various resources located on Damodar, Barakar and Konar, rivers namely, Panchet and Tenughat on Domodar, Koner on river Konar and Tilaiya as well as Mainthan on Barakar.

The district headquarters are located at Hazaribagh, Giridih and Dhanbad. Hazaribagh has three subdivisions with headquarters at Hazaribagh, Chatra and Koderma. Giridih has two subdivisions with head quarters at Giridih and Bermo. Dhanbad has also two subdivisions with head quarters at Dhanbad and Baghmara. Giridih and Dhanbad districts are honey combed by goal mines specially in Dhanbad district. Hazaribagh has also got a large number of coal mines, specially in the southern part adjoining Ramgarh.

The districts are served by G.T. Road, Assam access Road, Dumri-Bhagalpur, Tori-Chatra. Gaya Road and N.H. 33 passing through Ramgarh, Hazaribagh, Koderma etc. The districts are also served by Grand cord railway line, Barka-kana-Gomoh railway line and various branch lines. There is occurrence of mica in Koderma and Giridih. The big steel Industry of Bokaro is located in Dhanbad district.

(d) Ranchi, Gumla and Lohardaga districts (Old Ranchi)

The districts of Ranchi, Lohardaga and Gumla are located between 22°20' and 23°35' N latitude and 80°0' and 80°53' E longitude.

Thee districts of Ranchi, Gumla and Lohardaga i.e. Ranchi (old) are bound by the forests of Palamau and Hazaribagh districts on the north and by the forests of Singhbhum districts on the South. In the east, lie the Purulia district of West Bengal and Singhbhum district whereas in the west lies the Palamau district. The configuration of the plateau

varies considerably from place to place. Towards the west, it is hilly and some of the hills are steep to precipituous rising up to 1069 m above M.S.L. Northern and Southern areas are also hilly. The altitude varies from about 213 m to 1068 m. Sal is the major crop of the forests of Ranchi district. Except for small areas like the forests of Durgo, Posrar, Kham, Pahardam, Tataro etc. where the crop finds to be moist, the forests in the northern, southern central and eastern areas are predominantly dry deciduous. The sal is red ferruginous loan and bouldary with several water springs even on higher slopes. Shifting cultivation was earlier practised in all the hilly areas without hindrance. The effect of shifting cultivation is visible in many hilly forests. It has resulted in many blank pathos or the ousting of sal by miscellaneous species like kend, piyar or thorny species.

(e) Singhbhum district

The Singhbhum district lies between 21°58' and 23°36' N latitude and between 85°0' and 86°54' E longitude.

As regards Singhbhum district, it is bounded on the east by Midnapur district of West Bengal, on the west by Ranchi district and part of Orissa state, on the north by Ranchi district and part of West Bengal and on he south by Orissa State. The district comprises the souther part of the Chotanagpur plateau and is a hilly upland tract. The elevation varies from 122 metres to 927 metres above M.S.L. There are several many hilly peaks which are above 600 metres in height. The principal rivers of the district are Subarnrekha, Karo, South Koel, Deo etc. All the rivers are rain fed and they remain dry for most part of the year except during the rains. The rivers are not navigable due to barrier of rock in river beds and irregular supply of adequate water. The district head quarters is at Chaibasa and there are four subdivisions in the district i.e. Sadar, Saraikela, Chakradharpur and Dhalbhum, Jamshedpur which is the subdivision headquarters of Dhalbhum is the principal town of the district and it is one of the most populous city of Bihar State.

The various silvicultural systems being followed in Singhbhum under different working plans are conversion to uniform, selection and coppice with standard systems.

(f) Palamau district

The district of Palamau which forms the north west portion of the Chotanagpur plateau lies between 23°20' and 24°39' N latitude and between 83°22' E and 85°E longitude.

The district is bounded on the north by districts of Shahabad (old) and Gaya (old), on the east by districts of Gaya (old) and Hazaribagh, on the South by the district of Ranchi (old) and on the west by Sarguja district of Madhya Pradesh and Mirzapur district of Uttar Pradesh. The district is cut into two approximately equal parts by the river koel which after flowing from east to west in the south of the district, turns north and eventually enters the Sone at the northern boundary of the district. These tract is hilly, the elevation varying from 700 ft. above M.S.L. in the north to 3820 above M.S.L. in the South, the average elevation of the district being 1200 M.S.L.

The district head quarters is at Daltonganj and there are three subdivisions in this district-Sardar, latehar and Garhwa. The district is served by Grand-Dehri-on-sone branch of the Eastern Railway and also by Garwa Road Chunar branch of the same Railway. It has also a network of P.W.D. district Board and Forest Department Roads. The whole areas are useful for Medicinal Plants.

सन्दर्भ ग्रन्थ-तालिका

क्र.सं.	नाम वर्ष	स्थान
१.	चोपड़ा, आर. एन., १९५६	ग्लासरी आफ मेडीसिनल प्लान्टस, सी.एस. आई. आर. नई दिल्ली।
२.	हैन्स, एच.एच., १९६१	बोटनी आफ विहार एण्ड उड़ीसा, एक से ३ भाग, बौटिनीकल सर्वे आफ इण्डिया, कलकत्ता।
	हेन्स, एच. एच., १९६१	ए फोरेस्ट फ्लोरा आफ छोटानागपुर एण्ड दी संथालपरगना, कलकत्ता।
३.	डथि, जेएफ., १९६१	फ्लोरा आफ अपर गंडेटिक प्लेन, भाग १ से दो, बोटेनिकल सर्वे आफ इन्डिया, कलकत्ता।
४.	हुकर, जे.डी., १८७२-१८९७	फ्लोरा आफ ब्रिटिश इन्डिया भाग १ से ७, लन्दन
५.	ठाकुर, बलवन्तसिंह एवं के.सी. चुनेकर, १९७२	ग्लासरी आफ वेजिटेविल ड्रग्स् इन वृहत्रयी चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।
६.	ठाकुर वलवन्त सिंह, १९५५	बिहार की वनस्पतियाँ, श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०, पटना - १।
७.	अन्तुभाई वैद्य, १९४२	वनस्पति परिचय, कमल कुटीर, फ्रिअर रोड़ फोर्ट, बम्बई।
८.	चरक संहिता, १९५४	अत्रिदेवटीका मोतीदास बनारसीदास, वाराणसी।
९.	सुश्रुसंहिता, १९५४	चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।
१०.	हरिनारायण आपटे शालिवाहनशकाव्दा, १८१८	धन्वन्तरि सहित राजनिघण्टु, आनन्दाश्रम मुद्रणालय, कलकत्ता।
११.	श्री के. एम. वैद्य, १९३६	अष्ठाङ्गहृदय कोष, दि मंगोडियन प्रेस, त्रिचूर।
१२.	वैद्यवापालाल जी शाह, १९८२	समकन्ट्रोवरसियल ड्रग इन इन्डियन मेडिसिनलप्लान्ट चौखम्बा ओरियन्टला, वाराणसी।

क्र.सं.	नाम वर्ष	स्थान
१३.	डा० रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी, १६८५	संदिग्ध वनोषधि दर्शिका श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि०, नागपुर ।
१४.	प्रो० आर. एस. सिंह, १६८४	संस्कृत काव्य में विशिष्ठ वनस्पतियाँ, जीवन शिक्षण मुद्रणालय, वाराणसी ।
१५.	वैद्य अम्बालाल जोशी, १६७३	वाल्मीकीय रामायण में आयुर्वेद, पूर्णिमा प्रकाशन जोधपुर, राजस्थान ।
१६.	आचार्य प्रियवर्त शर्मा, १६८३	प्रियनिघण्टु, चोखम्बा सुरभारति प्रकाशन, वाराणसी।
१७.	डा० मायाराम उनियाल, १६६४	संस्कृत साहित्य पर्यावरण एवं कालिदास वनस्पतियाँ श्री शर्मा आयुर्वेद मन्दिर, दतिया, म. प्र. ।
१८.	डा० मायाराम उनियाल, १६८१	अष्ठाङ्ग संग्रह की वनोषधियाँ श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०, पटना ।
१६.	डा० मायाराम उनियाल, १६६१	प्रयोगात्मक अभिनव द्रव्यगुण विज्ञान (सचित्र) श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०, पटना ।
२०.	यू०एन० प्रसाद, १६८८	सर्वे रिपोर्ट ओन एविविलटी एण्ड रिसोर्सिस आफ मेडिसनल प्लान्टस् इन दि ट्रायवलनं एण्ड अदर ऐरिया वन विभाग, बिहार राज्य ।
२१.	सम्पादक, जेवियर इन्स्टिस्यूट आफ सोसियल सर्विसिस राँची, १६८८	दी ट्रेडिसनल हर्वल मेडिसिन सिस्टम आफ, छोटानागपुर ।
	एनवल रिपोर्ट आफ संथाल परगना, १६८३-८४	बोटेनिकल सर्वे आफ इन्डिया ।
२२.	डा० एस. पी. गुप्ता	फोक्लोर एबाउट प्लान्टस विद रिफरेन्सिस टू मुण्डा कलचर, ग्लेमपस औफ इन्डियन एथनोवोटेली ।
२३.	डा० एस. पी. गुप्ता	नैटिव मेडिसिनल प्लान्टस वाई दि ओसार एण्ड नेतरहाट प्लेटु ।

क्र.सं. नाम वर्ष	स्थान
२४. वोडिग्ड. पी. ओ., १९२५	स्टेटीज इन संथाल मेडिसन एण्ड कनसर्निङ्ग फोक्लोर एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल।
२५. व्रीसरीज, जे., १९४१	दि वोटेनी आफ रांची डिस्ट्रीक्ट, विहार।
२६. जैन एस. के., १९६५	स्टेडीज इन इन्डियन इथनोबोटनी, ल्यस नोन यूज आफ फिप्टी कौमन प्लान्टस फ्रोम ट्राइवल ऐरिया ओफ मध्यप्रदेश, बुलेटिन, वोटेनिकल सर्वे इन्डिया।
२७. जैन एस. के., १९७०	मेडिसिनल प्लान्टस ओफ दि संथाल इकोनोमिक वोटेनी।
२८. गोल, साहू मुडल, १९८४	इथनो वोटनी आफ संथालपरगना बोटिनिकल सर्वे आफ इन्डिया।
२९. एच. ओ. सक्सेना, १९८१	इथनोवोटेनिकल स्टेटीज इन उड़ीसा।
३०. एच. ओ. सक्सेना, १९६८	इम्पोरटेन्ट आयुर्वेदिक प्लान्टस आफ मध्यप्रदेश स्टेस्ट फोरेस्ट रिसर्च इन्स्टिस्यूट, जबलपुर।
३१. पी. सी. शर्मा, सितम्बर-दिसम्बर, १९८८	समइन्टरस्टिंग मेडिसनल फोक्लोर फ्रोम विहार बुलेटिन आफ मेडिको इथनो, बोटेनिकल रिसर्च भो० १ नं. ३-४ सितम्बर दिसम्बर सी०सी० आर० एस०, नई दिल्ली १९८८।
३२. उमेशचन्द्र, १९८३	इथनोवोटिनी आफ मेडिकल प्लान्टस इन इन्ड़िया।

औषध द्रव्यों द्वारा निर्मित शास्त्रीययोग

आयुर्वेद में भैषज-द्रव्यों का प्राधान्य एवं फार्मेसियों द्वारा निर्मित औषधियाँ आयुर्वेदिक भैषज्य कल्पना में जिन महत्वपूर्ण एवं प्रमुख जड़ी-बूटियों द्वारा आयुर्वेदिक फार्मेसियाँ बटी-चूर्ण, आसव, अरिष्ठ, तैल, अवलेहों आदि का निर्माण करती है उसकी जानकारी संक्षिप्त रूप में इस तालिका में दी जा रही है।

क्र.सं.	औषध द्रव्यनाम	फार्मेसियों द्वारा निर्मित औषधयोग
१.	वत्सनाभः	आनन्दभैरव-संजीवनी वटी, म. विषगर्भ तैल
२.	अतिविषाः (उतीस)	महासुदर्शनचूर्ण, अमृतारिष्ट, योगराज गुग्गुलु-चन्द्रप्रभावटी-गंगाधर चूर्ण-बालचतुर्भद्र चूर्ण - वत्सकादि क्वाथ।
३.	गुडुचीः (गिलोय)	अमृतारिष्ट - दशमूलारिष्ट - संजीवनीवटी - पथ्यादिक्वाथ, चित्रकहरीतिकी - चन्द्रप्रभावटी - सर्वज्वरहर - लौह - गंधक - रसायन - कैशोर - गुग्गुलु।
४.	पाठा	सारीवाद्यारिष्ट-चन्दनासव-विडंगासव-सोमनाथ-रस-महा.-योगरागुगुलु-प्रदरारिलौह-पुष्यानुग्चूर्ण।
५.	दारुहरिद्राः	खदिरारिष्ट-अश्वगंधारिष्ट-अशोकारिष्ट-कुमार्यासव-रक्तशोधकवटी-हरिद्राखण्ड-चन्द्रप्रभावटी - जात्यादितैल-पुनर्नवामण्डूर-म, नारायण तैल।
६.	वरुणः	महा मंजिष्ठाद्यारिष्ट-कांचनार गुगुलु।
७.	तुवरकः	श्री गोपाल तैल - मंजन, चालमुगरातैल।
८.	नागकेशरः	द्राक्षासव-लवणभास्कर चूर्ण-च्यवनप्राश-पुष्यानुग्चूर्ण-अश्वगंधारिष्ट-दशमूलारिष्ट-सुपारीपाक-प्रदरनाशकचूर्ण।
९.	शालः	महामंजिष्ठाद्यारिष्ट।
१०.	बला	बलारिष्ठा-महा चन्दनादि तैल-च्यवनप्राश-मन्मथरस-पुनर्नवारिष्ट-महानारायणतै।
११.	मोचरसः	चन्दनासव-अभयारिष्ट-प्रदरारिलौह-कुटजावलेह-पुष्यानुक् चूर्ण-चन्दनादि-चूर्ण-सौभाग्यशुष्ठी-पाक।
१२.	शालम्ली	पत्रं-गासव-बोलबद्धरस-कोमधेनुरस-सुन्दरीकल्प-चन्द्रकलावटी।

क्र.सं.	औषध द्रव्यनाम	फार्मेसियों द्वारा निर्मित औषधयोग
१३.	गोक्षुर (गोखरु):	दशमूलारिष्ट-दशमूलक्वाथ-दशमूलतैल-अभयारिष्ट-अमृतारिष्ट च्यवनप्राश-गोक्षुरादि-गुग्गुलु-महानारायण तैल - महामाषतैल ।
१४.	अहिफेनः	अहिफेनासव, दुग्धवटी ।
१५.	नागवला :	नागबला चूर्ण ।
१६.	चांगेरीः	चांगेरीघृत ।
१७.	निम्बुकः	यक्द्वारि लौह ।
१८.	विल्वः	दशमूलारिष्ट - दशमूल तैल-अमृतारिष्ट-च्यवनप्राश-महानारायण तैल-महायोग-तैल-धान्यपंचक क्वाथ-पुष्पानुक्चूर्ण-वत्सकादि-क्वाथ ।
१९.	तेजबलः	बाहुशांलगुंडं, दन्तमञ्जन ।
२०.	गुग्गुलुः	योगराज-मुग्गुल, कांचनार-गुग्गुलु, आरोग्यवर्धिनी, वटी, चंद्रप्रभावटी, कैशोर-गुग्गुलु, पुनर्नवादि-गुग्गुलु, त्रिफला-गुग्गुलु-गोक्षरादि-गुग्गुलु, कांचनारगुग्गुलु ।
२१.	निम्ब (नीम)	शंखपुष्पी-तैल, ज्वरसंहाररस, महामरिच्यादि-तैल, अर्शोध्नवटी, पथ्यादि क्वाथ-महासुदर्शन-चूर्ण-महामंजिष्ठाद्यारिष्ट-पुनर्नवादि क्वाथ-रक्तशोधकवटी ।
२२.	काकडासिंगी	बालचतुभद्रचूर्ण-दशमूलारिष्ट, च्यवनप्राश, कासवटी, कण्टकार्यावलेह, रसपीपरीरस- दन्तोदभेद् गादान्तक रस ।
२३.	भल्लातकः	संजीवनीवटी, कांकयन-वटी, अर्शकुठाररस, बाहुशालगुड़ ।
२४.	शिगुः संहिजंन चूर्ण ।	कृमिकुठाररस, महानारायण-तैल, जंन्मघुटी ।
२५.	अपराजिता	गर्भपाल-रस, स्वर्णमकरध्वज, कुमार्यासव ।
२६.	मधुयष्ठी	कासवटी, एलादिवटी, अश्वगंधारिष्ट, पुष्यानुकचूर्ण, गुलबनसादि-क्वाथ, श्वासचिन्तामणि, दशमूलारिष्ट, मधुयष्ठादि-चूर्ण ।

क्र.सं.	औषध द्रव्यनाम	फार्मेसियों द्वारा निर्मित औषधयोग
२७.	सैरेयक (पियावांसा):	महारास्नादि-क्वाथ।
२८.	शालपर्णी	च्यवनप्राश, दशमूलारिष्ट, दशमूलतैल, अमृतारिष्ट, चित्रकहरीकी, महामाषतैल, महानारायणतैल।
२९.	पृष्ठपर्णी	च्यवनप्राश, दशमूलारिष्ट, दशमूलतैल, अमृतारिष्ट, चित्रकहरीकी, महामाषतैल, महानारायण तैल।
३०.	लताकरंज	महासुदर्शन-चूर्ण, जात्यादि-तैल, महामंजिष्ठाद्यारिष्ट, कृमिकुठार-रस, महामरिच्यादि-तैल।
३१.	कपिकच्छु	मन्मथरस, धातुपौष्टिकचूर्ण, शतावर्यादिचूर्ण, कस्तुरीभैरवरस, मूसलीपाक, अगस्तहरीतकी, एलादि चूर्ण, सोमराजीतैल।
३२.	बाकुची	खदिरारिष्ट, महामंजिष्ठाद्यारिष्ट, सोमराजीतैल।
३३.	कांचनार	कांचनार-गुग्गुलु, चन्दनासव, उशीरासव-विडंगासव।
३४.	अशोक	अशोकारिष्ठ, अशोकचूर्ण।
३५.	आरग्वध (अमलसास)	रास्नादि-क्वाथ, जन्मघुटी, रास्नादि, क्वाथ, महामरिच्यादि-तैल, महामंजिष्ठाद्यारिष्ठ-सोमराजी तैल।
३६.	खदिर	खदिरारिष्ठ, दशमूलारिष्ट, पत्रंगासव, महामरिच्यादितैल महांजिष्ठाद्यारिष्ठ-सुन्दरीकल्प, खदिरादिवटी।
३७.	हरीतकी	त्रिफलाचूर्ण, त्रिफलाघृत, आरोग्यवर्धिनीवटी, योगराज-गुग्गुलु, गंधकरसायन, रक्तशोधकवटी, त्रिफला गुग्गुलु चन्द्रप्रभावटी, चित्रकहरीतकी, संजीवनीवटी।
३८.	विभीतक	त्रिफलाचूर्ण, त्रिफलाघृत, आरोग्यवर्धिनीवटी, योगराज-गुग्गुलु, गंधकरसायन, रक्तशोधकवटी, ,त्रिफलागुगुल, कासवटी, लवंगादिवटी, चन्द्रप्रभावटी।
३९.	अर्जुन	अर्जुनारिष्ट, अर्जुन-घृत, अश्वगंधारिष्ट, प्रभाकरवटी-सारिवादिवटी पुष्यानुक्चूर्ण।

क्र.सं.	औषध द्रव्यनाम	फार्मेसियों द्वारा निर्मित औषधयोग
४०.	लवंग (लौंग)	लवंगादिवटी, अविपत्तिकरचूर्ण, द्राक्षासव, द्राक्षारिष्ट, दशमूलारिष्ट, कासवटी, सुपारीपक, वब्लुलारिष्ट, खदिरारिष्ट।
४१.	जम्बु (जामुन)	मधुमेहरियोग, उशीरासव, पुष्यानुकचूर्ण चन्दनादि चूर्ण।
४२.	दाडिम	कासवटी, मुस्तादिरस-पीयूषवल्लीरस, कृमिकुठाररस, मरिच्यादिवटी, विल्वादितैल-सोमराजीतैल- चन्द्रकलारस।
४३.	धातकी	पुष्यानुक्चूर्ण, दशमूलारिष्ट, अश्वगंधारिष्ट, द्राक्षासव, अर्जुनारिष्ट-अशोकारिष्ट।
४४.	इन्द्रवारुणी	अभयारिष्ट-महामंजिष्ठारिष्ट, लोध्रासव, नारायणचूर्ण, सप्तविंशति गुगुलु, वाहुशालगुड।
४५.	पटोल	पुनर्नवादि-क्वाथ, चन्दनासव, अरविन्दासव-उशीरासव, अम्लपित्तक्वाथ।
४६.	मण्डूकपर्णी	(ब्राह्मी) बाह्मीतैल, बाह्मीघृत, बाह्मीरसायन, बाह्मीरसायन, ब्राहम्यादियोग।
४७.	हिंगु (हींग)	हिंगव्ष्टकचूर्ण-चित्रकादिवटी-गैसान्तक-वटी-शंखवटी, लशुनादिवटी।
४८.	शतपुष्पा (सोया)	रजःप्रवर्तनीवटी, एरण्डपाक महालाक्षादितैल, महामाषतैल-वृ. सैंधवादि-तैल सौभाग्ययशुण्ठीपाक।
४९.	मिश्रेया (सौंफ)	पंचषकारचूर्ण, अभयारिष्ट, जन्मघूटी-कुमार्यासव-नारायणचूर्ण, एरण्डपाक, सारस्वतारिष्ट, शतपुष्पादिचूर्ण।
५०.	धान्यक (धनियां)	धान्यपंचक-क्वाथ, लवणभास्करचूर्ण, अभयारिष्ट, सुपारीपाक-कुमार्यासव
५१.	अजमोद	योगराज-गुगुलु, नारायणचूर्ण, कृमिमुद्गररस, सारस्वतचूर्ण, अजमोदादिचूर्ण।
५२.	यवानी (अजवाईन)	हिंग्वाष्टकचूर्ण, लोहासव, चित्रकादिवटी, गैसान्तकवटी, योगराज-गुगुलु-नारायणचूर्ण (यवानी) अग्नितुण्डीवटी, अग्निसंदीपन, महाशंखवटी, शूलवर्जिनीवटी।

क्र.सं.	औषध द्रव्यनाम	फार्मेसियों द्वारा निर्मित औषधयोग
५३.	जीरक (श्वेत)	जीरकारिष्ट-अग्निमुखचूर्ण-लवणभास्करचूर्ण-हिंगवाष्टकचूर्ण अमृतारिष्ट-लशुनादिवटी-क्षुधाकारीवटी, अशोकारिष्ट।
५४.	कालाजीरा	हिंगवाष्टकचूर्ण, लवणभास्करचूर्ण, दशमूलारिष्ट, अशोकारिष्ट, नमकसुलेमानीचूर्ण, योगराजगूगलु।
५५.	जीरक (कृष्ण)	गर्भपालरस, नारायणचूर्ण।
५६.	गंधप्रसारणी	प्रसारणीतैल, महानारायण-तैल-महामांषतैल, बलारिष्ट।
५७.	जटामांसी	दशमूलारिष्ट अरविन्दासव, पीप्पल्यासव, ब्राह्मीवटी-दिमागपौष्टिक-रसायन, लवंगादिचूर्ण-दशांगलेप।
५८.	भृंगराज	भृंगराजासव, महाभृंगराजतैल, गंधकरसायन, षडबिन्दुतैल, अश्वकंचुकीरस, सूतशेखररस, आनन्दभैरव रस।
५९.	पुष्करमूल	दशमूलारिष्ट, महासुदर्शनचूर्ण, नारायणचूर्ण।
६०.	कुष्ठ (कूठ)	दशमूलारिष्ट, सारिवाद्यारिष्ट, कुमार्यासव, च्यवनप्राश, पुनर्नवामण्डूर, महासुदर्शनचूर्ण, महामंजिष्ठाद्यारिष्ट, नारायणचूर्ण।
६१.	चित्रक	गैसान्तकवटी, चित्रकादिवटी, दशमूलारिष्ट, यकृतप्लीहारि। लौह-कुमार्यासव-द्राक्षासव-लोहासव-चित्रकहरीतकी-अश्वगंधारिष्ट।
६२.	विडंग	विडंगासव लौहासव, कुमार्यासव, जन्मघूटी, दशमूलारिष्ट, नारायणचूर्ण, अविपत्तिकरचूर्ण, संजीवनीवटी, अग्नितुण्डीवटी, सुन्दरीकल्प, दशमूलारिष्ट, प्रदररिपुरस, गंगाधररस, पुष्याक्चूर्ण, काशीसादि-तैल इरिमेदादितैल।
६३.	कुटज	कुटजारिष्ट, विडंगासव, महामंजिष्ठाद्यारिष्ट, गंगारस, पीयूषवल्लीरस प्रदरारिलौह महासुदर्शनचूर्ण।

क्र.सं.	औषध द्रव्यनाम	फार्मेसियों द्वारा निर्मित औषधयोग
६४.	सप्तपर्ण	अमृतारिष्ट, महामरिच्यादि तैल।
६५.	सर्पगंधा	दिमाग्दोषहरी, ब्रेनटेव, सर्पगन्धाचूर्ण, सर्पगन्धाधनवटी।
६६.	कनेर	काशीसादितैल, मरिच्यादि तैल।
६७.	अर्कद्वय	महाविषगर्भतैल अग्निवर्धक वटी।
६८.	सारिवाद्वय	सारिवाद्यारिष्ट, दशमूलारिष्ट, पत्रंगासव, अरविन्दासव, सारिवादि-वटी रक्तशोधकवटी-चन्द्रकलारस-अश्वगंधारिष्ट।
६९.	कुपीलु (कुचला)	अग्नितुण्डीवटी, विषमुष्टयादिवटी-महाविषगर्भतैल।
७०.	चिरायता	सुदर्शनचूर्ण, चन्द्रप्रभावटी, चन्दनासव, सर्वज्वरहर-लौह-पथ्यादिक्वाथ, लोध्रसव।
७१.	शंखपुष्पी	शंखपुष्पी-तैल ब्राह्मीवटी-ब्राह्मीघृत, सारस्वतचूर्ण, दिमागपौष्टिकरसायन, ब्रेनटेव शंखपुष्पीसीरप।
७२.	त्रिवृत्त	अविपत्तिकर-चूर्ण, धातुपौष्टिकचूर्ण, अश्वगंधारिष्ट, पुनर्नवामण्डूर, दशमूलारिष्ट, नारायणचूर्ण, अभयारिष्ट, चन्द्रप्रभावटी, योगराज गुगुलु।
७३.	कण्टकारी	कण्टकारीअवलेह, कासामृत, दशमूलारिष्ट, अमृतारिष्ट, च्यवनप्राश।
७४.	कालीमिर्च	मरिच्यादिवटी, हिंगवाष्टकचूर्ण-लशुनादिवटी, आनन्दभैरवरस, शंखवटी, कनकासव, चन्द्रप्रभावटी, लवणभास्करचूर्ण।
७५.	जायफल	दशमूलारिष्ट, द्राक्षासव, शूलवर्जिनीवटी, आनन्दभैरव, सुपारीपाक, मकरध्वजगुटिका, पूर्णचन्द्ररस, कर्पूरादिवटी।
७६.	जावित्री	कफकर्तरीरस, पीयूषबल्लीरस, खादिरादिवटी, महासुदर्शनचूर्ण, मूसलीपाक, मन्मथरस, ब्राह्मीवटी।
७७.	दालचीनी	दशमूलारिष्ट, अश्वगंधारिष्ट, लवणभास्करचूर्ण, महासुदर्शनवटी, षड्बिन्दु तैल , गंधकरसायन, पीयूषवल्लीरस, ब्राह्मीवटी।
७८.	कर्पूर	कर्पूरादिवटी, खदिरादिवटी, कासवटी, महानारायणतैल, मकरध्वजगुटिका, लक्ष्मीविलासरस, कस्तूरीभैरवरस, वृ. चन्दनादिवटी।

क्र.सं.	औषध द्रव्यनाम	फार्मेसियों द्वारा निर्मित औषधयोग
७६.	अगरु	च्यवनप्राश, महानारायण-तैल, शंखपुष्पीतैल, इरिमेदादितैल, लवंगादिचूर्ण।
८०.	चन्दन	चन्दनादिवटी, चन्दनासव, सारिवाद्यारिष्ट, दशमूलारिष्ट, अश्वगंधारिष्ट, अशोकारिष्ट, च्यवनप्राश-सुपारीपाक, चन्द्रप्रभावटी, वसन्तकुसुमाकर, चन्द्रकला-रस।
८१.	दन्ती	यककृतप्लीहारि-लौह, अभयारिष्ट, दैवदार्वारिष्ट, कुमार्यासव, अर्शकुठाररस, चन्द्रभावटी, महाशंखवटी।
८२.	आमलकी (आंवला)	त्रिफला-चूर्ण, त्रिफलाघृत, योगराज-गुगुलु-आरोग्यवर्धनीवटी, रक्तशोधकवटी, चित्रकहरीतकी, च्यवनप्राश, त्रिफला-गुगुलु कैशोर-गुगुलु।
८३.	उदुम्बर (गूलर)	मधुमेहारियोग-उशीरासव-कर्पूरादिवटी।
८४.	भांगः	गंगाधर-चूर्ण, लाई-चूर्ण, जातिफलादिचूर्ण मदनानन्दमोदक।
८५.	देवदारु	देवदार्वादि-काढा, देवदार्व्याद्यारिष्ट, दशमूलारिष्ट, खदिरारिष्ठ कुमार्यासव, कफकुठाररस।
८६.	बृहती	दशमूलारिष्ट, अमृतारिष्ट, च्यवनप्राश-दशमूल-तैल।
८७.	अश्वगंधा	अशवगंधादिघृत, फलकल्याणधृत, अश्वगंधादिचूर्ण, धातुपौष्टिक-चूर्ण शतावर्यादिचूर्ण, स्वर्णमकरध्वज, रसराजरस।
८८.	धतुरा	कनकासव, विषगर्भतैल, त्रिभुवनकीर्ति-रस, कफकुठाररस, जयमंगलरस
८६.	पारसीक	सुपारीपाक, मुस्तादिरस, अमृतभल्लातकपाक, मल्लतैल।
६०.	कुटकी	आरोग्यवर्धनीवटी, रक्तशोधकवटी, योगराजगुगुलु, पुनर्नवामण्डूर, कुमार्यासव, सारिवाद्यारिष्ट-म. सुदर्शन-चूर्ण, उन्मादगजकेशरी-रस।
६१.	श्योनाक	दशमूलारिष्ट, दशमूल-तैल, अमृतारिष्ट, च्यवनप्राश, महानारायणतैल महामांषतैल-शिर-शूलदिवजरस, चित्रकहरीतकी।

क्र.सं.	औषध द्रव्यनाम	फार्मेसियों द्वारा निर्मित औषधयोग
९२.	वासा	वासारिष्ट, पुनर्नवारिष्ट, अशोकारिष्ट, वासावलेह, जन्मघूटी, च्यवनप्राश, प्रदररिपुरस-गुलवनप्सादि-क्वाथ, वसन्तकुसुमाकर, कासामृत ।
९३.	पाटला	दशमूलारिष्ठ, दशमूलक्वाथ, दशमूलतैल, दशमूलअर्क ।
९४.	निर्गुण्डी	निगुण्डीकल्प ।
९५.	अग्निमन्थ	दशमूलारिष्ट, अमृतारिष्ट, च्यवनप्राश, महामांषतैल, म. नारायणतैल, श्रीगोपालतैल ।
९६.	भारंगी	दशमूलारिष्ट, योगराज-गुगुलु-कनकासव, महासुदर्शनचूर्ण, महाचन्दनादितैल-महामंजिष्टाद्यारिष्ट ।
९७.	गंभारी	चन्दनासव, च्यवनप्राश, उशीरासव, अरविन्दासव, दशमूलारिष्ट, अमृतारिष्ट, कुटजारिष्ट ।
९८.	तुलसी	ज्वरसंहारकर, त्रिभुवनकीर्तिरस, नष्टपुष्पान्तकरस, मुक्तापंचामृत, कासामृत, तालिसादिचूर्ण ।
९९.	द्रोणपुष्पी	बालरोगान्तक रस, विषमज्वरादिक्वाथ ।
१००.	पुनर्नवा	पुनर्नवारिष्ट, पुनर्नवादिक्वाथ, पुनर्नवामण्डूर, पुनर्नवागुगुलु, च्यवनप्राश, दशमूलारिष्ट, कुमार्यासव, म. नारायणतैल- सुधानिधिरस
१०१.	अपामार्ग	कफकर्तरीरस-सौभाग्यवटी, अगस्तहरिंतकी ।
१०२.	तालीस	तालीसादि-चूर्ण, लवण-भास्करचूर्ण, व्योणादिवटी-कनाकासव, सुपारीपाक, नष्टपुष्पान्तकरस, म.-सुदर्शनचूर्ण, एलादिचूर्ण ।
१०३.	हरिद्रा	हरिद्राखण्ड, दशमूलारिष्ट, अश्वगंधारिष्ट, कुमार्यासव, पुनर्नवामण्डूर, म. सुदर्शनचूर्ण, एरण्ड-तैल चन्द्रप्रभावटी, बसन्तकुसुमाकररस, दशांगलेप ।
१०४.	शुण्ठी (सोंठ)	व्योषादिवटी, योगराजगुगुलु, पुनर्नवादिगुगुलु, आनन्दभैरव, संजीवनवटी ।

क्र.सं.	औषध द्रव्यनाम	फार्मेसियों द्वारा निर्मित औषधयोग
१०५.	लघुएला (इलायची छोटी)	एलादिवटी, सारिवाद्यारिष्ट-चन्द्रप्रभावटी, गर्भावटी, गर्भपालरस, सितोपलादिचूर्ण, तालिसादिचूर्ण, एलाचूर्ण, ब्योषादिवटी, एलादिवटी आदि।
१०६.	एलावृहत् (बड़ी इलायची)	दशमूलारिष्ट द्राक्षासव-कफकर्तेरी रस-गंधकरसायन-लवनणभास्करचूर्ण-महानारायणतैल, सारिवाद्यारिष्ट आदि।
१०७.	रसोन (लहसून)	लशुनादिवटी-रसोनतैल।
१०८	घृतकुमारी	कुमार्यासव, मुसव्वर।
१०९.	शतावरी	शतावर्यादिचूर्ण, धातुपौष्टिकचूर्ण, सुपारीपाक, लक्ष्मीविलास, विषगर्भ तैल, म. नारायण तैल, बसन्तकुसुमाकर-रस, सारस्वतारिष्ट फलकल्याणघृत।
११०.	बच	अश्वगंधारिष्ट, योगराजगुगुल, संजीवनीवटी, ब्राह्मीवटी, सारस्वतरिष्ट उन्मादगजकेशरीरस, स्मृतिसागर-रस-चन्द्रप्रभावटी।
१११.	मुस्ता	दशमूलारिष्ट, मुस्तारिष्ट, अश्वगंधारिष्ट, च्यवनप्राश, बालचतुर्भद्रचूर्ण, अविपत्तिकरचूर्ण-मुस्तादिरस चन्द्रप्रावटी-अशोकारिष्ट, नवायसलौह-म.सुनर्शनचूर्ण।
११२.	उशीर	दशमूलारिष्ट, सर्वज्वरहरलौह-धान्यपांचक क्वाथ सारिवाद्यारिष्ट, सारस्वातारिष्ट, दशांगलेप-महामंजिष्ठाद्यारिष्ट, महासुदर्शनचूर्ण, लवंगादिचूर्ण महानारायण तैल।

टिप्पणी : लोक परम्परागत जड़ी-बूटियाँ का एकमूलिका स्थानिक प्रयोग वनस्पतियों के विरण विवरण के साथ दिया गया है।

बिहार के आदिवासियों में लोकप्रचलित बूटी बंझोरी (वन्ध्यावरी) द्वारा गर्भ-निरोध

'यस्य देशस्य यो जन्तुः तज्जं तस्यौषधं हितम्'

अर्थात् जो व्यक्ति जिस देश की हवा-पानी में पलता है, उसी जलवायु के अनुकूल औषध, आहार-बिहार स्वास्थ्य के लिए हितकारी है। इस सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए केन्द्रीय आयुर्वेद एवं सिद्ध अनुसंधान परिषद भारत सरकार के अधीनस्थ भारत के विभिन्न प्रदेशों में वनौषधि सर्वेक्षण एककों की स्थापना की गई, जिनका कि मुख्य उद्देश्य भारत के सुदूर ग्रामीण आदिवासी एवं हिमालय के सीमान्त प्रदेशों में उपयोगी जड़ी-बूटियों के ग्रामीणलोक-प्रचलित दावे, औषधद्रव्य-संग्रहमात्रा, एवं इन क्षेत्रों में उपलब्ध द्रव्यों का नामरूप परिचय करना है। आज देश में आबाध गति से बढ़ती हुई जनसंख्या को देखते हुए सरकार के स्वास्थ्य-मंत्रालय द्वारा परिवार नियोजन हेतु कतिपय उपयोगी परियोजनाएं प्रारम्भ की गई है। इन परियोजनाओं को ध्यान में रखते हुए स्वास्थ्य मंत्रालय ने भारतीय चिकित्सा पद्धति के विशेषज्ञों का सम्मेलन इस उद्देश्य से बुलाया गया कि आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली में गर्भनिरोध में उपयोगी औषधियों एवं विधियों का पता लगाया जाए, जिससे देश में बढ़ती जनसंख्या को नियन्त्रित किया जा सके। इसी अधार पर केन्द्रीय आयुर्वेद अनुसंधान परिषद की कतिपय वनौषधि सर्वेक्षण एवं नैदानिक परीक्षण शोध संस्थान इस कार्य में संलग्न हैं। आशा है कि निकट भविष्य में इन परीक्षणों के कारगर परिणाम मिल सकेंगे।

सर्वप्रथम इस परियोजना के अंतर्गत क्षेत्रीय आयुर्वेद अनुसंधान केन्द्र, पटना का वनौषधि सर्वेक्षण दल, वर्ष १९७८ को बिहार प्रदेश के नवादा जिले के आदिवासी क्षेत्र सखोदरा के ग्रामीण अंचलों में भेजा गया था वनौषधि सर्वेक्षण के दौरान गर्भनिरोध में उपयोगी लोकप्रचलित बूटी बंझोरी का पता लगाया गया। परिषद ने इस बूटी पर अग्रिम शोधकार्य हेतु योजना प्रारंभ की तथा स्थानिक लोगों से विशेष सम्पर्क के लिए डा० रमेश नौटियाल एवं डा० मायाराम उनियाल को नवम्बर १९८४ में दिल्ली से पटना भेजा गया। अनुसंधान दल परिषद के आदेशानुसार पटना से नवादा जिले के सखोदरा के ग्रामीण आदिवासियों में प्रचलित गर्भनिरोधक बूटी बंझोरी के विषय में जानकारी प्राप्त की, तथा इस बूटी का नाम, प्राप्तिस्थान, प्रयोज्य अंग, संग्रहमात्रा, बोटैनिकल नाम, औषध-सेवन, मात्रा आदि महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त की, जो निम्न प्रकार से वर्णित है।

द्रव्यनाम :- संस्कृत .....बन्ध्यावरी।

स्थानिक ....बंझोरी।

बोटैनिकल नाम Vicoa Indica DC

कुल ....भृंगराज कुल Composiatae

स्वरूप वर्णन

यह एक वर्षायु ३० से० मी० । एक मीटर तक ऊंचा शाकीय क्षुप है । काण्ड मृदु तलोत्थ, पर्ण-तन्तुर, अवृन्त, नोकदार, कर्णाकार, तीक्ष्ण, कभी-कभी काण्ड के नीचे चभाग की पत्तियां उपवृत्तयुक्त, अन्तः सतहरोमिल, अंकुरमय एवं छोटी ग्रन्थियुक्त दिखाई देती है। पुष्पत्रम पुष्पगुच्छकं, मुण्डक में एवं पीतवर्ण के होते हैं। पौधा अधिकांश झाड़ वाले शुष्क वनों में पाया जाता है। नमदार जमीन पर यह पौधा एक मीटर तक लम्बा होता है। सूखी पथरीली भूमि पर इस पौधे का विकास कम होता है।

प्राप्ति स्थान

भारत के प्राय सभी प्रदेशों के उष्णकटिबन्ध एवं शुष्क-पथरीली भूमि पर पाया जाता है। बिहार के नवादा जिले के सखोदरा, पावापुरी, तेलियागठी, रांची, पलामू एवं संथाल परगना के वन क्षेत्रों में सुलभ है। आयुर्वेदिक निघण्टु ग्रन्थों में इस बूटी का स्पष्ट उल्लेख नहीं है।

पुष्पकाल-अगस्त से अक्तूबर, फलकाल-पुष्पकाल के बाद,

प्रयोज्यअंग-पंचांग।

स्थानिक ग्रामीण लोग प्रचलित दावे

बंझोरी के शाब्दिक अर्थ से स्पष्ट है कि इस बूटी के सेवन करने से स्त्रियों में बांझपन आ जाता है तथा गर्भस्थापन की क्षमता नष्ट हो जाती है। इसी कारण इसका संस्कृतनाम बन्ध्यावरी कहा गया है। बझोरी नामक बूटी का उपयोग इस क्षेत्र की ग्रामीण दाइयां गर्भनिरोध के रूप में बांझपन के लिए प्रयोग करती हैं। बूढ़ी दाइयां प्रसवोत्तर काल के बाद इस बूटी की १० ग्राम की गोली बनाकर मुखमार्ग से जल के साथ सहपान कराने से स्थाई बांझपन आ जाता है। ऐसी लोकपरम्परा इस क्षेत्र में प्रचलित है।

अनुसन्धान दल ने इस बूटी के स्थानिक प्रयोग की जानकारी बूढ़ी दाई डगरिन पारोदेवी से सम्पर्क किया जिससे पता चला कि पारोदेवी विगत कई वर्षों से बांझपन हेतु इस बूटी का उपयोग करती है। पारोदेवी का कहना है कि इन्होंने अब तक ७० महिलाओं

को प्रसवकाल के बाद ३-४ दिन तक लगातार सेवन कराया और औषधि सेवनोत्तर इन महिलाओं में गर्भधारण नहीं हुआ तथा इनमें स्थायी बांझपन आ गया यह अनुभव पारो देवी का है । स्थानीय चिकित्साधिकारी डा० सी० एस० मिश्रा, सर्वोदय आश्रम, सखोदरा में १६७२ से १६८३ तक करीब ६०-८५ महिलाओं में इस बूटी का प्रयोग कर चुके हैं । और डा० मिश्रा का कहना है कि प्रसवोत्तर बंझौरी के प्रयोग से ७० प्रतिशत लाभ होते देखा गया है । इस औषधसेवन के बाद महिलाओं में कोई अनुषंगी एवं विषैला प्रभाव नहीं देखा गया है । आर्तवकाल चक्र में भी कोई अनियमितता नहीं देखी गई एवं वैवाहिक जीवन में भी कोई अन्तर नहीं पाया गया । जिन महिलाओं को इस बूटी का सेवन कराया गया उनकी उम्र २२ वर्ष से ३६ वर्ष के बीच की थी । अनुसन्धान दल ने भी इस अवसर पर उनमें से कुछ महिलाओं से सम्पर्क किया जिन्होंने बंझौरी का सेवन किया औह उनको औषधसेवन के बाद कोई बच्चा पैदा नहीं हुआ । उनका विवरण इस तालिका में स्पष्ट किया गया है ।

बंझौरी जिन महिलाओं ने सेवन किया (तालिका)

क्र. सं.	नाम	ग्राम	उम्र	परिणाम
१.	चिन्ता देवी	मरयो	३२	४ बच्चे, एक लड़का ३ लड़की, सबसे छोट लड़की १० वर्ष की है । औषधिसेवन करने के बाद कोई बच्चा नहीं ।
२.	मुनिया देवी	मरयो	२८	२ बच्चे, छोटा बच्चा चपांच वर्ष का है । औषधिसेवन के बाद कोई बच्चा नहीं ।
३.	वीणा देवी	वाराखासरी	३०	६ बच्चे हैं दवाई खाई कोई असर नहीं हुआ।
४.	कलशा देवी	वाराखासरी	२८	४ बच्चे, औषधिसेवन के बाद ४ वर्ष से कोई बच्चा नहीं है ।
५.	चिन्ताबाई	वाराखासरी	२६	३ बच्चे, औषधि सेवन के बाद ५ वर्ष से कोई बच्चा नहीं है ।

इसी प्रकार ग्रामसेविका श्रीमती चन्द्रकला देवी ने भी कतिपय ग्रामीण महिलाओं में इस बूटी का प्रयोग किया जनके ५-६ वर्ष से कोई बच्चा पैदा नहीं हुआ । ग्रामसेविका ने मासिक ऋतुकाल के बाद ३-४ दिन तक लगातार इस बूटी का सेवन कराया और क्रमशः

तीन मास के ऋतुकाल के बाद दिया गया जिसमें ४०} लाभ देखा गया इस तरह के आंकड़े श्रीमती चन्द्रकला देवी से एकत्रित किए गए। डा० मिश्रा का कहना है कि सन् १९७३ से इस बूटी के विषय में जानकारी प्राप्त करने हेतु जामनगर, लखनू, देहली, चण्डीगढ़ आदि स्थानों से वैज्ञानिक आये हैं तथा जानकारी के बाद परीक्षण हेतु बंझौरी अपने साथ ले गए हैं। परिषद के देशी जड़ी-बूटियों की कार्मुकता के अध्ययन हेतु इस बूटी में शोधकार्य प्रारम्भ कर दिया है। औषधिप्रयोग विधि एवं मात्रा निम्न है।

औषधि प्रयोग विधि एवं मात्रा

स्थानिक महिलाएं जंगलों से ताजी वनस्पति का संग्रह करके, इसे सिलबट्टे में पीस लेती हैं एवं ५ से १० की संख्या में काली मिर्च मिलाते हैं। बंझौरी पीस कर गोली बनाने योग्य हो जाए तो २५ ग्राम की मात्रा में प्रसवकाल बाद तीन दिन तक पानी के साथ दिया जाता है। इस प्रकार इस बूटी के सेवन कराने पर स्थाई बांझपन आ जाता है। काली मिर्च पहिले दिन ७, दूसरे दिन १०, तीसरे दिन २१ दाने मिलाकर-पीसकर पानी के साथ महिलाओं को दिया जाता है। २ आर्तवकाल चक्र के बाद ३ मास तक क्रमशः इसी प्रकार बंझौरी का सेवन ९ बार दिया गया तो ४०} का लाभ देखा गया ऐसा स्थानिक दाइयों एवं ग्रामसेविका का अनुभव है। कभी कभी यह देखा गया है कि दवाई स्वाद में कटुकषाय रस होने के कारण महिलाए उल्टी कर देती हैं एवं पूर्ण मात्रा में औषधि का सेवन न करने से यह सहवास से लाभ नहीं देखा गया है। इन सभी सावधानियों का ध्यान औषधि परीक्षण काल में रखना चाहिए।

औषधि प्रभाव

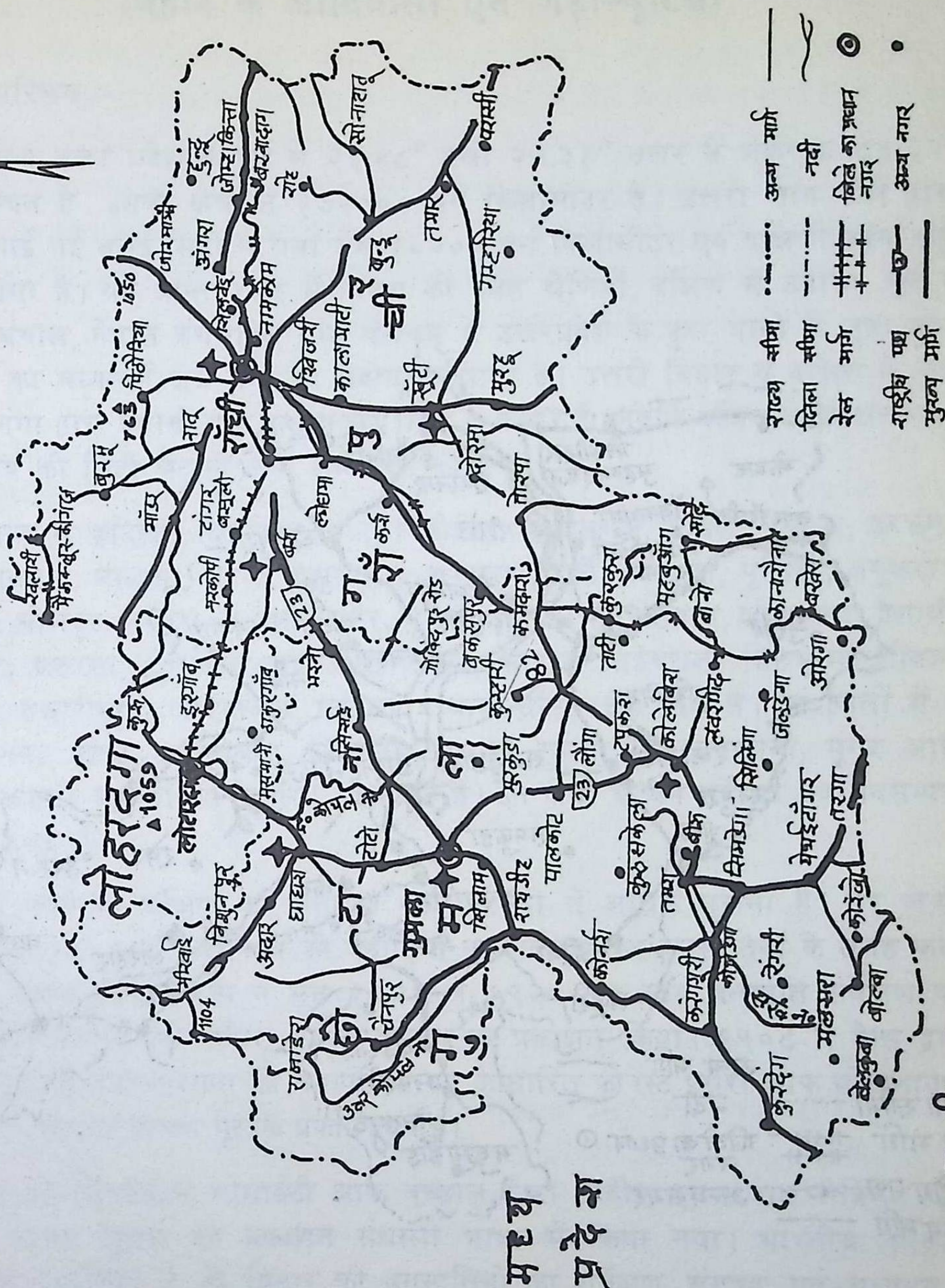
१० ग्राम से १५ ग्राम तक। प्रसवकाल के बाद दिन में एक बार। केवल ३ या ४ दिन।

औषधि मात्रा

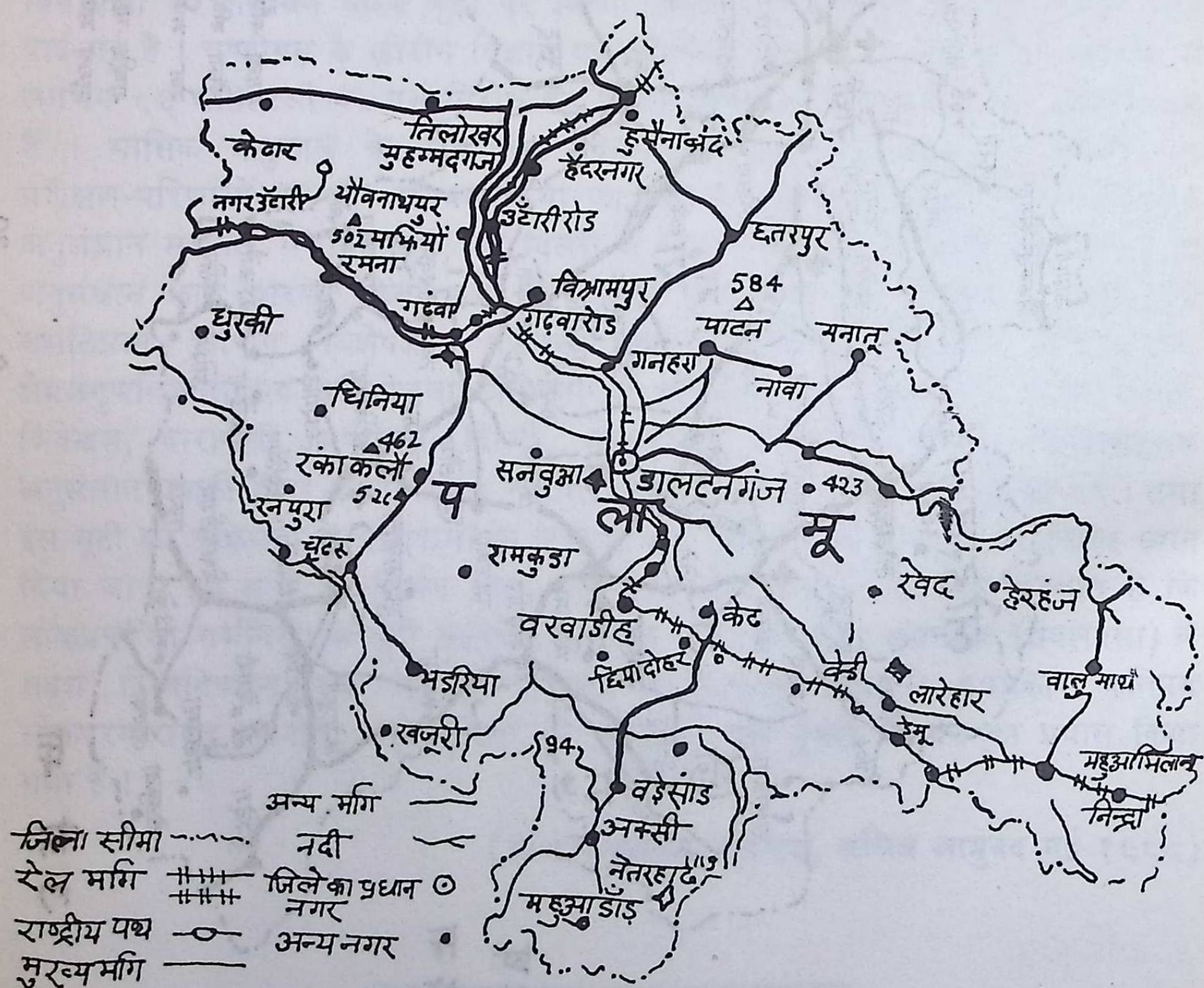
स्थानिक आंकड़ों एवं तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस औषधि प्रयोग के बाद कोई विषैला प्रभाव नहीं है। आर्तवस्राव महिलाओं में नियमित होता है। कुछ महिलाओं में औषधिसेवन करने से जी मचलना एवं उल्टी (वमन) आदि लक्षण पाए गए हैं। फोलोअप (औषधि परीक्षण) के कोई विधिवत् आंकड़े यहां पर नहीं मिल सके हैं।

केन्द्रीय आयुर्वेद अनुसन्धान परिषद में कतिपय परिवार कल्याण अनुसंधान एककों द्वारा बन्धावरी (बंझौरी) का शोधकार्य चल रहा है। चण्डीगढ़ स्थानकोत्तर संस्थान में बंझौरी के परीक्षणों के परिणामों से ऐसा पता चला है कि इस औषध का कोई विषैला प्रभाव नहीं है तथा कोई अनुषंगी प्रभाव नहीं पड़ता है। चूहों पर किए गए परीक्षणों के आधार ६०} गर्भनिरोधक सक्रियता पाई गई है। इस औषधसेवन के बाद बारम्बार सहवास के कारण २६} चूहों में सगर्भता पाई गई है। ऐसा (एम. गांधी, ए. शंकर नारायण) पी. जी. आई., चण्डीगढ़ के वैज्ञानिकों का विचार है। भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद ने भी इस बूटी की विषाक्तता का अध्ययन धवल चूहों पर किया जिससे पता चला है कि कोई विषक्ता नहीं पाई गई है। चण्ड़ीगढ़ के स्त्रीरोग विज्ञान एवं प्रसूति-विज्ञान विभाग स्नातकोत्तर संस्थान में लगभग ८६ महिलाओं पर गर्भ-निरोध हेतु प्रयोग किया गया जिनके परिणाम उत्साहजनक हैं। मासिक ऋतुकाल के बाद तीन दिवस हेतु तीन मास तक इस औषधि के परीक्षण-परिणामों का भी अध्ययन किया जा रहा है। इसके साथ-साथ केन्द्रीय आयुर्वेद अनुसंधान संस्थान, पंजाबी बाग, नई दिल्ली में माह १९८५ से इस बूटी का निदानपरक अनुसंधान कार्य प्रारम्भ किया गया है। अभी कुछ समय पूर्व परिषद ने अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त स्त्रीरोग विशेषज्ञों, प्रजनन एवं शरीरक्रिया विशेषज्ञों, जीवविज्ञानी, भैषजगुणविज्ञानी एवं परियोजना अधिकारियों की बैठक भी बुलाई थी जिसमें बम्बई, त्रिवेन्द्रम, वाराणसी, चण्डीगढ़, दिल्ली, अहमदाबाद में कार्यरत निदान चिकित्सात्मक अनुसंधान एककों द्वारा बन्ध्यावरी के गर्भनिरोधक परिणामों की भी समीक्षा की गई। तथा इस बूटी की सक्रियता के परिणामों के अध्ययन एवं चिकित्सा शोध कार्यों पर विशेष ध्यान दिया जाए, इस बात का निर्णय लिया गया। उपरोक्त आंकड़ों से ऐसा अनुमान है कि लोकप्रचलित गर्भनिरोधक बूटी बंझौरी का स्थान भारतीय पौधा सर्पगन्धा (धवलवसा) के सदृश विश्वविख्यात एवं परिवार कल्याण के कारगर होगा। इसप्रकार कतिपय लोकपरम्परागत उपयोगी जड़ी बूटियों की जानकारी इस पुस्तक में देने का प्रयास किया गया है।

(डा० मायाराम उनियाल, सचित्र आयुर्वेद मई १९८८)



छोटानागपुर रांची एवं गुमला आदिवासी क्षेत्र का मानचित्र



बिहार छोटानागपुर, पलामू आदिवासी क्षेत्र का मानचित्र

बिहार के आदिवासी एवं जड़ी-बूटियाँ

सामान्य परिचय :-

बिहार राज्य उत्तर प्रदेश के पूर्व में २३.४८" तथा २७.३१" उत्तर से लेकर ८ ८३.३२" पूर्व में स्थित है, इसका क्षेत्रफल १७२००० वर्ग किलोमीटर है। उत्तरी भाग गंगा द्वारा बहाकर लाई गई बलुई मिट्टी से तथा शेष १०००० वर्ग किलोमीटर एवं दक्षिणी भाग कड़ी चट्टानों जैसा है। यह प्रान्त उत्तर में बिन्ध्य की पर्वत श्रेणियों, दक्षिण में उड़ीसा, पूर्व में पश्चिमी बंगाल, नेपाल बंगलादेश तथा पश्चिम में उत्तरप्रदेश के कुछ भागों से जुड़ा हुआ है। राज्य का मध्यवर्ती क्षेत्र गंगा का मैदान कहलाता है। उत्तरी बिहार व दक्षिण के कुछ भागों में गंगा द्वारा बहायी गयी कुछ बालुई मिट्टी के कछार हैं, जबकि दक्षिण के छोटानागपुर पठारी क्षेत्र की मिट्टी चट्टानी तथा लाल रंग की है।

बिहार राज्य में कटिहार, खगडिया, गया, गिरीडिह, गोपालगंज, गोडला, गुमला, दरभंगा, देवघर, धनवाद, नालन्दा, पटना, पलामू, प. चम्पारण, पूर्वी चम्पारण, पूर्णिया, बेगूसराय, भागलपुर, भोजपुर, मधेपुरा, मधुबनी, मूंगेर, मुजफ्फरपुर, रांची, रोहतास, लोहरदगा, बैशाली, समस्तीपुर, सहरसा, संथालपरगना, छोटानागपुर, सारण, साहेबगंज, सिंहभूमि, सीवान, सीतामढ़ी, हजारीबाग औरंगाबाद, एवं जहानाबाद, सहित ३१ जिले हैं। इन जिलों में से संथालपरगना, रांची, हजारीबाग, सिंहभूमि, पलामू, गुमला, संथालपरगना, मूंगेर आदि जिले आदिवासी जनजातियों के लिये महत्वपूर्ण हैं। इन क्षेत्रों के बन हरे-भरे एवं वनसम्पदा के लिये प्रसिद्ध हैं।

बिहार के वनस्पति सर्वेक्षण का इतिहास एक शताब्दी से अधिक पुराना है। सर जे.डी. हुकर ने सन् १८४८ में पारसनाथ की पहाड़ियों का सर्वेक्षण कर वनस्पतियों के संगह करने में सफल प्रयास किया। हन्स ने सन १९२१ से १९२५ तक स्वयं वनस्पति सर्वेक्षण कर वौटेनी ऑफ बिहार एवं उड़ीसा नामक पुस्तक का प्रकाशन किया। १९०८ में हेन्स द्वारा छोटानागपुर एवं संथालपरगना की वनस्पतियों पर आधारित फोरेस्ट प्लोरा आफ छोटानागपुर एवं संथाल परगना नामक पुस्तक प्रकाशित हुई।

१९२५ में दि एशियाटिक सोसाईटी आफ वच्छाल द्वारा स्टेडीज इन संथाल मेडिसन एण्ड फोक्लोर नामक पुस्तक का प्रकाशन संथाली भाषा में किया गया। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के बैज्ञानिकों ने भी बिहार की वनस्पतियों का सर्वेक्षण, संग्रहण एवं अध्ययन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन वैज्ञानिको में श्रीवास्तव, मुखर्जी, वर्मा, पानिग्रही, शेशाद्री, बिजमकृष्ण एवं एस.के. जैन के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। सन १९४९ में ठा.

बलवन्त सिंह ने श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के माध्यम से बिहार राज्य के पलामू, रांची, सिंहभूमि, चम्पारण आदि कतिपय क्षेश्रों में उपलब्ध जड़ी-बूटियां का सर्वेक्षण कार्य सम्पादित किया गया, जिसका कि प्रकाशन सचित्र आयुर्वेद में बिहार की वनस्पतियों के शीर्षक से किया गया। विद्वान लेखक ने आदिवासी जनजातियों के लोकप्रचलित उपयोगी जड़ी-बूटियों की जानकारी स्थानिक नामों के साथ-साथ वौटैनिकल पहिचानभी इस पुस्तक में दी है जो कि महत्वपूर्ण सामग्री है। डा. सी. पी. गुप्ता निदेशक "दि बिहार ट्रायवल वेलफियर रिसर्च इन्स्टियूट," रांची ने आदिवासि जनजातियों में लोकप्रचारित जड़ी-बूटियों पर महत्वपूर्ण सामग्री का संकलन कर कतिपय लेख प्रकाशित किये हैं।

बिहार के वन :-

वन और वनस्पति पृथ्वी की शोभा एवं आभूषण हैं। ये बन जीवनदाता तथा वर्षा के नियंत्रक व दूषित पर्यावरण के नाशक है। वनसस्पदा प्रकृति के रक्षक एवं प्राणिमात्र के पोषक है। भारतीय संस्कृति में वन और वनस्पतियों को देवता का स्थान दिया गया है। ये वृक्ष स्वयं दिनभर सूर्य की प्रखर ताप, आँधी, तूफान आदि कष्टों का सहन कर मनुष्य और जीव-जन्तुओं को भोजन सामग्री एवं छाया प्रदान करके तथा स्वयं कष्ट सहते हुए दूसरों को सुख देने की दीक्षा देते हैं। ये मूक वनस्पतियाँ जो सभी प्राणियों के उपजीब्य हैं, जीवन हैं, जिनका जन्म ही अन्य जीवों के उपकार के लिये है जो किसी भी याचक को निराश नहीं करते वे वन एवं वनस्पतियाँ धन्य हैं। इस प्रकार के वनों के सन्दर्भ वेदों में मिलते हैं।

यथा – अहो एषां वरं जन्म सर्वप्राण्युपजीवनम्।
धन्या महीसहा येम्योः निराशानान्तिनार्थिनः।।
धन्ते भवं कुसुमपत्र फलावलीनां,
धर्मव्यथा वहति शीतमयं रूजं च।
यो देहमर्थयतिचान्य सुखस्य हेतु,
तस्मैबदान्य गुरूवे तरूवे नमस्ते।। भवभूतिः।

बिहार राज्य की ऐसी मूक-पुण्यां वनस्पतियों के आधार पर यहाँ के बनों को मुख्यतया पांच भागों में बर्गीकृत किया जा सकता है। (१) सदाबहार वन, (२) शुष्कपर्णपाती वन, (३) कण्टकी व क्षुपवाले वन, (४) बेकार पड़ी भूमि पर उगने वाली वनस्पतियाँ, (५) जलीयवनस्पति।

सदाबहार वन :-

पूर्णिया जिले के उत्तरी भाग, चम्पारण की सरेगमन झील, के पूर्वीभाग तथा दक्षिणी

बिहार के हजारीबाग, व सिंहभूमि जिलों मे पाये जाते हैं। इन वनों में सदाबहार वृक्षों का बाहुल्य होता है। यद्यपि वनों के बाह्री भागों में कभी-कभी पर्णपाती वृक्ष तथा क्षुप भी पाये जाते हैं। इन वनों में पाये जाने वाले वृक्षों में साल Shorea robusta सहार Dillenia penteagyena, चालता (D. indica) चम्पा Michelia champa, पितुशिंग Stephenia hernandifolia जलजमनी, मीठीनीम, गीलाकुसुम Amoora rohitaka, कुमरी Celastrus paniculatus, Elaeodendron glaucum, पोलिगोनम प्लेवेजम, वरियारा, आदि कतिपय वनस्पतियाँ पायी जाती हैं। शुष्क पर्णपाती वन अधिकतर दक्षिणी बिहार, पलामू, रांची व राजमहल की पहाड़ियों पर तथा उत्तरी बिहार के चम्पारण जिले के कुछ भागों में मिलते हैं। शाल के वृक्ष इस वनों में मुख्य रूप से पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त शाक (सागौन) असन, विजयसार, हारसिंगार, बिभीतक (वहेड़ा) अम्वाड़ा (आम्रातक) भिलावा (भल्लातक) लोध (लोध्र) शलई (शल्लक्की) आदि कतिपय वृक्ष एवं झाड़ि याँ पायी जाती हैं। कण्टकीय झाड़ी एवं क्षुप वाले वन मुख्यतः भागलपुर व गया जिलों में मिलते हैं। कण्टकित पादपों एवं झाड़ियों मों करौंदा, कांटाकरञ्ज, कीकर, बबूल, बेरी, झड़बेरी, बेली, हींस, हिंस्त्रा, अंकोंल, बेल, कटेली, वासा, वारलेरिया आदि वनस्पतियाँ मुख्य हैं। बेकार पड़ी भूमि पर उगने वाली वनस्पतियों मे कासमर्द (कसौंदी) चक्रमर्द (पंवाड़) शतावर, वीरयार (बला) अकवन (अर्क) निर्गुण्डी (संभालु) स्वर्णक्षीरी, चिरचिरा (अपामार्ग) एवं डिडोनियाँ-विकोसा आदि कतिपय पादप पाये जाते हैं। इस प्रदेश के झीलसें एवं पोखरों में निम्फिया, कमल, कुमुद, वचा, हिलमोचिका, मार्सेलिया (सुषनी) श्रृंगाटक (सिंघाड़ा) कैशूर एवं एइको र्नियाँ आदि जलीय पौधे पाये जाते हैं। तीन हजार से अधिक ऊँचाई वाले स्थानों पर वेर्वेरिस (दारूहरिद्रा) रूविया (मञ्जिष्ठा) थैलिक्ट्रम (पीतमूला) वायला (वन्पशा) क्लेमिटिस (गोलरंग) आदि वनस्पतियाँ पाई जाती हैं। नालन्दा जिले की पावापुरी झील एक प्रसिद्व पर्यटक स्थल है, जिसमें कमल खिले रहते हैं।

आदिवासी जड़ी-बूटियाँ :-

आदिकाल से यह देखा गया है कि मानव सृष्टि के साथ-साथ मानव रोगमुक्ति हेतु जड़ी-बूटियों का उपयोग करता आ रहा है। यह एक विचारणीय प्रश्न है कि प्राचीन काल में किस प्रकार से वनौषधियों को खोजा जाना था, इसके लिए वनेचर, सजीव सृष्ठी के जीव-जन्तुओं के सहयोग से मानव ने जड़ी-बूटियों के गुणधर्मो का पता लगाने में चेष्टा की है। जैसा कि सर्वविदित है कि मानव सृष्टि के साथ रोग उत्पन्न हुये तथा ये आधि-भौतिक, आधि-दैविक के रूप में प्रकोप का कारण रही हैं। यदि मानव के झुण्ड में कोई रोगयुक्त हो जता था तो वे लोग उसी प्रकार छोड़कर चले जाते थे कि जैसे कि जानवर अपने रोगयुक्त साथी को छोड़कर चला जाता है, परन्तु मानव विकास के साथ-साथ मनुष्य ने प्रकृति की

ओर दृष्टि डाली और वनौषधि द्रब्यों तथा भोजन सामग्री की खोज करने में लग गया तथा कतिपय द्रब्यों को अनायास चवा कर उन्हें देखा और वह खाकर स्वस्थ हो गया। इस प्रकार से औषध विज्ञान के विकास होता गया। मंत्रों द्वारा दैविक प्रकोप दूर करने की परम्परा आदि काल से चली आ रही है। प्राचीन काल में रोगोपचार हेतु तीन बातें मुख्य थी। यथा।

१. मंत्र २. रोग उत्पन्न करने वाला देवता, ३. जड़ी-बूटियों द्वारा रोगों के उपचार।

ईसा से लगभग २५०० वर्ष पूर्व के कुछ असीरियन मंत्र पाये जाते हैं। जिसमें देवता भूत से प्रार्थना की गयी है कि वह रोगी को रोग से मुक्त कर दें एवं इसी प्रकार मंणी-मंत्रों द्वारा रोगमुक्त करने का इतिहास मिलता है। इस प्रकार आदि मनुष्य ने कबीले में रहकर औषधियों की खोज एवं प्रयोग में लगा रहा, जिसका कि प्रचलन पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहा जो कि घरेलु औषधि कहलाने लगी। जैसे मनुष्य सम्पन्न होने लगा उसके साथ विज्ञान का महत्व खान-पान, वस्त्र, गृहनिर्माण, कृषि आदि का विकास जीवन के साथ आया है। यही कारण है कि जिस जलवायु एवं प्रकृति में मनुष्य पैदा होता है उसके लिये उसी जलवायु की अनुकूल औषध, अन्न एवं विहार स्वरस्थ्यप्रद होता है। यथा यस्य देशस्य यो जन्तु तज्यं तस्यौषधंहित्तम् ('चरक')।

लोक प्रचलित एवं जनश्रुति पर आधारित ग्रामीण एवं आदिवासियों में प्रचालित जड़ी-बूटियों का परम्परागत ज्ञान कहीं से प्राप्त करना बुरा नहीं है। बुद्धिमान् मनुष्य के लिये सम्पूर्ण लोक एवं प्राणी आचार्य हैं। वे हर प्राणी से कुछ न कुछ ज्ञान प्राप्त करते रहते हैं। यथा "कृत्स्नों हिलोको बुद्धिमतामाचार्यः" (च. वि. अ.) एक समय ऐसा था जबकि शास्त्रीय और पाश्चात्य औषध शास्त्र मनुष्य के प्राण बचाने में असफल हो जाता था तो उस समय जंगली वनेचर एवं आदिवासी लोगों की परम्परागत चिकिल्सा चमत्कारिक ढंग से मनुष्य के प्राण बचाने में सफ़ल होती थी और आज भी उन ग्रामीण लोगों में प्रचलित नुस्खों की जरूरत है। आज भी कतिपय ग्रामीण आदिवासी आंचलों मे परम्परागत बैद्य जड़ी-बूटियों द्वारा सर्पदंश, अस्थिभग्न, उदरशूल, व्रण, प्रसूताविकार श्वास, पक्षाघात, आमवात, उदरकृमि एवं परिवार नियोजन की सफल चिकिल्सा करते हैं यही कारण है कि जिसका कि औषध रूप में प्रयोग न होता हो, वह तो केवल चिकिल्सक की बुद्धि पर निर्भर करता है कि वह युक्ति और अर्थ को लेकर सभी वनस्पतियों का चिकिल्सा में उपयोग कर सके। यथा - नानौषधिभूतं जगति किञ्चि द्रब्यमुपलभ्यते तां तां युक्तिमर्थ तंतमभिप्रेत्य भैषज्यः।। चरकः।।

प्रकृति ने हर प्रकार की आवश्यकताओं के लिये हर जगह बड़े और छोटे पेड़-पौधों के रूप में दवायें उपलब्ध कराई, इनका अन्वेषण करके भविष्य में उपयोग किया जा सकता है।

जनश्रुति के आधार पर कहते हैं कि इस संसार के रचयिता ब्रह्मा ने एक बार अपना दूत पृथ्वी के जंगलों में भेजा और उसे दवा के लिये महत्वपूर्ण पौधों के पहिचान् के लिये कहा, पृथ्वी पर काफी दिनों तक रहने के बाद जब दूत ब्रह्माजी के पास लौटा तो उसने ब्रह्माजी से कहा कि पृथ्वी पर कोई भी ऐसा पौधा नहीं है, जो कि खोजा न जा सके। अतः हमें सभी पादपों की रक्षा करनी चाहिये। देर से सही किन्तु अब विश्व में सर्वत्र हमारी पुरानी और दादी माँ की दवाओं के बारे में सर्वेक्षण अनुसंधान और विकास की दिशा मे प्रयास किये जा रहे हैं। समस्त विश्व में औषधियों की खोज में भारत की महत्ता स्वीकार की है। इन लोक प्रचलित आदिवासी जड़ी-बूटियों की पहिचान निम्न प्रकार से प्रारम्भ से ही की जाती रही है।

यथा - १. दैविक अनुभूतियों द्वारा, २. पशु-पक्षियों द्वारा,

१. दैविक अनुभूतियों द्वारा :-

इस विधि में औषध द्रब्यों की खोज करने वाले मनुष्यों मे एक प्रकार का दैविक ज्ञान प्राप्त होना है कि अमुक वनस्पति अमुक रोग के लिये श्रेष्ठ है। भारत में ऋषि-मुनि योग द्वारा औषधियों के गुण-धर्मो के पता लगाने में समर्थ होते हैं।

२. पशु-पक्षियों द्वारा :-

पशु-पक्षियों द्वारा यह देखा गया है कि अस्वस्थ्य होने पर पशु-पक्षि स्वयं प्रकृति से औषध द्रव्य खोज क अपनी चिकित्सा करते हैं।

यथा - वाराहो वेद वीरूधः नकुलो वेद भेषजीम्।
सर्पागन्धर्वा या विदुस्ता अस्माहवसे हुवे।। ("अथर्ववेदः")

शूवर, विरूध, सर्प, नकुल, जिन औषघियों को जानते हैं उन्हें रोगनिवारण हेतु आमन्त्रित करते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि पशु-पक्षी जंगली आदिवासी, जंगली जड़ी-बूटियों का अधिक ज्ञान रखते हैं, जिन्हे लोकपरम्परागत चिकित्सा कहते हैं।

३. आकस्मिक प्रयोगों द्वारा चिकिल्सा :-

आकस्मिक औषध द्रव्यों के प्रयोगों द्वारा कभी-कभी ऐसा देखा गया है कि गलती से मनुष्य किसी औषध द्रव्य को खा लिया एवं उस द्रव्य के सेवन करने से उनका रोग दूर हो गया। इस प्रकार की चिकित्सा का प्रचलन आदिवासी क्षेत्रों में देखने को मिलता है। सिन्धु घाटी की सभ्यता में द्रबिड़ों के साथ-साथ निषाद जनों के वंशज कोल, भील, संथाल, मुंडा, किरात, खगड़िया आदि कतिपय आदिम जन-जातियाँ वन्य क्षेत्रों मे निवास करती हैं। ये

जन-जातियाँ अपनी बीमारी का इलाज तंत्र-मंत्र, जादू-टोना, भूत-प्रेत आदि बिधियों एवं जड़ी-बूटियां से आज भी करते हैं। अनुरूपता एवं साम्यता के आधार पर भी द्रव्यों के गुण-धर्मो को जाना जाता है। द्रव्य के चिन्ह, आकार, वनावट आदि के आधार पर रोगों की चिकित्सा की जाती रही है। गांठदार वनस्पति के उपयोग आमाशयगत रोगों में करना, पुत्राकार औषध द्रव्यों के उपयोग पुत्रदा के लिये होना उन द्रव्यो के पहिचान में सार्थक सिद्ध होना है। चीन, तिब्बत, मंगोलिया आदि देशो में जड़, फल, आदि की रचना मनुष्य के शरीर के अवयव से मिलती है। तो उनका प्रयोग उन्हीं अवयवों के विकारों को दूर करने हेतु किया जाता है। ये सभी विधियाँ औषध द्रव्यों के पहिचान एवं गुण-धर्मो की कार्य में सहायक हैं।

देर से सही किन्तु अब विश्व में सर्वत्र परम्परागत दवाओं के बारे में सर्वेक्षण एवं अनुसंधान कार्य किये जा रहे हैं। यह एक अजीब सी विडम्बना है कि इन्हें भी कुछ लोग आधुनिक दवायें कहने लगे हैं, जिसे कि ईथनोमेडिसिन या ईथनोवौटेनी कहते हैं। वास्तव में यह आयुर्वेद है जिसका कि उपेदश स्वयं पितामह ब्रह्मा ने जनहित में किया है।

यथा – हेतुलिगौषघंज्ञानं, स्वस्थातुरपरायणम्।
त्रिसूत्रं शाश्वत पुण्यं बुबुधेयं पितामहः।। चरकः।।

हेतुज्ञान - इस ज्ञान के व्याघियों के उत्पन्न होने का कारण बताया गया है। लिंग ज्ञान-इसमें भी शारीरिक और मानसिक रोगों के त्रिदोष सिद्वांत बताये गये हैं।

औषध ज्ञान :- पृथ्वी के समस्त द्रव्यों को इसमें समाविष्ठ किया गया है और इन्हें भी त्रिविध वर्गो में रखते हुये जनहित के कल्याण के लिये मार्ग निदेश किया है।

यथा – किंश्चिद्दोषप्रशमनं किंचिद धातु प्रदूषणम्।
स्वस्थ वृतौ मतं किंचित् त्रिविधं द्रव्यमुच्यते।। "चरकः"

आचार्य चरक ने चिकित्सा की सफलता के लिये चतुष्पाद अध्याय का उल्लेख करते हुये कहा है कि चिकित्सक के बाद रोग निवारण के लिये जड़ी-बूटियों क. दूसरा स्थान है और औषध उपयोग हेतु वनस्पतियों में निम्न चार गुणों का होना आवश्यक है।

१. द्रव्य की उपस्थिति उचित मात्रा में हो।
२. द्रव्य के उपयोग हेतु अेनक कल्पनायें की जाय।
३. द्रव्य मे रोग दूर करने की क्षमता हो।
४. द्रव्य अपने रस, गुण, बीर्य, विपाक एवं प्रभाव से परिपूर्ण हो।
५. औषध योजना में संयोग (Combination) तथा विरोध (incompatibility) समान

गुणधर्मो से हानि।

द्रव्यों से अधिक गुणवत्ता एवं विपरीत गुणधर्मों के मिलाने से हानि। ऐसे बहुकल्पं बहुगुणं सम्पन्नं योग्यमौषधम्" औषध द्रव्यों का चिकित्सा में उपयोग होना चाहिये। नामरूपात्मक परिज्ञान हेतु नृ-बनस्पति विज्ञान (एथनो-वाटनी) का ज्ञान अपेक्षित है।

एथनो-बोटनी - (जीवोपयोगी वनस्पतिशास्त्र)
आदिवासियों एवं ग्राम वासियों के साथ पेड़-पौधों का सीधा सम्बन्ध है। इन पौधों के उपयोगों की जानकारी में ज्ञानरखते हैं। एथनोबोटनी शब्द का सबसे पहिले प्रयोग हार्सबर्गर ने १८९६ में किया था। शुल्टस १९६२ के अनुसार - जीवोपयोगी वनस्पति शास्त्र आदिवासी समाज तथा पौधों द्वारा उसके चारों और बनाये गये पर्यावरण के बीच का पारस्परिक सम्बन्ध है। वनस्पति विज्ञान का इतिहास मानवशास्त्र, संस्कृति एवं साहित्य का समावेश है। संस्कृत साहित्य में वृक्षों को देवता माना गया है। यही कारण है कि भारतीय परम्परा में महाराजा दिलीप अतिथियों के साथ-साथ वनस्पतियों की कुशलता पूछना इस के प्रमाण है कि भारतीय संस्कृति में वनसम्पदा को सर्वोपरि महत्व दिया गया हैं।

यथा – आधारबन्ध प्रमुखैः प्रयत्नैः सम्वर्धितानां सुतनिर्विशेषम्।
क्वाचिद् वाटवादि रूप्लवोव, श्रमच्छदाश्रमपादपानाम्।। "रघुवंश सर्ग ५"

हमारे दैनिक उपयोग के अनेकानेक वस्तुओं का श्रोत वनसम्पदा है। इस जीवोपयोगी वनस्पति शास्त्र की निम्न विशेषतायों हैं।

१. घरेलू एवं जंगली जानवरों में उपयोगी पौधे - वे पौधे जो प्रायः मवेशियों, औषधियों, खाद्य अथवा पालतू जानवरों के चारें के रूप मे प्रयोग किये जाते हैं।

२. पौधे जो खाद्य सामग्री के काम आते हैं - इसमें सब्जी एवं फल चाहे वे रोपित हों अथवा स्वयंजात हों। वे पौधे जो चर्बी के स्थान पर प्रयोग किये जाते हैं। या मशलों के रूप में काम आते हैं। वे पौधे जो शर्बत, शराब बनाने अथवा इन्हें सुगन्धित करने के काम आतें हों। घरेलू औजार एवं फर्नीचर बनाने के काम आने वाले पौधे, इंधन एवं खाद के काम आनें वाले पौधे कपड़े बनाने अथवा शरीर को ढकने वाले पौधे, मनोरंजन अथवा औजार, खिलौने एवं लाठी आदि बनाने के काम आने वाले पौधे एवं औषधि रूप में प्रयोग होने वाले पौधे जो कि दैनिक एवं प्राकृतिक जीवन में उपयोगी है। इन सबकी जानकारी द्रव्यगुणनिघण्टु अर्थात द्रव्यों के नाम रूप एवं गुण कार्मात्मक परिज्ञान है। जिसे कि इथनोवोटनी भी कहते हैं।

संस्कृत साहित्य में नैसर्गिक वन एवं औषधीय पौधों का महत्व :

महाकवि कालिदास ने अपने काव्यों में प्रायः शान्ततपोवन, नदी, तट, वृक्ष, उपवन, भ्रमर, मृग, पक्षी, आदि स्थावर एवं जंगम सृष्ठि की सुन्दर रूप से चित्रण किया है। यही कारण है कि कालिदास प्रकृति के सजीव एवं मनोहारी चित्रण करने में इनका अद्वितीय स्थान है। यथा अभिज्ञान शाकुन्तला के प्रथम अंक में यवानिका वन के सुन्दर दृश्य को लेकर ही खुलती है। कुमारसम्भव नामक काव्य का प्रारम्भ भी नागाधिराज हिमालय से होता है। रघुवंश का प्रथम सर्ग वन के अनुपम सौन्दर्य से प्रारम्भ होता है। दिलीप एवं सुदक्षिणा दोनों दम्पत्तियों का गुरू वशिष्ठ के आश्रम की ओर जाते समय वनों के अलौकिक सौन्दर्य का जो चित्रण किया है यह सव प्रसङ्ग वन सम्पदा की महानता का सूचक है।

यथा – हैयंगबीन मादाय घोषवृद्धानुपस्थिताम्।
नामधेयानि पृच्छन्तौ बन्यानां मार्गशाखिनाम्।। रघु. सर्ग. १९ ४५

अर्थात् महाराजा दिलीप सारथी के साथ रथ में सवार होकर मार्ग में वृक्षों के नामों को पूछते हुये एवं पीली वर्ण के परिपक्ववांसो में वायु भर जाने के कारण जो अनुपम संगीत ध्वनि उत्पन्न होती थी और उसके साथ कुञ्जों में स्थित वनदेवताओं द्वारा ताल मिलाकर राजा के वंश का गान गाया जाना तथा मार्ग में बृद्ध गोपालों द्वारा दूध से निकाले गये ताजे घृत एवं मक्खन से भरे हुये पात्रों को लाया जाना आदि वनों का नैसर्गिक उल्लेख संस्कृत साहित्य के महाकाव्यों एवं काव्यों में मिलता है।

महाराजा दिलीप को वनों से अटूट श्रद्धा एवं प्रेम था, यही कारण है कि राजा वृक्षों से कहता है कि तुम्हें हमारा नमस्कार है। यथा - "तरवे नमोस्तूते" रामायण एवं महाभारत में भी, वनों की नैसर्गिकता के सुन्दर उल्लेख मिलता है। यथा - "यत्र द्रुमा अपि मृगा अपि बान्धवों में" श्री राम चन्द्रजी स्वयं कहते हैं कि इन वनों के वृक्ष एवं हिरण हमें स्वयं अपने मित्रों के समान लगते हैं। यही कारण है कि मर्यादपुरूषोत्तम भगवान श्री राम सीता जी के अपहरण होने पर वृक्षों लताओं, पर्वतों एवं सभी सजीव एवं निर्जीव सृष्टि से सीता की कुशलता पूछते हैं। उपयुक्त तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये वृक्ष भी अपूर्ण मानव हैं। हमारे भारतीय पूर्वजों ने वृक्षों की महत्ता को भारतीय धर्मशास्त्र से भी जोड़ा है। जैसा कि पुत्र प्राप्ति एवं मोक्ष हेतु वृक्षों का लगाना उनकी पूजा करना आदि उदाहरण भारतीय संस्कृति में मिलते हैं। इसी प्रकार ऋतुसंहार नामक खण्ड काव्य में महाकवि ने क्रमशः ग्रीष्म, प्राबृट (वर्षा) शरद्, हेमन्त एवं बसन्त काल का वर्णन करते हुये स्पष्ट किया है। ऋतु के अनुसार वनों में अनेक प्रकार के पुष्प पल्लवित एवं सुशोभित होते रहते हैं।

यथाः– द्रुमाः स पुष्पाः सलिलं सपद्मम्,
स्त्रियः सकामाः पवन सुगन्धिः।

सुखाप्रदोषा दिवसाश्च रम्याः,
सर्वप्रियं चारूतरें बसन्ते।। ऋतु. स. ६१२.

नव प्रवालोद्गम शस्य रम्यः,
प्रफुल्ल लोघ्र परिपक्व शालिः।
विलीनस्तन्नः प्रयतन्तुषारोः,
हेमन्तकालः समुपागतोयम्।। ऋतु स. ४-१

इस प्रकार ऋतुओं के अनुसार वनों में विकसित होने वाले वृक्षों का उल्लेख कवि ने किया है। प्राचीन परम्परा के अनुसार स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं कि महाराजा हमेशा अतिथियों की कुशलता पूछने के साथ-साथ वनसम्पदा की कुशलता की जानकारी भी करते थे जिसका कि प्रमाण रघुवंश नामक महाकाव्य में महाराजा दिलीप का वनों की कुशलता के विषय में जानकारी प्राप्त करना है।

यथा – आधारवन्धः प्रमुखैः प्रयत्नैः संम्बधितानां सुतनिर्विशेषम्।
क्वाचिन्न वाय्वादिरूपुवों में श्रमच्छिदाश्रमपादपानाम्।। (रघु.स.५-६)

प्राचीन काल में ऐसी परम्परा रही है कि भारत के ग्रामीण-नगेरों एवं वनों के नाम बहुसंख्या में उत्पन्न होने वाले वृक्षों एवं वनस्पतियों के आधार पर नाम रखे जाते थे। जैसे - हरियाणा का प्रसिद्ध नगर रोहतक नामक वृक्ष के आधार पर रखा गया है। इसी प्रकार मागधिका (मगध) सौराष्ट्री (सौराष्ट्र) इद्रयव (कलिंग) मलयज, केदारज पन्द्माख) शावरक (लोध्र) चीनाक (कर्पूर) कश्मीरज (कूठ) वाल्हीक (केशर) हिमावती आदि कतिपय नामवनौषधि द्रब्यों के वाहुल्य एवं उत्पत्ति स्थान विशेष से दिया गया है। आज भी इन परम्पराओं को जीवित रखने हेतु ग्रामों, नगरों एवं वनें का नाम वनस्पतियों के आधार पर रखना आवश्यक है। संस्कृत-साहित्य के अमुक स्थलों पर वन, उपवन, उद्यान पुष्पधारायन्त्र (फुवारे) आदि प्राकृतिक-सौन्दर्य का उल्लेख मिलता है। कौटिल्य-अर्थशास्त्र, कामन्द-नीति, वात्सायन-कामसूत्र, रामायण, महाभारत आदि अनेकों ग्रन्थों में वनस्पति फलवृक्ष, पुष्पोद्यान एवं उनके पालककों का उल्लेख मिलता है। वनौषधि सम्बन्धी द्रब्य गुण विज्ञान का भंडार वेदों से लेकर पुराणों, संहिताग्रन्थों एवं निघण्टु ग्रन्थों में विस्तृत रूप से उपलब्ध है। आज उन सभी पर शोधकार्य अनिवार्य है।

वनौषधियों का महत्वः-

यह सर्वविदित है कि सर्वप्रथम मनुष्य ने अपनी बिमारियों के इलाज के लिये मिट्टी, जल, अग्नि, वायु (पज्चमहाभूत) को ही अपना आधार बनाया। पित्त की बिमारियों के लिये

जल का प्रयोग, कफज बिमारियों तथा वायु विकार हेतु, धूप, अग्नि-स्वेद, वाष्पस्वेद, का प्रयोग, मोटापा, कम करने के लिये अतिस्वेद, तथा चर्मरोगों के लिये मिट्टी का लेप, फोड़ा-फुन्सी होने पर मिट्टी का लेप आदि का उपयोग कर अपना ईलाज करता रहा। तदुपरान्त मनुष्य ने विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों का प्रयोग चिकित्सा हेतु विकसित किया, इसमें बहुत कुछ ऐसा माना जाता है कि मनुष्य ने कुत्ते, बिल्ली, नेवला एवं पशुपक्षियों से भी जानकारी प्राप्त की - कि वे कब और कैसे विभिन्न वनस्पतियों का उपयोग करते हैं। पेड़-पौधे पृथ्वी से खुराक लेकर अपना विकास करते हैं। पृथ्वी में खनिज-द्रव्य होने से इन वनस्पतियों में खनिजों का भी अंश आ जाता है। यथा - हरी सब्जियों में लौह तत्व की अधिक मात्रा मिलता रक्त-वृद्धि में सहायक है। ये पौधे हमारे लिये प्रकृति की वह देन है जिसकी तुलना में हमारा आज का विकसित विज्ञान भी अपने को लघु अनुभव करने लगता है। मलेरिया की दवा सर्वप्रथम औषधि के वृक्षों की छालों से प्राप्त की गई। आर्टिमिजिया एनूआ नामक पौधे से एक नये मलेरिया नाशक औषधि प्राप्त की गई जिस का प्रयोग मलेरिया के निवारण हेतु चीन में लम्बे समय से किया जा रहा है। सर्वप्रथम विश्व में रक्तचाप को कम करने वाली औषधि सर्पगन्धा भारत की देन है। एथिरोस्केरोसिस एवं तद्जन्य हृदयरोग की चिकित्सा के लिये आयुर्वेद महौषधि गुग्गुलु से गुग्गुलिपिड नामक कार्मुकतत्व निकाला गया। मलेरिया में आयूष ६४, हृदय राग में अर्जुनछाल, यकृत की बिमारियों में कुटकी, कालमेघ, भूभ्यामलकी, मधुमेह में तेजपत्र, नीम, कारवेल्लक (करैला) बिल्वपत्र, मेथी, जामुन, विजयासार, गुड़मार, बिम्वी, माभीञ्जक, श्वसनसंस्थान पर अर्कपर्णी (टायलोफोरा) शिरीष, शटी, (कपूरकचरी) पुष्करमूल एवं अम्लपित्त में शतावरी, आमलकी चूर्ण, मधुयष्ठी, रसांञ्जन, मानसिक रोगों में ज्योतिष्मती, शंरवपुष्पी, ब्राहमी, जटामांसी, वचा एवं सुषनी का प्रयोग, स्त्रियों एवं माताओं के स्वास्थ्य के लिये शतावरी, अश्वगंधा, विदारीकन्द, अशोक, घृतकुमारी, लोघ्र, पत्रांग का उपयोग, परिवार नियोजन में निम्बतैल विडंगादियोग, वन्ध्यावरी का प्रयोग एवं अन्नवह्-स्त्रोतस् की बिमारियों में ईसवगोल, कुटज, इन्द्रजौ, विडंग, त्रिफला का उपयोग लाभप्रद है। इस प्रकार संक्षेप में यह कह सकते हैं कि भारत की भूमि औषधीय पौधों के लिये अत्यन्त उर्वरक है और चिकित्सा विज्ञान की जननी है। इसको हम सही रूप से पहिचान कर इसके विकास में तत्परता से लग जायं तो हमारा शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य हमें पूर्ण रूप से मिल जायेगा और हम दुनिया में शक्तिशाली एवं कर्मठ राष्ट्र के रूप में अपने को पुनः स्थापित कर सकते हैं। इस महान कार्य के लिये औषधीय पौधों के विकास के लिये इन पौधों का रोपण कार्य आवश्यक है। इस कार्यक्रम में लघुभैषजोद्यान, भैषज्य कृषि वृक्षारोपण-वन-उपवन जहाँ भी हमें उपेक्षित भूमि मिल जाय वहाँ पर बड़ी मात्रा में औषधीय वृक्ष लगवादें एवं आगे चलकर वन विभाग की सहायता से वन्यप्रदेशों में भी औषधीय वृक्षों के वन-उपवन विकसित किये



राज्य सीमा

जिला सीमा

रैल मार्ग

राष्ट्रीय पथ

मुख्य मार्ग

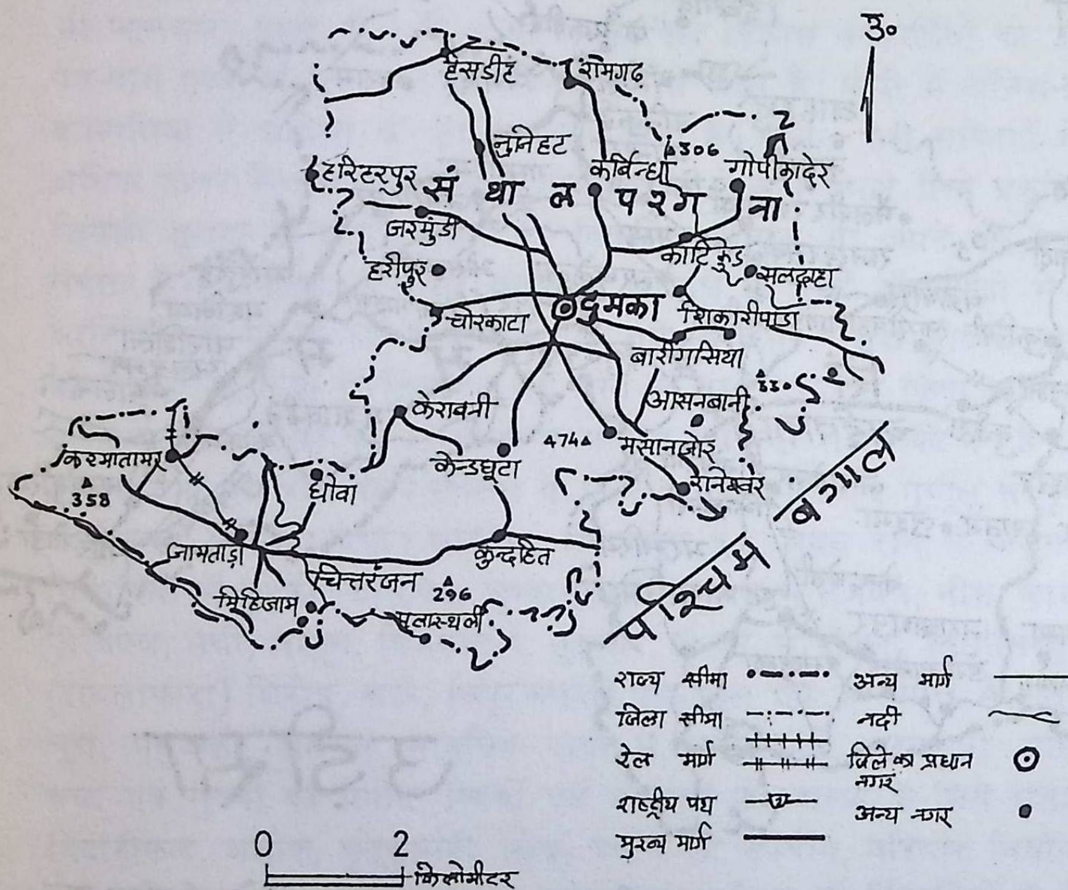
अन्य मार्ग

जिले का प्रधान नगर

अन्य नगर

नदी

सिंहभूम क्षेत्र का मार्गदर्शक मानचित्र



बिहारसंथालपरगना के आदिवासी क्षेत्र का मानचित्र



उष्णकटिबन्धीय वनक्षेत्र

जांय एवं उनका नामकरण भी अर्जुनकुंज, अशोकविहार, आमलकी कुञ्ज, रोहितकनगर, रेहिणीकुंज, मांसीशशैल, कुटकी बुग्याल, अतीसबुग्याल आदि नाम प्राप्ति स्थान एवं भौगोलिक जलवायु के अनुसार स्थापित किये जायं। उपरोक्त विधि से यदि औषधीय पादपों के उत्पादन को वढ़ाया जाय तो हम इनकी बढ़ती आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकेंगे।

आदिवासीजन-जातियाँ एवं पारम्परिक जड़ी-बूटियाँः-

हमारे देश की आवादी को लगभग एक चौथाई हिस्सा आदिवासी जन-जातियों का है। ये आदिवासी-जनजातियाँ हिमालय की तराई से लेकर पर्वतीय प्रदेशों उत्तरप्रदेश, बिहार. मध्यप्रदेश, हिमाचलप्रदेश, केरल, असम, सिक्किम, भूटान, लद्दाख, अरूणाचलप्रदेश. मणीपुर, मेघालय, अण्डमान-निको वार आदि द्वीप समूहों में फैले हुये हैं। प्रस्तुत पुस्तक में बिहार प्रान्त के छोटानागपुर एवं संथालपरगना के आदिम जनजातियों में लोकप्रचिलित जड़ी-बूटियों के विषय में जानकारी दी गई है। यह परम्परागत ज्ञान इस क्षेत्र में निवास करने वाली आदिम जन-जातियों ओसार, कोल, संथाल, भूमिज, माहालि, मूण्डा-सुरिया, मालपहाड़िया, भागपहारिया, विरहोर, निरजा-पहाड़िया, हो, विरसा, लोहार, टांटी आदि कतिपय आदिम जनजातियाँ इन क्षेत्रों में निवास करती हैं। विगत कतिपय वर्षो से इन क्षेत्र में बसने वाले आदिवासी जनजातियों के विकास हेतु राज्य सरकार द्वारा ट्रयईवल कल्याण शोध संस्था की स्थापना राज्य सरकार द्वारा रांची में की गई है। जिसके प्रतिवेदनों से पता चलता है कि इन क्षेत्रों में गलगण्ड (घेंधा) पक्षाघात, एकांगवात, दमा, क्षय, (टी.बी.) वालशोष एवं कुछ भागों में रतिज रोगों की अधिक संख्या है। कभी-कभी घेंघा (गलगण्ड) नामक ब्याधि महामारी का रूप ले लेती है। कुपोषण भी एक मुख्य समस्या है। इन क्षेत्रों में जल का अभाव से मोटा अनाज ज्वार, बाजरा, मंडवा, मोठ, मसूर आदि की मुख्य खेती है। वन सम्पदा इन लोगों की मुख्य आजीविका है। ये लोग देवी-देवताओं पर ही अपने भाग्य का फैसला छोड़ते हैं। स्वभाव से ये लोग नादान और स्वाभिमानी होते हैं। ईश्वर को प्रसन्न करने के लिये ये लोग बली चढ़ाते हैं। इनका विश्वास है कि ऐसा करने पर देवता खुश होता है, यदि देवी-देवता नाराज हो जांय तो फसल खराब हागी अकाल पड़ेगा, बिमारियाँ फैलेगीं या मवेशी मर जायेंगे आदि भ्रान्तियाँ इनके मन में बैठ जाती हैं। मादक पेय में हंडियावेवरीज इनका मुख्य पेय है। मुण्डा जन-जाति के लोग कतिपय जड़ी-बूटियों से मादक पेय का मशाला तैयार करते हैं। कतिपय विषैली जड़ी-बूटियों का इलिरानुव करपानु नामक द्रब्य का उपयोग विशेषरूप से कीण्वीकरण के लिये करते हैं।

इस क्षेत्र में प्रायः परम्परागत ग्रामीण बैद्यों की संख्या अधिक है जो कि जड़ी-बूटियों द्वारा आज भी असाध्य रोगों की चिकित्सा करते हैं। जो ज्ञान एवं अनुभव इनके पास है, वह आदिम काल से चला आ रहा है। इन परम्परागत लोक-प्रचलित दवाओं का अध्ययन

केन्द्रीय आयुर्वेद एवं सिद्व अनुसंधान परिषद् भारत सरकार के अधीनस्थ कतिपय राज्यों के आदिवासी क्षेत्रों में किया जा रहा है। लेखक कई बार बिहार प्रान्त के छोटानागपुर, रांची, सिंगभूमी, पलामू, गुमला, मुंगेर एवं हजारीबाग के आदिवासी क्षेत्रों में भ्रमण करने का अवसर मिला। कुछ यात्रायें भी श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन पटना के प्रबन्ध निदेशक श्री बनवारीलाल जी शर्मा के सतत प्रेरणा से की गई जिसके फलस्वरूप यह विचार किया गया कि स्वर्गीय ठा. वलवन्त सिंह जी द्वारा लिखित पुस्तक बिहार की वनस्पतियाँ नामक रचना को ध्यान में रखते हुये छोटानागपुर एवं संथालपरगना पर आदिवासी जन-जातियों में लोकप्रचलित जड़ी-बूटियों पर पुस्तक तैयार की जाय। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुये पुस्तक के रूप में यह सामग्री पाठकों के समक्ष प्रस्तुत की जा रही है। आशा ही नहीं लेखक को विश्वास है कि आदिवासियों में लोक प्रचलित नुस्खों एवं एकौषध द्रव्यों के स्थानीय उपयोग की महत्वपूर्ण सामग्री की जानकारी पाठकों को उपलब्ध हो सकेगी।

कुलानुसार वनौषधि द्रव्यों का विवरण

इस क्रम में छोटानागपुर, रांचि, सिंगभूमि सिसाईब्लाक, गुमला, पलामू, सरगुजाब्लाक, मनोहरपुर, विष्णुपुर, सिमडिगा, चंदवा, साईवासा, जमेशदपुर, जोरापोखरा, वंदगाँव, मुंगेर, संथालपरगना के डुमकाब्लाक, राजमहलहिल, त्रिकूटपर्वत, हरिहरपुर, आसनवानी, हरिपुर, शिकारीपाड़ा एवं सिंगभूमि के साईवासा, जोरापोखरा, जमशेदपुर, बन्दगाँव, हुरपा, चिरों आदि कतिपय स्थानों के वनस्पतियों का सर्वेक्षण और स्थानिक परम्परागत वैद्य से जड़ी-बूटियों के स्थानिक नाम, स्थानिक प्रयोग विधि आदि सामग्रियों का चयन कर इन द्रव्यों का विवरण कुलानुसार प्रस्तुत किया गया है। यथाः

वासाकुल (ACANTHACEAE)

द्रव्य नामः संस्कृत - आटरूषक, वासा हिन्दी - अडूसा, वसाक,
लैटिन - Adhatoda Vasica Nees.



वानस्पतिक स्वरूपः- सदा हरित, ऊर्ध्वसंश्रित ४ से ६ फीट ऊँचा, झाड़ीदार गुल्म, पर्ण-अखण्डतट और लम्वाग्र, पुष्पश्वेत विनाल, १ से ३ लम्बी मञ्जरियों में जो उपशाखाओ के अग्रभाग पर प्रायः समूहवद्ध रहते हैं। यह गाँवों के वाड़ों के आसपास सर्वत्र पाया जाता है।

प्रयोज्य अंग:- पत्र, पुष्प, मूल छाल, पंचांग।

स्थानिक प्रयोग:- रस-पित्त में उपयोगी, कफनिस्सारक, स्वर्य, लघु, कषाय वीर्य-शीत, विपाक-कटु, कफपित्तहर, मुख्य रूप से कासघ्न।

आमयिक प्रयोग :- १.कफविकारों में इसका प्रयोग होता है। नवीन श्वसनीशोथ में वासावलेह के सेवन करने से आराम मिलता है, विशेषकर जब कफ गाठा और चिपचिपा रहता है। कफयुक्त प्रलेपक-ज्वर में इसका विशेष उपयोग करते हैं। इसमें पुटपाक विधि से निकाले गये स्वरस को एक से डेढ़ तोला की मात्रा में आद्रकस्वरस, छोटीहरड़, पीपल, सैंघव एवं मधु के साथ देते हैं। जीर्णश्वसनीशोथ में कण्टकारी, जवासा, नागरमोथा सोंठ एवं अडूसा का समान मात्रा में लेकर क्वाथ पिलाने से आराम मिलता है। बच्चों के कफ विकारों में स्वरस में शुद्धटंकण (सुहागा) एवं शहद के साथ चटाने से लाभ होता है।

२. राजयक्ष्मा में हाथ-पैरों की जलन होने पर ज्वर एवं उर्ध्वग रक्तपित्त होने पर वासाघृत का उपयोग किया जाता है। इसमें पत्रस्वरस वंशलोचन, तालीसपत्र, कण्टकारी मूलस्वरस एवं मधु मिलाकर दिया जाता है। मूल का उपयोग राजयक्ष्मा जन्य ज्वर एवं कास की प्रथमावस्था में लाभ देखा गया है। वातनाड़ियों में शामक प्रभाव एवं कफ को पतला करने से खांसी में आराम मिलता है। यह अनुभूत प्रयोग है।

३. तमकश्वास में इसके पत्रों का धूम्रपान लाभदायक है। इसके साथ धतूरे का पत्र आधा भाग में प्रयोग करने पर विशेष लाभ होता है।

४. रक्तपित्त में इसका स्वरस मधु के साथ देते हैं। इसके फूलों का गुलकन्द तथा मूलत्वक् का भी उपयोग रक्तपित्त में किया जाता है।

५. आध्मान, अतिसार एवं प्रवाहिका में पत्रस्वरस दिया जाता है। इससे आन्त्रस्थ जीवाणुओ का नाश होता है। एवं अन्न की सड़ांद को रोकता है।

६. आमवातिक सन्धिशोथ, एवं नाड़ीशोथ में पत्रों का वाष्प स्वेद तथा पोट्टली स्वेद का उपयोग करने से लाभ होता है।

७. त्वचा के रोगों में पत्रस्वरस को पिलाने तथा पत्रों के क्वाथ से स्नान करने पर लाभ होता है।

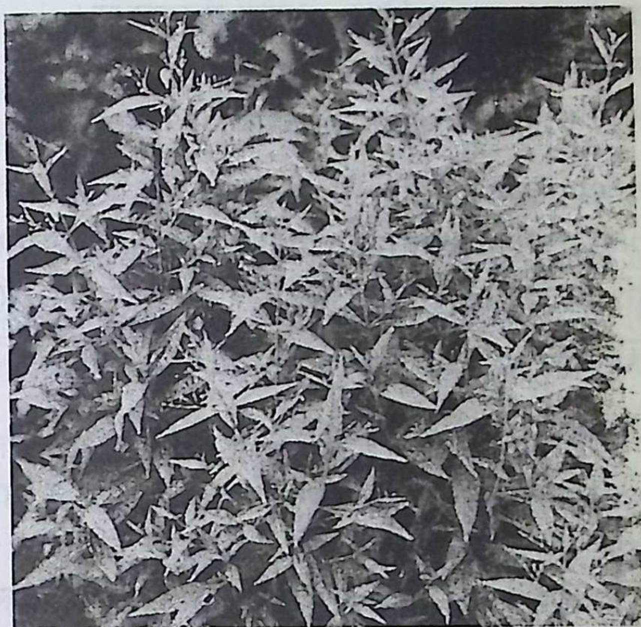
८. जन्तुघ्न होने के कारण इसके पत्तो को जल में रखने पर जल खराव नहीं होता। इसके पत्तों में फल बाँध कर रखने पर फल सड़ता नहीं। इसका क्षारीय अर्क मरवी, पिस्सू एवं मच्छर आदि के लिये घातक है। खेत में इसके पत्तों का खाद नीम के पत्तों के साथ

प्रयोग करने से पौधों के रोग नहीं हाते हैं। ऊनी कपड़ों में इसके पत्ते रखने से कीड़े नहीं लगते हैं। इसी लिये आयुर्वेद में इस वनस्पति की विशेष प्रशंसा की गई है।

यथा – वासांयां विद्यमानाया, माशायां जीविंतस्य च।
रक्तपित्ती क्षयी कासी, किमर्थमवसीदपि।। भा. प्र. नि.

मात्रा :- पत्र-चूर्ण १ से २ माशा, स्वरस आधा से डेढ़ तोला, मूलत्वक् ८ र. से १ माशा।

मुख्ययोग :- वासावलेह (कास में) वासादिघृत (क्षय में) वासा स्वरसभावित गोदन्ती भस्म जीर्णकास में। वासागुलुकन्द पित्त विकारों में एवं कफनिस्सारक।



द्रव्य नाम :- संस्कृत - काममेघ, यवतिक्ता
हिन्दी - कालमेघ,
पहाड़िया - चिरौता, कल्पनाथ।
लैटिन - Andrographis paniculata nees.

वानस्पतिक स्वरूप :- तलोत्थ क्षुप, १ से ३ फीट तक ऊँचे, काण्ड, चौकोने और नीचे चिकना तथा ऊपर रोमश, पर्ण-अखण्ड, रेखाकार, प्रासवत् चिकने, पुष्प-सबृन्त, श्वेत हलके जामुनी रंग के फल यवाकार एवं तिक्त होते हैं। प्रान्त के प्रायः सभी जनपदों में पथरीली जमीन पर इसके क्षुप पाये जाते हैं। फल यवाकार होने से इसे यवतिक्ता कहते हैं। कुछ लोग इसे भूनिम्ब भी कहते हैं।

प्रयोज्य अंग :- पत्र, पंचाग।

स्थानिक प्रयोग :- १. ग्रामीण वैद्य पंचांग क्वाथ एवं चूर्ण का उपयोग विषमज्वर श्लेष्मिकज्वर में प्रयोग करते हैं। क्वाथ एवं चूर्ण चिरायता की तरह स्वाद में तिक्त होता है।
२. यकृत एवं उदर कृमि तथा जीर्ण प्रवाहिका में भी स्थानिक लोग एकमूलिका के रूप में एवं अन्य जड़ी-बूटियो के साथ मिलाकर क्वाथ एवं हिमफाण्ट के रूप में देते हैं।
३. आन्त्रिक ज्वर एवं जीवाणु प्रतिरोधी में इसे उत्तम औषधि माना जाता है।
४. अपस्भार एवं मृगी के दौरे पड़ने पर भी इसका उपयोग करते हैं।

आयुर्वेद में उपयोग :- रस-तिक्त, कटु, वीर्य-उष्ण, विषाक, कुटु, गुण-मृदुरेचक, रक्तशोधक, पाचक, स्निग्ध, गुरू एवं त्रिदोषशामक है। यह तिक्त दीपन एवं कटुपौष्टिक है। मलेरिया, यकृतवृद्धि, जीर्णज्वर एवं शोथ मे यह बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। चिरायता के समान गुणकारी होने से यह चिरायता देशी के नाम से बाजार में बहुतायद मात्रा में बिकता है।

मात्रा :- चूर्ण ५ से २० रत्ती, क्वाथ २ से ४ तोला, स्वरस १ से ४ माशा।

टिप्पणी :- व्यापारिक रूप से इन क्षेत्रों से काफी मात्रा में संग्रह किया जाता है। औषध उद्योग में अधिक खपत होने से दिन प्रतिदिन यह वनस्पति लुप्त प्रायः होने लगी है।

द्रव्य् नाम :- स्थानिक - मुंगेर-सेहारजार।
संथाली - वीरकुवत्त, प. गुसुमपुरू
लैटिन - Androgrphis echioides Nees.

वानस्पतिक स्वरूप : यह कालमेघ की दूसरी जाति है। यह शाकीय पौधा है। काण्डमृदुरोमश, पर्ण-अबृन्त, आयताकार, पुष्प-अवृन्त एवं पत्रकोणों से निकले रहते हैं। छोटानागपुर एवं संथाल परगना में उपलब्ध है। इस बूटी को स्थानिक लोग तेहारजार इसलिए कहते हैं। कि पंचाग का उपयोग तृतीयक ज्वर में किया जाता है।

प्रयोज्य अंग :- पंचाग।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण पहाड़िया एवं औसार जाति लोग क्वाथ का उपयोग मलेरिया एवं तृतियक ज्वर में करते हैं। इसके अतिरिक्त पंचाग चूर्ण का उपयोग सर्पदंश में करते हैं। एक चम्मच मूल को एक गिलास पानी में मिलाकर पिलाने से सर्पदंश मे लाभ होता है।

द्रव्य का नाम :- संस्कृत - इक्षुरक, कोकिलाक्ष।
हिन्दी - तालमरवान।
संथाल - गोखुलाजनम।
लैटिन - Asteracantha longifolia Nees.

वानस्पतिक स्वरूप :- तलोत्थ क्षुप २ से ४ फीट ऊचे कांड ग्रन्थियों पर प्रायः १ ईचं लम्बे सीधे प्रायः ६, ६ तीक्ष्णकांटे चर्क्रिक रूप में होते हैं फल-पतला, चिपटा, बीज-छोटे, चिपटे रक्ताभ और रोमश होते हैं। प्रान्त के जलासन्न भूमि में सभी स्थानो पर यह पाया जाता है।

प्रयोज्य :- बीज, मूल।

स्थानिक प्रयोग :- संथालपरगना के ग्रामीण बैद्य बीजों का उपयोग शीतल शुक्रशोधन एवं मूत्रल के रूप में प्रयोग करते हैं। कामोत्तेजक के रूप में बीज का प्रयोग करते हैं।

आयुर्वेद में उपयोग :- रस-मधुर, अम्ल, वीर्य-शीत, विपाक-मधुर, गुण-ग्राही, वृष्य, पिच्छिल, वात-पित्तशामक।

आमयिक प्रयोग :- आमवात, पित्तातिसार, मूत्रकृच्छ्र, जलोदर में उपयोग मूल का उपयोग यकृत रोग, प्रजन अबयव, और मूत्राशय के विकारों में करते हैं।

मात्रा :- बीजचूर्ण ३ से ६ रत्ती।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - सैरेयक
हिन्दी - कटसरया।
संथाली - रेंलवाहा, वनसरालि।
लैटिन - Barleria Cristata Linn.

वानस्पतिक स्वरूप :- इसके १ से ३ फीट ऊँचे स्वावलम्बी या परिप्रसरी गुल्मक, पर्ण-अण्डाकार, आयताकार, प्रासवत, पुष्प-सुन्दर-गुलाबी या श्वेत वर्ण के अधिक संख्या में खिलते हैं। इसके पौधे छोटानागपुर एवं संथालपरगना के पहाड़ी ढलानों पर पाये जाते हैं।

स्थानिक उपयोग की निम्न उपजातियाँ इन क्षेत्रों में पाई जाती हैं। जिनके नाम स्थानिक नाम एवं लैटिन नाम इस प्रकार से हैं।

(अ) संस्कृत - पीतसैरेयक,
सथाली - कांटाफूल, दासकरण्टा
हिन्दी - कटसरया,
लैटिन - Barleria prionities L.

(ब) नीलसैरेयक,
संथाली - रैलावाहा उ. वनमल्ली,
लैटिन - Barleria Strigosa Wiled.

प्रयोज्य अंग :- पत्र, पंचाग, सार।

स्थानिक प्रयोग :- मूल एवं पत्र का उपयोग शोथ को कम करने एवं कास तथा रक्तविकारों में क्वाथ के रूप में प्रयोग करने से लाभ मिलता है।

आयुर्वेद में उपयोग :- १. सैरेयक तिक्त, अम्ल, उष्ण, कफनिस्सारक, कुछ स्वेदजनक,

शोथहर, विषघ्न एवं केशरञ्जनक है। इसका उपयोग कास, शोथ एवं चर्मरोगों में किया जाता है।

२. बच्चों के कफयुक्त खाँसी में पत्रस्वरस मधु या शर्करा के साथ देते हैं। चूहे के विष में मूल को मधु तथा चावल की धोवन के साथ देते हैं।

३. दांत हिलने पर नीलसैरेयक के पत्तों के कषाय से गण्डूष कराने से लाभ होता है। ग्रन्थी, शोथ आदि में मूल का लेप लाभदायक है।

टिप्पणी :- अधिकतर लेखकों ने Barlaria की प्रजातियों को कुरण्टक, दासी-कुरण्टक, पीतसैरेयक, नील-रक्त सैरेयक-भेद से उपरोक्त द्रब्यों का उल्लेख किया है। लेखक के विचार इस सन्दर्भ में भिन्न है। महाकवि कालिदास ने कुरूवक, सहचर आदि वनस्पतियों का दौहद वृक्षों में किया है। जिनका की महत्व स्त्रियों के प्रजनन संस्थान से है। Barlaria की प्रजातियाँ कफघ्न एवं कासघ्न गुणवाली हैं। जबकि कुरूवक कुरण्टक शीतल, रक्तसंग्राही, एवं वसन्त ऋतु में पुष्पित होने वाले वृक्ष हैं। जो कि हिमालय की घाटियों में उपलब्ध Rhadodendron की प्रजातियों में कुरूवक एवं सहचर भेद हो सकते हैं।

द्रव्य नाम - उटंगनभेद

लैटिन - Blepharis boeravifolia Pers

स्वरूप :- इसके गुल्मक एवं क्षुप होते हैं। मूल, काण्ड प्रसरी, १-३ फीट लम्बें, पर्ण ग्रन्थि पर चार के चक्रों में अण्डाकार, आयताकार, पुष्प सफेद गुच्छवद्ध नवम्बर में, फल ३ इंच लम्बे जिसमें बीजों की संख्या २ तक होती है। ये क्षुप छोटानागपुर के छायादार जगहों, पथरिली पहाड़ियों एवं नालों के किनारे पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- बीजों का प्रयोग ग्रामीण परम्परागत वैद्य बल्य के रूप में करते हैं। यूनानि चिकित्सा में मूत्रल एवं शुक्रल के रूप में Blephanis edulis के बीजों का उपयोग किया जाता है।

द्रब्य नाम :- कालाअंगूसा,

स्थानिक - जगतमदन,

लैटिन - Justicia gendaruii L.F.

स्वरूप :- गुल्म २ से ४ फीट ऊँचे, पर्ण रेखाकार प्रासवत्, पुष्प श्वेत, अवृन्त काण्डज क्रम में इसके क्षुप वागों के किनारे लगाये हुये पाते जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण बैद्य इस वनस्पति का प्रयोग क्वाथ के रूप में ज्वरघ्न, कफनिस्सारक एवं वामक के रूप में प्रयोग करते हैं। बच्चो और बूढ़ों में सावधानी से प्रयोग करना

चाहिये। इस जाति की अन्य किस्में भी इस क्षेत्र मे पाई जाती हैं। जिसमें हृदपसद Justicia betonica L. एवं सहचर Quinqueangularis koem मुख्य हैं। हृदपद का उपयोग कोल जाति के लोग प्रवाहिका एवं अतिसार में करते हैं। सहचर के मूल का उपयोग मुंगेर क्षेत्र के आदिवासी व्रणप्रक्षालन में करते हैं।

द्रव्यनाम :- पहाड़िया संथाली - आईफोटा
लैटिन - Hygrophila salicifolia Nees

स्वरूप :- शाकीय क्षुप जाति वनस्पति, पुष्पओष्ठीय, पुष्प-पत्र कोणीय, चक्राकार, गुलावी, वर्ण, फल-कोषीय बीज संख्या में अनेक, नमदार स्थानों पर संथालपरगना के क्षेत्रो में सर्वत्र सुलभ।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण आदिवासी लोग पंचाग का उपयोग वाह्य एवं आन्तरिक रूप से क्षतव्रण, धाव एवं अग्निदग्ध में करते हैं।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - अगियारवर, शेरवैठिका।
लैटिन - Lepidagathis Hamiltoniana Wall.

स्वरूप :- बहुवर्षायु मूल स्तम्भवाला क्षुप, परिप्रसरी चौपहल काण्ड, पर्ण-रेखाकार, तीक्ष्णाग्र, पुष्प-मूलस्तम्भ काण्डपर कांटो युक्त से ओष्ठवत् गुच्छेदार, पुष्पक वृन्त पत्रक, लम्बाग्र एवं कांटेदार नोकवाले। यह छोटानागपुर के पहाड़ियों की शुष्क ढालों, नदी-नालों के शुष्क रेतली किनारों पर पाया जाता हैं।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण आदिवासी वैद्य इसको जलाकर राख को करज्जतैल में मिलाकर सिर के फोड़े-फुन्सी एवं खुजली में प्रयोग करते हैं।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - काकजंघा, मसी।
स्थानिक - खोड़वाहा।
लैटिन - Peristrophe bicalyculate Nees

स्वरूप :- यह प्रसरणशील शाखाओं से युक्त ३ फीट ऊँची वनस्पति है। काण्ड षट्कोण और संधियाँ फूली हुई, पुष्पवाहक शाखायें सशाख, पुष्प छोटे गुलावी एवं जामुनी रंग के होते हैं। इसके क्षुप प्रायः सर्वत्र बाड़ो पर पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- स्थानिक आदिवासी सर्पदंश में पंचाग का प्रयोग धूपन एवं आभ्यान्तरिक रूप में करते हैं।

आयुर्वेद में उपयोग :- तिक्त, त्रिदोषघ्न, कृमिहर एवं विषमज्वर नाशक, कई विद्वानो इसे संदिग्ध माना है।

द्रव्य का नाम :- संस्कृत - युथिकापर्णी।
हिन्दी - पालक जूही।
लैटिन - Rhinacanthus Communis Nees

स्वरूप :- गुल्मक जाति की वनस्पति, काण्ड ३ से ४ फीट ऊँचा, द्विविभक्त शाखाओं वाला पर्ण-सवृन्त, पुष्प-श्वेतवर्ण के सशाख मञ्जरियों में निकलते हैं। इनके गुल्मक सिंगभूमी, हजारीबाग, रांची आदि पहाड़ी स्थानों पर सुलभ हैं। ये गुल्मक कहीं-कहीं बागों में भी लगाये हुये पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण आदिवासी पत्र का प्रयोग प्रायः बाह्य एवं आभ्यन्तर रूप में कुष्ठघ्न तथा दद्रुघ्न के रूप में करते हैं।

द्रब्य नाम :- स्थानिक - इलिरानू, कोल चारपाट्ठु, करपण्डु।
लैटिन - Ruellia Sufruticosa Roxb

स्वरूप :- यह वर्षायु रोमशक्षुप, काण्ड १ इंच लम्बा, पत्तियाँ आयताकार, अण्डाकार, कुष्ठिताग्र, पुष्प प्रायः श्वेत या हलके जामुनी रंग के एवं रात्रि मे खिलते हैं। मूल-कन्द सद्यश जड़ों वाला होता है। ग्रामीण लोग मूल को विषैला मानते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण आदिवासी मूल का उपयोग हांडिया मादक पेय किण्वीकरण (फर्मन्टेशन) द्रब्यो में विशेषरूप से करते हैं। आदिवासी लोग ५ से ७ सेन्टीमीटर लम्बे कन्द सद्यशमूल को पानी में मसलकर इसका स्वरस निकालते हैं एवं इस मूल स्वरस को चावल के आटे में मिलाकर गोली सी बना लेते हैं। पुनः चावल में मिलाकर अन्य औषध द्रब्यों को भी साथ में मिलाकर अनुम्रान से पानी डालकर एक घड़े में फर्मनटेशन होकर यह मादकपेय के रूप में तैयार हो जाता है। मुण्डा जाति के आदिवासी उत्तम मादकपेय हेतु शतावरी (हुरिंगअनिकिर) मशरूम, वापराव, सोसोदास (भिलावा) आदि कतिपय वनौषघियों का उपयोग जिनमें कुछ सविष एवं निर्विष द्रब्य हैं, उनका उपयोग इस मादक पेय हेतु करते हैं। इलिरानु का शाब्दिक अर्थ है कि हंडिया की द्रवा मुत्र-रोगों एवं गर्मी तथा सुजाक में इस वनौषध द्रब्य का प्रयोग किया जाता है। इसकी कन्द वाली अन्य किस्म भी पाई जाती है, जिसे R. tuberosa कहते हैं।

अपामार्गकुल AMARANTHACEAE

द्रव्य नाम :- संस्कृत - कण्टकी-तण्डुलीयक
हिन्दी - कांटाचौलाई, स्थानिक - जनुम, कांटानाटिया,
लैटिन - Amaranthus spinosus Linn.

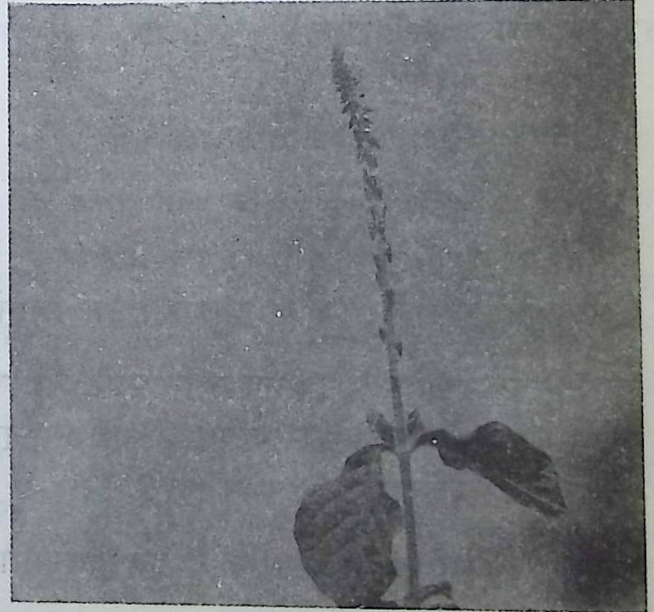
स्वरूप :- शाकीय एक् से दो फीट ऊँचे काण्ड एवं पत्र, काण्ड तीक्ष्णकांटों से युक्त होते हैं। पत्तियाँ लट्वाकार, प्रासवत्, पुष्प-हरित पत्रकोणीय, १ शाकीय क्षुप खेतों एवं सड़कों, नालों के आसपास सर्वत्र पाये जाते हैं।

स्थानीय प्रयोग :- आदिवासी मूल का चिकित्सा में उपयोग करते हैं। यह शीतल, मूत्रल, उत्तम स्नेहन गर्भाशय के लिये बेदना स्थापन और स्तन्यजनन है। पत्र का उपयोग शाक के रूप में करते हैं।

द्रव्य का नाम :- संस्कृत - मारिष हिन्दी - मरसे,
स्थानिक - लेपड़ा-आनतियाशाक,
लैटिन - Amaranthus tricolor L.

स्वरूप :- इसकी कतिपय प्रजातियाँ इस क्षेत्र में पाई जाती हैं। कुछ प्रजातियों की खेती की जाती है एवं अन्य वन्य किस्में स्वयंजात होती हैं। पत्र का प्रायः ग्रामीण आदिवासी शाक के रूप में प्रयोग करते हैं।

द्रव्यनाम :- संस्कृत - अपामार्ग,
हिन्दी - चिरचिटा,
स्थानिक - चिचड़ा, चिचिंड़ी
संथाली - अपंग,
लैटिन - Achyranthes aspera Linn.



स्वरूप :- क्षुप स्वावलम्बी एवं शाखायें आरोहरणशील पत्रों अण्डाकार, अभिलट्वाकार, वृत्ताकार, पुष्प-आघोमुख, अवृन्त लम्बी मञ्जरियों में कण्टकित। यह लोक प्रसिद्व वनस्पति प्रायः सर्वत्र गांवों के आस-पास पाई जाती है।

प्रयोज्य अंग :- मूल, पंचाग, बीज।

स्थानिक प्रयोग :-

१. आदिवासी लोग अपामार्ग मूल को लेकर पानी में क्वाथ विधि से पका कर इसके घनसत्व एवं क्वाथ को प्रसूत काल के बाद प्रसूता को देते हैं।

२. शिरःशूल में संथाली लोग मूलपूर्ण का प्रयोग करते हैं।

३. मूल चूर्ण को गुड़ के साथ मिलाकर प्रवाहिका में देने से लाभ होता है। दन्तकृमि एवं दन्तशूल में मूल का दांतवन करने से लाभ होता है। सफेद चिरचिटि के पत्तों का स्वरूप नक्तान्धता में स्थानिक ग्रामवासी प्रयोग करते हैं। वर्ण भेद से श्वेत एवं रक्त दो जातियाँ होती हैं।

४. ग्रामीण आदिवासी मूल एवं पंचाग का उपयोग गर्भस्त्राव, मासिकधर्म की अनियमितता एवं अपस्मार में करते हैं।

आयुर्वेद में उपयोग :- रस-कुटु, तिक्त, वीर्य-उष्ण, विपाक-कटु, गुण-मूत्रल, वामक, सर, तीक्ष्ण, कफवातहर, पित्तहर, अश्मरीघ्न, स्वेदजनन, अर्शोघ्न, कास-श्वासनाशक, त्वचा को विकार, यकृत-वृद्वि एवं वृक्शोथ उपयोगी।

योग : - अपामार्गक्षार, (जलोदर में) अपमार्ग क्षारतैल (कर्णरोग) अपामार्ग अवलेह (उदरशोथ) अपामार्गासव (श्वास में)

मात्रा : -मूल और बीजचूर्ण ६ माशा से एक तोला, क्षार २ रत्ती से ४ रत्ती तक।

द्रव्यनाम : - स्थानिक - गुड़रीसाक,
संथाल - गरैपड़ीअड़ा
लैटिन - Alternanthera sessilis Br.

स्वरूप - ग्रन्थि मूल प्रसरि क्षुप जाति की वनस्पति है। यदा-कदा शाखायें आसपास की झाड़ियों पर फैली रहती हैं। पर्ण-अण्डाकार, रेखाकार, आयताकार, पुष्प-मुण्डाकार, पुष्पगुच्छ श्वेत एवं गुलावी वर्ण के होते हैं। नम स्थानों पर इसके क्षुप पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग : - आदिवासी पत्तों का उपयोग गड़रीसाग के नाम से करते हैं। कुछ संथाली एवं पहाड़िया सर्पविष में भी इस बूटी का उपयोग करते हैं। मुण्डा जाति के लोग क्वाथ का ज्वरघ्न के रूप में करते हैं।

विषेश :- अधिकतर विद्वानों ने इस वनस्पति को मतस्याक्षी स्वीकार किया है।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - गोरखगांजा, लुपुंग, अड़ा, संथाली - चोरधूमन,
लैटिन - Aerua Lanata Juss.

स्वरूप - स्वावलम्बी, प्रसरी क्षुप जाति की वनस्पति, शाखायें श्वेताभरामेश, पत्तियाँ अभिलट्वाकार, वृताकार, श्वेताभ रोमश, पुष्प-मञ्जरियों में काण्डज एवं पत्रकोंणों से समुहवद्ध होकर निकलते हैं। छोटानागपुर एवं संथालपरगना के सभी भागों में प्रायः गाँवों के आसपास इसके क्षुप पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त दूसरी किस्म भी इन स्थानों पर पाई जाती है। जिसे सिलवारी A. scandans Wall कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग पंचाग का उपयोग मूत्रकृच्छ्र, मूत्रजनन, वेदनास्थापन एवं कासहर के रूप में करते हैं। कुछ प्रदेशों के वैद्य इस वनस्पति का उपयोग पाषाण भेद के नाम से करते हैं।

द्रब्यनाम :- संस्कृत - शितिवार,
स्थानिक - सिंनगिट अड़ा, सुरअरी,
लैटिन - Celosia argentea L.

स्वरूप :- क्षुप जाति की वनस्पति काण्ड एक से तीन फुट ऊँचा, पर्ण-रेखाकार, प्रासवत्-लम्ब्राग्र, आधार की ओर क्रमशः संकुचित पुष्प, अवृन्त, काण्डज मञ्जरियों में श्वेत एवं गुलाबी वर्ण के होते हैं। बीज, छोटे, काले एवं चमकदार होते हैं। मुगेंर, रांची, छोटानागपुर सर्वत्र खेतों में इसके क्षुप पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग पत्तियो का शाक बनाकर खाते हैं, बीज का प्रयोग शीतल एवं पौष्टिक के रूप में करते हैं। संथाल के ग्रामीण बीजें का उपयोग रक्त विकार एवं मुखपाक में करते हैं।

द्रब्य नाम :- स्थानिक - नागदमनी,
लैटिन - Pupalia lappacea Mog.

वानस्पतिक स्वरूप :- गुल्मक रोमश, शाखायें दुर्बल, पर्ण-मृदुरोमिल, आभिमुख, लट्वाकार, आयताकार, प्रासवत, फल-गुच्छों में मुण्डाकार, व्यास में ५ इंच तक ऊपर टेढ़े सूक्ष्म काँटे होते हैं। कपड़े पर ये काँटे आसानी से चिपक जाते हैं। यह पलामू एवं संथालपरगना के पथरीली जमीन पर सर्वत्र सुलभ हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग मूल का उपयोग सर्पविष में करते हैं।

सुदर्शनकुल ÁMARYLLIDACEAE

द्रव्यनाम :- हिन्दी - सुखदर्शन
स्थानिक - सिकिओमवाह,

लैटिन - Criunum larifolium L.

स्वरूप :- कन्दिल बहुवर्षायु, पर्ण-आधार से निकलते हैं। १२ से १८ इंच तक लम्बे एवं अग्र की ओर कम चौड़े। पत्तियों के बीच से पुष्प दण्ड निकलता है, जिसपर सवृन्त मूर्घज क्रम से १ से १२ श्वेत वर्ण के पुष्प निकलते हैं। इसकी अन्य दो किस्में सिंहभूमि, छोटानागपुर, संथालपरगना क्षेत्र के प्रायः नदि-नालों के किनारे कीचड़ में डूबे हुये पाये जाते हैं। Crinum asiaticum Roxb and C. txcaria Romb. कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण आदिवासी लोग मूल का उपयोग क्याथ के रूप मे प्रयोग करते हैं। मवेशियों मे अतिसार निवारण के लिये प्रयोग किया जाता हैं। विषगर्म तैल मूल का उपयोग स्थानिक वैद्य करते हैं।

वक्तब्य :- कुछ विद्वानों का मत है कि सम्भवतः इसकी किस्में राज-निघणटु में वर्णित विष्णंकन्द से मिलती है।

यथा - विष्णुकन्दो विष्णुगुप्तः, सुपुटो बहुसंपुटः।
जलवासो बृहत्कन्दो, दीर्घवृंतो हरिप्रियः।। रा.नि.
गुणः दाह शोफहरो रूच्यो, संतपर्णकरः परः।।

वनस्पति विशेषज्ञ ठा. बलवन्त सिंह जी ने Crium की जाती की शास्त्रीय कन्दलीकन्द सम्भावना पर अपने विचार ब्यक्त किये हैं। महाकवि कालिदास ने वर्षा ऋतु में विकसित पुष्पित वनस्पनियों के साथ कन्दली का उलेख किया हैं।



द्रब्य नाम - तालमूली हिन्दी - काली मूशली
स्थानिक - तुरमसोगा,
लैटिन - Curculigo orchioides Gaertn.

स्वरूप :- बहुवर्षायु कन्दिलसद्यश मूल जाति की वनस्पति, पर्ण-मूलोद्‌भव, रेखाकार, प्रासवत्, मूलोदभव, पुष्प पीतवर्ण के, मूलस्तम्भ रम्भाकार, तालस्कन्ध सद्यश इसी कारण इसे तालमूली कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग मूल का उपयोग बल्य के रूप में करते हैं। शीतल द्रब्यों के साथ प्रयोग करने पर मूत्रल है।

चोट एवं अस्थिभन होने पर पहाड़िया वाह्यलेप में मूल का उपयोग करते हैं।

आयुवेद में उपयोग :- तालमूली मधुर, तिक्त, उष्ण, रसायन, बृंहण, बृष्य और वल्य हैं। यह अर्श तथा वालरोगों में विशेष उपयोगी है।

द्रब्य नाम :- स्थानिक - गुलछड़ी,
लैटिन - Polyanthes tuberosa

स्वरूप :- क्षुप जाति की वनस्पति है। पौध दिखने में सुन्दर एवं वागों में रोपित किये जाते हैं। पुष्प श्वेत वर्ण के एवं सुगन्धित होते हैं। पुष्प प्रायः रात में खिलते हैं। मूल-कन्दिल सघश होते है।

स्थानिक प्रयोग :- मूलकन्द का उपयोग ग्रामीण लोग मूत्रल तथा कफघ्न के रूप में करते हैं।

आम्रकुल - ANACARDIACEAE

द्रब्य नाम :- संस्कृत - प्रियाल,
हिन्दी - पियाल,
स्थानिक - अचार, तरूप, पियार,
लैटिन - Buchanania lanzan Spreng.



स्वरूप :- मध्यम आकार के वृक्ष होते हैं। पर्ण-अखण्ड, आयताकार, लट्वाकार, पुष्प-श्वेत वर्ण के गुच्छों में फल गोल, पकने पर काले रंग के मांसल एवं पके फल खाये जाते हैं। बीज की अन्दर की भींगी को चिरौंजी कहते हैं। छोटानागपुर एवं संथाल परगना में सर्वत्र इसके वृक्ष पाये जाते हैं। विशेषकर पहाडी वन्य क्षेत्रों में वृक्ष स्वयंजात होते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- गिरी का तैल ग्रामीण लोग बादाम तैल की तरह चिकित्सा में प्रयोग करते हैं। मलहम तैयार कर त्वक् के रोगों में उपयोग किया जाता है। पके फल खाये जाते हैं एवं गिरी को चिरौंजी के नाम से सूखे मेवों के रूप में व्यवहार होता है।

आयुर्वेदिक उपयोग :- बीज-पौष्टिक एवं वृंहण माना जाता है इसकी पेया खांसी में दी

जाती हैं। बालों को काला बनाने में तेल का उपयोग करते हैं। त्वचा के रोगों में इसका उबटन बनाकर लगाते हैं। गोंद का उपयोग अतिसार में करते हैं।

द्रब्य नाम :- संस्कृत - जिंगिनी, हिन्दी - जिंगन,
स्थानिक - झिंगन, संथाली - डोका,
लैटिन - Odina wodier Boxn.

स्वरूप :- मध्यम आकार के वृक्ष, पत्रक संख्या में ५१ आमने-सामने लम्बाग्र, लट्वाकार, पुष्प छोटा पीताभ-हरित, मञ्जरियों में फल टेढ़े आयताकार एवं गुठलीदार होते हैं। इसके वृक्ष बिहार प्रान्त में सर्वत्र पाये जाते हैं।

प्रयोज्य अंग :- छाल, गोंद।

स्थानिक प्रयोग :- छाल को पानी में भिगोकर इस पानी को पिलाने से तृषा (प्यास) शान्त होती है। छाल का स्वरस आदिवासी लोग चोट एवं कटे स्थान पर प्रयोग करते हैं, जिससे घाव शीघ्र भर जाता है। मवेशियों का पेट फूल जाने पर छाल पीस कर एवं घोल पिलाने से लाभ होता है।

आयुर्वेदिक उपयोग :- मधुर, उष्ण, कटु, वातघ्न, व्रणरोपक, योनिदोषहर एवं अतिसार नाशक है।

वातघ्नी मधुरोष्णा च, ब्रणघ्नी योनिशोधनी।
जिङ्गिणी कटुका पाके, तथा अतीसारनाशनी।। "राजनिघण्टु"



द्रब्य नाम :- संस्कृत - आम्र, सहकार,
हिन्दी - आम, स्थानिक - उल-उली
लैटिन - Mangifera indica L.

स्परूप :- मध्यम आकार के वृक्ष, पत्र-हरित, मसृण, पत्राग्र नुकीले, आयताकार अभिलटवाकार, पुष्प-मञ्जरी में सुगन्धित श्वेताभ वर्ण के फल मांसल एवं गुठली वाले होते हैं। सर्वत्र लगाये हुये इसके वृक्ष पाये जाते हैं।

स्थनिक प्रयोग :- पके फल खायेजाते हैं। फलो को आग में भूनकर एवं पुदीना, नमक

मिलाकर पीने से धूप की तेज लू शान्त होती है। आम की चटनी, अचार एवं अमचूर आदि रूपों में उपयोग होता है। आम की गुठली संग्राही का एवं मधुमेह में उपयोगी मानते हैं।

संस्कृत साहित्य में आम्र :- आम भारत वर्ष का आधारभूत पोषक राष्ट्रीय फलदार वृक्ष हैं। आम दक्षिण-पूर्व एशिया का पश्चिम में भारत लंका से पूर्व में फिलिपाईन द्वीपसमूह एवं न्युगायना, इन्डोचाईना और दक्षिण में सूतु तक के क्षेत्र का आदिवासी वृक्ष है। बहुमूल्य फलों के अतिरिक्त आम आकर्षक ऋंगार वृक्ष है। पुष्प मंजरियो से आच्छादित होने पर सुन्दर मनमोहक बसन्त सूचक है। आम्री, माकंद, चूत, सहकार इसके पर्यायवाची गुणवधोक पर्याय हैं। चूत शब्द खनिज द्रब्य के सुवर्ण घटित रंग बताने हेतु उपमान में आया है। तपोवनों, नगरपरिसरों के प्रसंग में आम्र का उल्लेख है। आम्र कूट पर्वत, हिमगिरी क्षेत्र मे इन्द्रझील पर्वत पर हिमालय की उत्पत्यका में कण्व के आश्रम में हिमालय स्थली में तथा रैवातपर्वत के गिरिकानन में नर्मदा के विन्धस्थली में अरण्यस्थलों में आम्र का उल्लेख है। मगधराज के क्रीड़ोद्यान में वीथि वृक्ष (चूतविथि) एवं मदनोद्यात प्रसंग में आम्र का उल्लेख किया है। आम्र मंञ्जरियाँ अत्यंत सुरभिगर्भित होने के साथ आमोद प्रसारी भी होती हैं। आम्र मञ्जरियाँ मधुर रस प्रधान होने से भ्रमरों के विशेष आकर्षक होती है। कवियों की द्यष्ठी में नायक-नायिकाओ को परस्पर मिलितोन्मुख प्रेरणा देने वाला आम्र से बढ़ कर कोई वृक्ष नहीं है। इसीलिये सहकार कहा है। कविकुल शिरोमणि कालिदास रघुकुलीय भोगविलास का चित्र करते हुये ग्रीष्म के भोगविलास के सम्बन्ध में लिखते हैं कि राजा सहकार एवं रक्तपाटला के पुष्पों से अधिवासित करके आसवपान करता था जिससे बसन्त बीतने से उसका मन्द पड़ा काम फिर से जाग उठने लगता है।

चूत द्रुभाणां कुसुमान्वितानाम्।
ददातिसोभाग्य मयंवसन्तः।। 'ऋतु सं.'

चूतामोद सूगन्धि मन्दः पवनः ऋृंगारदीक्षा गुरूः।
कल्पान्तः मदनप्रियो दिशतुवः पुष्पागमोमंगलम्।। 'रघु. सर्ग'

द्रब्य नाम :- संस्कृत - भल्लातक,
हिन्दी - मिलावा,
स्थानिक - सोसो, भेला, भेलना,
लैटिन - Semecarpus anacardium L.

स्वरूप :- इसके वृक्ष छोटे मध्यम एवं पर्ण ८ से १८ इंच तक लम्बे द्यठसिराओं से युक्त, आयताकार, अमिलट्वाकार, पुष्प-हरिताभ पीत वर्ण के, फल-आयताकार अष्ठिल, पकने पर



काला, मांसल, नारंग वर्ण का, फल के अन्दर दाहक रस होता है। वृक्ष को ,काटते समय छाल से एक काला दाहारक और स्फोटजनक रस निकलता है। फल के रस से धोवी लोग कपड़ो पर पहिचान हेतु निशान लगाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- मुण्डा जाति के आदिवासी अपनी लोक संस्कृति में इसके पके हुये फलों का उपयोग महत्वपूर्ण मानते हैं। जंगल में शिकार खेलकर धावों के वाह्य प्रयोग एवं विशेषविधि से इस दाहक रस का भी सेवन करते हैं। दुष्ट-दूषित व्रणों के रोहण हेतु ग्रामीण आदिवासी फलों का उपयोग करते हैं। हंडियाँ मादक पेय में भी इसके फलों का उपयोग किया जाता है। फल का उपयोग वाह्य रूप में कुष्ठजन्य दूषित व्रणो में किया जाता है।

आयुर्वेदिक उपयोग :- शुद्ध भल्लातक का चिकित्सा में उपयोग होता है। रस-मधुर, कषाय, वीर्य-उष्ण, विर्पाक-मधुर, गुण-मेध्य, रसायन, वात्तकफहर, मूत्रजनन, प्रमेह, अर्श, वातव्याधि एवं अर्बुद (कैन्सर) में उपयागी है। अधिक मात्रा में उपयोग करनेपर कभी-कभी मूत्र में रक्त भी आने लगता है। वातनाड़ी वल्य होने अनेक वातरोगों में उपयोगी है। वृक पर उत्तेजक प्रभाव होने से प्रारम्भ में मूत्र की मात्रा बढ़ती है लेकिन बाद में कम हो जाती है।

मुख्य योग :- अमृतभल्लातक अवलेह (वातरोग)
भल्लातक-तैल - (वातरोग)

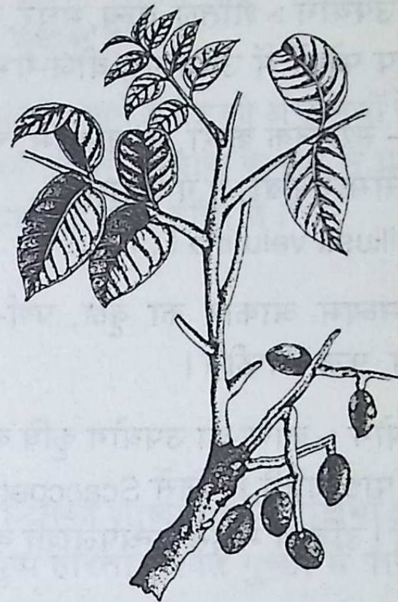
सावधानी :- यह घातक विष है। पित्त प्रकृति वालों को अनुकूल नहीं है। अतः प्रयोग करते समय शुद्धाशुद्ध मात्रा, प्रमाण का ध्यान रखना आवश्यक है।

विशेष :- कुष्ठ, मधुमेह, कैन्सर आदि व्याधियों पर इस औषधि का प्रभाव देखा जाता रहा है परिणाम उत्साह जनक है।

कुष्ठेऽर्शः तुकफामयेषु विहितो गण्डामये वृद्धिषु।
व्याधौ दुष्ठिजेऽग्नि सदने जन्तौविवन्धेस्वपि।। 'प्रिय. नि.'

टिप्पणी :- वाल्मीकीय रामायण में अयोध्याकाण्ड के चित्रकूट के प्रसंग में भल्लातक का उल्लेख मिलता है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - आम्रातक
हिन्दी - आंवाड़ा, स्थानिक - अंमड़ा, अम्बों
लैटिन - Spondias mangifera Wild.



स्वरूप :- मध्यम आधार का वृक्ष, पत्र अभिलट्वाकार मसृण संयुक्त, पीताभ-हरित, फल-लम्ब, गोल, मासंल एवं एक गुठली में पाया जाता है। रांची, पलामु, मूंगेर, संथालपरगना में सर्वत्र पाये जाते हैं, इसके वृक्ष स्वयंजात एवं लगाये हुये पाये जाते हैं।

स्थानिक उपयोग :- ग्रामीण लोग कच्चे फलों का अमचूर एवं अचार के रूप में प्रयोग करते हैं। फल मज्ञाचूर्ण का उपयोग दीपन-पाचन के रूप में भी किया जाता है।

आयुर्वेदिक उपयोग :- फल शीतल, कषाय, मधुर, रोचक, पित्त एवं कफनाशक हृद्य एवं वृष्य।

सीताफलकुल (ANONACEAE)

द्रव्य नाम :- हिन्दी - शरीफा, सीताफल,
संथाली - मनडरगोम,
लैटिन - Annona Squamosa L.

स्वरूप :- मध्यम आकार का बहुशाखीय झाड़ीदार गुल्मक पत्र लट्वाकार, लहरदार, फल-उभारयुक्त गोल, मांसल, पकने पर मधुर एवं कृष्णबीज वाला होता है।
इसकी अन्य प्रजाति पूर्णिया जिले में पाई जाती है। जिसे रामफल कहते हैं। भारत में यह १६वीं शताब्दी में पुर्तगालियों द्वारा लाया गया। प्राचीन संहिता ग्रन्थों में इसका स्पष्ठ रूप से उल्लेख नहीं मिलता है। उत्तरकालीन आयुर्वेद शास्त्र में गण्डगात्र, कृष्णबीज, सीताफल के नाम से उल्लेख मिलता है।

स्थानिक उपयोग :- पके हुये फल खाये जाते हैं। इसके फल एवं बीज कल्क को सिरोरोग या दुष्ठव्रण

में लगाने से जूँ या कीड़े मर जाते हैं। संथाली लोग बीज का उपयोग गर्भनिरोध हेतु करते हैं। फल-मधुर, शीतल, हृद्य एवं रक्तपित्त में उपयोगी है।

आयुर्वेदिक उपयोग :- शीतल, बल्य, मधुर, बृंहण एवं तृप्तिजनक है। दाह एवं रक्तपित्त में उपयोगी। पत्तों का लेप फोड़ों में उपयोगी, बीज-गर्भस्त्रावकर। बीजों में क्षोभक तत्व पाया जाता है।

द्रव्य नाम :- स्थानिक कारी, कोल-ओमे, चर्रा
संथाली - सिमारभूखा, उ.गन्धपालाश,
लैटिन - Miliusa velutina L. f.

स्वरूप :- मध्यम आकार का वृक्ष, पर्ण-अण्डाकार हरिताभ, पुष्प वड़े आकार मे झुके हुये पत्र-कोणीय, फल-कोष्ठीय।

स्थानिक प्रयोग :- काष्ठ का उपयोग कृषि कार्य में एवं पके फल खाये जाते हैं। इसकी अन्य प्रजाति इस क्षेत्र में पाई जाती है जिसे Scaccpetalum tometosum कहते हैं सिंगभूमि में इसके पादप पाये जाते हैं। उड़िसा में इसे गन्धपलाशी कहते हैं। छाल का उपयोग स्थानिक आदिवासी विषघ्न के रूप में प्रयोग करते हैं।



द्रव्य का नाम :- स्थानिक - कटहरि, चम्पा
लैटिन - Artabotrys odoratissimus R. Br.

स्वरूप :- मध्यम झाडीनुमा गुल्म, काण्ड-बहुशाखीय पर्ण-आयताकार, मालाकार, पुष्प-अप्रेल-जून में पीतवर्ण के उद्यानो में इसके गुल्म प्रायः लगाये हुये पाये जाते हैं।

स्थानिक उपयोग :- पुष्पों का उपयोग चम्पा के पुष्पों की तरह शोभा के लिये किया जाता है। इसके अतिरिक्त इस कुल की नकली अशोक के वृक्ष सड़कों पर लगाये हुये पाये जाते हैं।

करवीरकुल (APOCYNACEAE)

द्रव्य नाम :- स्थानिक - मालती, भौसरी, संथाली - रतेड़
लैटिन - Aganosina carophyllata G. Don.

स्वरूप :- परिसृत आरोही लता जाति की वनस्पति है। पर्ण-लट्वाकार, अण्डाकार, शिराये रक्ताभ, पुष्प-बड़े श्वेत, सुगन्धयुक्त। समस्त काण्डज गुच्छों में खिलते हैं। सिंगभूमि, संथालपरगना, मानभूमि, पालमू आदि स्थानों के पथरीले नालों में इसकी लतायें पाई जाती हैं। सम्भवतः निधण्टुकारों में वर्णित जाति भेद से यहीं वनस्पति हो सकती है।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण लोग पत्र कालिका का स्वरस पानी लगने से पैर की अंगुलियों के पकजाने पर स्वरस का वाह्य प्रयोग करते हैं। सर्पदशं में मूल का उपयोग क्थाथ के रूप में प्रयोग करने से लाभ होता है। इसका लोशन को दंश स्थान पर लगाने से लाभ होता है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - सपृपर्ण, कोल, कुनुमुंग,
हिन्दी - छितवन,
संथाली - छतनी, छतिवन,
लैटिन - Alstronia schdaris Brow.

स्वरूप :- इसके सुन्दर, विशाल और सीधे वृक्ष होते हैं। जिसकी शाखायें और पत्तियाँ चंद्रिक क्रम से निकलती हैं। पर्ण-चक्र में ३ अथवा ९ के संख्या में, पुष्प हरिताभ श्वेत गुच्छों में पाये जाते हैं। फलियाँ दो-दो एक साथ नीचे लटकी हुई होती हैं।

प्रयोज्य अंग :- छाल, पुष्प, पत्र, दुग्ध।

स्थानिक उपयोग :- (१) आदिवासी लोग छाल का उपयोग चूर्ण एवं क्वाथ विधि से कटीशूल एवं पार्श्वशूल में करते हैं।
(२) शीघ्र प्रसव के लिये इसकी छाल का लेप प्रसूता के मस्तक पर किया जाता है।
(३) ज्वर एवं पाचन नलिका के विकारों में आदिवासी छाल एवं पुष्पों का उपयोग करते हैं।
(४) चर्मरोगों में भी स्थानिक लोग छाल एवं पत्तों का उपयोग करते हैं। नेत्र विकारों में वाह्य प्रयोग करते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- रस-तिक्त, कषाय, वीर्य-उष्ण, विपाक-कटु, गुण-स्निग्ध, सारक-दीपन, विशेष-ज्वरघ्न, रोगोपयोग-कुष्ठ, शूल, गुल्म, उदरकृमि, विषमंज्वर एवं रक्तविकार में उपयोगी। अतिसार एवं प्रवाहिका की जीर्णावस्था में छाल का क्वाथ लाभदायक है। पुराने व्रणों पर इसका लेप करते हैं। चर्मरोगों में क्षीर का लेप लाभदायक है।

मात्रा :- त्वक्चूर्ण २ से ४ ग्राम, क्वाथ-२ से ४ तोला।
विशेष :- विषमज्वर में छाल का कारगर प्रभाव देखा गया है। छाल में क्वीनैन सद्यश तत्व पाये जाते हैं।

गुण :- सप्तपर्णः सुतिक्तः, स्यादुष्णोवातकफापहः।
विषमज्वर कुष्ठास्त्र, दोषजन्तु व्रणान् जयेत्।। "ध.नि."

संस्कृत साहित्य में सपृपर्ण :- महाकवि कालिदास ने अपने काव्यों में सपृपर्ण का उल्लेख शरद्कालीन सुगन्धित पुष्पों में रूप में किया है। इसके अतिरिक्त सपृपर्ण के प्रियदर्शन, सदाहरित, सघन पुष्प गुच्छको के रूप में भी उल्लेख मिलता है। संस्कृत के कवि इसके पुष्पों के सौरभ सम्पन्न होने पर भी उनके उत्कटगंधी होने पर भी श्रृंगारी और सौरभ संचारी पुष्प वृक्ष होने पर भी सपृपर्ण को चम्पक, पाटला, शेफाली आदि की भाँति प्रधान है। काव्यों में सपृपर्ण के पुष्पों की गंध की उपमा यौवनमद की उपनाम रूप में किया गया है। इसी कारण निघण्टुकारों ने इसके पर्याय नामों में मदगंधि, गजब्दिर, शिरोरूक् का उल्लेख किया है। काव्यकारों में दक्षिण से उत्तर तक एवं पश्चिम से पूर्व तक सर्वत्र उपलब्ध वन्य वृक्षों में वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त आवासीय वनस्पतियों के तपोवनों एवं राजाओं के क्रीडावनों में इसे आरोपित करने का उल्लेख किया है। वास्तव में सहवास काल में नैसर्गिक कामोन्मादक शारीरिक क्रियाव्यापार की प्रतिक्रिया स्वरूप हाथी के मस्तिष्क से एक विशिष्ठ गंधमद स्त्रावित होता है जो बिल्कुल सपृच्छदपरिमल की तरह उत्कट एवं तद्गंधी होता है।

वन खण्डों को धवलित करने वाले इसके पुष्पों की व्यापक धवलिमा की उत्प्रेक्षा वनराजिनायिका के अट्टहास से की जाती है।

यथा – इमे हि दैन्येन निमीलितेक्षणा,
गुहुः स्खलन्तो विवशास्तुरगंमाः।
गजाश्च सपृच्छदतान गन्धिनो,
निवेदयन्तीव रगं निवर्त्तनम्।। "भास"

बाल्मिकीय रामायण में माल्यवान् पर्वत, विन्ध्यपर्वत, अशोक वाटिका आदि के प्रसंग में सपृपर्ण का उल्लेख मिलता है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - करमद्रक
स्थानिक - करोंदा, कोल-कनुवान,
संथाली - करवत, कनवत,
लैटिन - Carissa Spinarum A. D.

स्वरूप :- इसके बहुशाखीय, कण्टकित, झाड़ीदार गुल्मक होते हैं। काण्ड को तोड़ने पर दूध निकलता है। पुष्प श्वेत वर्ण के पत्रकोणीय एवं सुगन्धित होते हैं। फल पकने पर काले वर्ण के मांसल स्वाद में मधुराम्ल होते हैं। इसकी अन्य प्रजाति भी इस क्षेत्र में पाई जाती है। जिसे Carissa Carandas करौन्दा कहते हैं। यह बागों में पाया जाता है।

स्थानिक प्रयोग :- मूल का उपयोग आदिवासी लोग सर्पदंश में करते हैं। पके हुये फल खाये जाते हैं। मूल क्वाथ में मवेशियों में होने वाले खुरपका में घाव धोने से लाभ होता है। इसे उत्तम कृमिघ्न मानते हैं। मूलक्वाथ का उपयोग आदिवासी उदरशूल एवं पक्षाघात में करते हैं।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - कखीर, श्वेत,
स्थानिक - सफेदकनेर, राजवाहा,
लैटिन - Nerium odorum Soland.

स्वरूप :- इस जाति में लाल और श्वेत दोनों पुष्पों वाली कनेरपाई जाति है। पत्र अभिलट्वाकार, आयताकार मसृण, हरिताभ इसके गुल्म सड़कों के आसपास लगाये हुये पाये जाते हैं। पीला कनेर भी इस क्षेत्र में पाया जाता है। जिसे Thevetia nerifolia कहते हैं। पीला कनेर अमेरिका का उष्णकटिबन्धीय क्षेत्र का आदिवासी पौधा है। १७९५ में डबलु मिल्टन द्वारा भारत में लाया गया।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण लोग छाल का उपयोग दुष्ठ व्रणों पर वाह्य लेप के रूप में करते है। पीला कनेर का हृदय पर डिजिटेलिस सद्यश प्रभाव देखा गया है। यह त्वक् दोष हर एवं सभी प्राणियों के लिये विष है।

आयुर्वेदीय उपयोग :- यह उपविष है। कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, कुष्ठघ्न, व्रण एवं विस्फोट में उपयोगी। पुष्प भेद से राजनिघण्टु कार ने रक्त, पीत, श्वेत एवं कृष्ण चार प्रकार के करवीर का उल्लेख किया है।

यथा - कृष्णस्तु कृष्णकुसुमरचतुर्विधोदयं गुणे तुल्यः।।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - कुटज,
स्थानिक - कौरया, कुरची, दुधिया,
लैटिन - Holarrhena antidysenterica Wall.



स्वरूप :- बहुशाखीय गुल्म जाति का वृक्ष है। पर्ण अवृन्त, लट्वाकार, दो कतारों में आमने-सामने मिली हुई रहती हैं। पुष्प श्वेत वर्ण के गुच्छों में सुगन्ध युक्त एवं समस्त काण्डज क्रम से निकलते हैं। फलियाँ पतली, लम्बी एवं दो-दो एक साथ तथा एक दूसरे से अलग लटकी रहती हैं। बीज-रेखाकार, आयताकार, एवं, यव सदृश स्वाद में तिक्त होते हैं। बीजों को इन्द्रयव कहते हैं। इसके पेड़

छोटानागपुर, संथालपरगना के सभी क्षेत्रों में सर्वत्र पाये जाते हैं। बीज, छाल का चिकित्सा में प्रयोग किया जाता है। सित एवं असित भेद से शास्त्रकारों ने दो प्रकार का कुटज माना है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग मूल को पानी में पीसकर शरीर के शोथ वाले भाग में विपरीत दिशा में इस का लेप कर मालिश करते हैं। आदिवासी लोग छाल चूर्ण का उपयोग तक्र के साथ जीर्णप्रवाहिका एवं अतिसार में करते हैं। मूलत्वक् का क्वाथ ज्वरातिसार में प्रयोग करते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- रस-कटु, कषाय, तिक्त, वीर्य-शीत, विपाक-कटु, गुण-ग्राही, दीपन, पाचन, ज्वरहर, रक्तसंग्राहक।

रोगोपयोग :- आमज्वर, प्रवाहिका, अतिसार, पचन संस्थान के विकार एवं वृकशूल में उपयोगी है। इसका उपयोग-पुटपाक, अवलेह, क्वाथ, फाण्ड, चूर्ण एवं आसव अरिष्ठ के रूप में किया जाता है।

प्रसूति के पश्चात् योनियों की शिथिलता को पूर्ण करने के लिये इसकी छाल का प्रयोग किया जाता है। कुटज की कोमल फली तथा कोमल पत्तों का शाक बच्चों के केंचुवे की बिमारी में देते हैं। इसका लेप आमवात तथा संधिशोथ में लाभदायक है।

योग- कुटजावलेह। अतिसार में।
कुटजारिष्ठ एवं कुटजघनवटी। प्रवाहिका में।

मात्रा :- चूर्ण १ से ४ माशा, क्वाथ १ से ४ तोला।

संस्कृत साहित्य में कुटज :- संस्कृत साहित्य में कुटज का उल्लेख महाकविकालिदास ने अर्जुन, कदम्ब, सर्ज, सपृपर्ण आदि कतिपय वृक्षों के साथ किया है। कवि ने वर्षाकाल में खूब हरित एवं शरद ऋतु में पुष्पित होने का उल्लेख किया है। सित एवं असित भेद से संस्कृत साहित्य में कुटज एवं गिरिमल्लिका के नाम से उल्लेख है।

यथा – स प्रत्यग्रैः कुटज कुसुमैः कल्पितार्थाम तस्मैः।
प्रीतः प्रीति प्रमुख वचनं स्वागतं व्याजहारः।। "पूर्व मेघ"

बाल्मिकीय रामायण में कुटज का प्रसंग माल्यवान् पर्वत पर लंका में एवं सह्यपर्वत कानन में तथा अन्य स्थानों पर आया है।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - गुलाचीन, चम्पा, गुलान्ची,
संथाली - पंगर,
लैटिन - Plumeria acutifolia Poir

स्वरूप :- यह विदेशी जाति का उद्यानों में लगाया जाने वाला गुल्म है। जो कि मेक्सिको का आदिवासी पौधा है। भारत में यह सम्भवतः १८८१ में लाया गया। काण्ड पत्र दुग्धमय, पत्र-आयताकार, लम्बें गुच्छों में होते हैं। पुष्प-श्वेत रक्तवर्ण के सुन्दर गुच्छों में खिलते हैं। आधुनिक ग्रन्थकार इस वृक्ष को क्षीरचम्पक कहते हैं। चिकित्सा में इसकी छाल, फूल एवं दुग्ध का उपयोग किया जाता है। इसकी अन्य प्रजाति को P. rubra L. कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- छाल रेचक, मूत्रल, शोथघ्न, वातहर, ज्वरघ्न एवं नियतकालिक ज्वर प्रतिबन्धक है। दूध में तीव्र भेदन गुण पाया जाता है। सुजाक में यह उपयोगी है। आदिवासी लोग प्रसूताकाल के बाद जिन स्त्रियों के स्तनों में दूध नहीं आता है। उसके लिये पत्तों को पीस कर करंजतैल के साथ स्तनों पर लेप करने से स्तनों से दूध निकल आता है।

टिप्पणी :- पीला, सफेद और लाल तीनों प्रकार के फूलों की जातियाँ अलग-अलग होती हैं। देवायतनों एवं गांवों के आसपास इसके वृक्ष पाये जाते हैं।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - चांदनी, टेंगरी
लैटिन - Tsbernaemontana Cornaria Br.

स्वरूप :- बहुशाखीय गुल्म जाति की वनस्पति है। पर्ण-हरिताभ, मसृण एवं चमकीले होते हैं। पुष्प श्वेत वर्ण के गुच्छों में खिलते हैं। ये गुल्म प्रायः उद्यानों में लगाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग मूल, पुष्प एवं दूध का उपयोग चिकित्सा में करते हैं। यह शीतल, ज्वरघ्न, वेदना-स्थापन, शामक, गर्भाशय उत्तेजक एवं व्रणरोपण में उपयोगी है। प्रसूतिका ज्वर में मूल का उपयोग अधिक लाभदायक है।



द्रव्य नाम :- संस्कृत - पुंकुटज, दुधकौरया,
स्थानिक - खिरना, तुआर, खिरी,
लैटिन - Wrightia tomentosa Roem.

स्वरूप :- इसके छोटे मध्यम आकार के वृक्ष छोटानागपुर, संथालपरगना के सभी स्थानों पर पाये जाते हैं। पर्ण-अण्डाकार, रोमश, दुग्धिल, पुष्प श्वेताभ नारंग वर्ण के, फलियाँ दो-दो एक साथ जुड़ी हुई श्वेत विन्दुओं से युक्त होती हैं। बीज स्वाद में मधुर, पतले यवसदृश, श्वेत रोमगुच्छों से युक्त होते हैं। नम जगहों तथा पथरीली घाटियों में इसके वृक्ष सर्वत्र

पायें जाते हैं। इसकी दूसरी जाति W. tinctoria Br. भी पलामू, सिंगभूमि में पाई जाती है जिसे खिरना, खिन्ना, दूधिया कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण लोग बीज का उपयोग उदर विकारों में करते हैं। पुष्पों का उपयोग ज्वर एवं दाहशामक के रूप में करते हैं।

टिप्पणी :- बाजार में इन दोनों किस्मों के बीज का उपयोग मीठा इन्द्रजों के नाम से अधिकतर किया जाता है। बीजों का ग्रामीण संग्रह करते हैं।



द्रव्य नाम :- संस्कृत - सर्पगन्धा, नाकुली, धवलवरूआ,
संथाली - अखा,
पहाड़िया - वामियावुरू, पातालगरूड़,
लैटिन - Rauwolfia serpentina Benth.

स्वरूप :- इसके १ से २ फीट ऊँचे गुल्मक होते हैं। पत्तियाँ चमकीली, आमने, सामने अथवा चक्रित, आयताकार ३ से ४ इंच तक लम्बी होती है। पुष्प छोटे श्वेत गुच्छों में फल रक्ताभ पकने पर कृष्णाभवर्ण के मांसल एक बीज वाले होते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासियों की सर्पविष की यह उपयोगी दवा है, मूल का व्यवहार पागलपन के लिये भी किया जाता है। आधुनिक खोजों के आधार पर यह उन्माद, निन्द्रानाश एवं ब्लडप्रेशर की दवा में बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है। पहाड़िया लोग मूल का उपयोग ज्वर, रक्तात्तिसार, कुष्ठ एवं सर्पदंश में करते हैं।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - प्रचलित - सारिवा,
स्थानिक - दुधलत, सं. पलामनदास, अनन्ता,
लैटिन - Ichnocarpus frutescens R. Br.

स्वरूप :- इसकी लतायें प्रायः छोटे वृक्षों एवं गुल्मों पर फैली रहती है। शाखायें प्रायः मुरचुई रंग की होती है। पर्ण-अण्डाकार, आयताकार, चिकनी एवं कुछ लम्बाग्र होती है। पुष्प छोटे-छोटे श्वेतवर्ण के एवं पतली मज्जरियों में खिलते हैं। फलियाँ पतली, लम्बी, तथा दो-दो एक साथ धूसर रंग की। सभी भागों में इसकी आरोही लता पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण लोग काण्ड को बोझा बांधने एवं टोकरी बनाने के काम में लाते हैं। आदिवासी काण्ड का उपयोग मुखपाक एवं मसूड़ों के सूजन में क्वाथ के रूप में प्रयोग करते हैं। मूल क्वाथ का उपयोग स्तन्य (दूध बढाने) के लिये ग्रामीण महिलायें करती हैं। मुण्डा आदिवासी लोग काण्ड एवं मूल का उपयोग ज्वर, सुजाक, पक्षाघात, नेत्रशूल एवं मासिकधर्म की अनियमितता में करते हैं।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - आस्फोता,
संथाली - हुंनसरी,
स्थानिक - अडका, अडट्टारेड़, कुकुदरोतुर,
लैटिन - Vallaris Heynei Spsery.

स्वरूप :- यह आरोही लता जाति की वनस्पति है। शाखायें श्वेताभ, बिन्दुकित होती है। पर्ण-आमने-सामने, आयताकार, अण्डाकार, लम्बाग्र होते हैं। पुष्प श्वेत समस्त काण्डज गुच्छों में, फल-बड़ा-लम्ब, गोल एवं अग्र की ओर कम पतला होता है। चम्पारन, छोटानागपुर, सिंगभूमि, संथालपरगना में सर्वत्र सुलभ है।

स्थानिक प्रयोग :- स्थानिक परम्परा के अनुसार पहाड़िया एवं कोल जाति के आदिवासी किसी निश्चित दिन में इसकी बेल को घर की छत पर बांध कर लटका देते हैं। इसके बांधने से वर्षभर सांप घर में प्रवेश नहीं करता है। मूल छाल के क्वाथ के कुल्ले करने एवं चबाने पर हिलते हुये दांत हिलना रूक जाते हैं। ग्रामीण लोग बेल का उपयोग टोकरी बनाने के काम में भी करते हैं।

टिप्पणी :- चरक संहिता में आस्फोता नामक द्रव्य का उल्लेख मिलता है। टीकाकार चक्रपाणी ने आस्फोता से अस्फुरमल्लिका इति लोके ख्याता अपर मल्लिका इति अर्थ किया है। डल्हण ने आस्फोता से सरिवा अर्थ किया है। लेखक के विचार से सारिवासद्यश गुणकारी होने से श्वेतसारिवा हाफरमल्ली स्वीकार किया जाना चाहिए। यह रक्तशोधक एवं काण्डूहर है।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - मिरचाई
लैटिन - Vinca pusilla Murr.

स्वरूप :- इसका ६ से १२ इंच ऊँचा और दूध वाला क्षुप होता है। काण्ड चौकुन-पत्तियाँ आमने-सामने, प्रासवत्, और चिकनी होती है। पुष्प श्वेत वर्ण के, पत्रकोणीय, फलियाँ पतली एवं लम्बी होती हैं। इसके क्षुप खेतों के समीप पाये जाते हैं यह क्षुप मवेशियों के लिये विषैला माना जाता है।

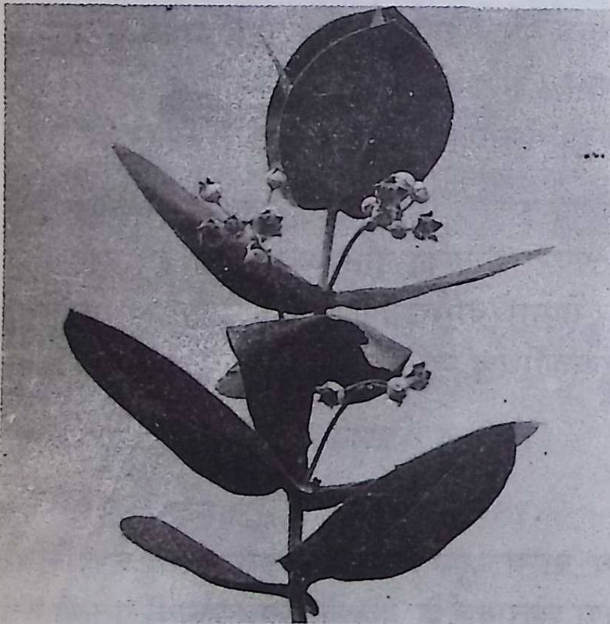
स्थानिक उपयोग :- पौधा जानवरों के लिये विषैला है। लम्बेगों में इसके पत्रों से साधित तैल का उपयोग किया जा है।

अर्ककुल - ASCLEPIADACEAE

द्रव्य नाम :- संस्कृत - काकतुण्डी, रक्तपुष्पा,
स्थानिक - दुधऊ,
लैटिन - Asclepias curassavica L.

स्वरूप :- यह विदेशी वनस्पति है। बहुशाखीय झाड़ीनुमा पौधा होता है। जोकि गांवों एवं बगीचों के आस-पास पाया जाता है। पुष्प पत्रकोणीय गुच्छों में रक्तवर्ण के होते हैं। फलियाँ दो-दो एक साथ और काकतुण्ड सदृश होती है। छोटानागपुर सिंगभूमि में कहीं-कहीं इसके पादप पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण आदिवासी इसे विषैला मानते हैं। पुष्पों की सुन्दरता में इसका उपयोग करते हैं। यह गुणों में इपीकाक के सदृश है। निघण्टुकारों ने काकमाची, काकतिक्ता, काकणिन्तिका, काकजंघा, काकनासा, काकांगी, काकोदुम्वरिका, काकोली, काकतुण्डी आदि कतिपय द्रव्यों एवं पर्यायों में सन्देह व्यक्त किया है। काकनासा, काकमाची, काकजंघा, कोकोदुम्बरिका, काकादनी, काकोली एवं काकतुण्डी में सभी द्रव्य राजनिघण्टुकार के अनुसार भिन्न-भिन्न हैं।



द्रव्य नाम :- संस्कृत - अर्क
स्थानिक - अकदना, पतली, मदार,
लैटिन - Calotropis procera Br.

स्वरूप :- मदार की तीन जातियाँ छोटानागपुर एवं संथालपरगना में पाई जाती है। श्वेतपुष्प वाली जाति को अलर्क, श्वेतार्क C. gigantea Br. कहते हैं। तीसरी जाति को C. acia कहते हैं। इसके क्षुप होते हैं। पत्तियाँ सवृन्त होती हैं। पुष्प श्वेत एवं श्वेताभ बैंगनीरंग के होते हैं। चिकित्सा में मूल, पत्र, पुष्प एवं क्षीर का उपयोग किया जाता है।

स्थानिक प्रयोग :- श्वेतार्क का प्रयोग हो जाति के आदिवासी क्षय रोग में करते हैं। जीर्णकास एवं उदरविकार में मूल तथा पुष्पों का उपयोग करते हैं। कोल जाति के लोग दूध का उपयोग दस्तावर के रूप में करते हैं। पुराने विवन्ध को दूर करने में एवं ज्वरघ्न के लिये पुष्पों का उपयोग श्वेतार्क का करते हैं संथाली लोग मूल क्वाथ का उपयोग सन्निपात ज्वर के प्रलाप की अवस्था में करते

हैं। श्लीष्पद (हाथीपांव) के रोग में पत्तों को गरमपानी में डालकर उष्ण सेक करते हैं। श्वास में मूल का प्रयोग किया जाता है। अर्क C. procera के गुणधर्म श्वेतअर्क से मिलते-जुलते मानते हैं। श्वेतार्क का मूल सर्पदंश में प्रयोग करते हैं। मूल का उपयोग महुआ की शराब में प्रयोग करते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- रस-तिक्त, कटु, वीर्य-उष्ण, विपाक-कटु, गुण-तीक्ष्ण, रस, मूलत्वक्-स्वेदल, वामक, पुष्प-श्वेत, दीपन-पाचन, क्षीर-रेचक, सर, गर्भपातक, त्रिदोषघ्न, रोगोपयोग-अर्श, कास, श्वास, गुल्म, ज्वर, प्लीहा-वृद्धि, दद्रु, विचर्चिका में उपयोगी।

इसका वामक प्रभाव आमाशय प्रक्षोभ एवं वमन केन्द्र की उत्तेजना से होता है। श्वासनलिकाओं में स्पष्ट प्रभाव द्यष्ठिगोचर होता है। रसायन होने के कारण इसे वनस्पति अर्ककहा गया है। इससे यकृत की क्रिया अच्छी होकर पित्तस्त्राव ठीक होने लगता है। इसका उत्सर्ग त्वचा के द्वारा होने कारण इससे त्वचा पर उत्तेजक प्रभाव दिखाई देता है एवं छोटी रक्तवाहिनियों का विस्तार होता है।

योग :- अर्कलवण (जलोदर) मात्रा - मूलचूर्ण ४ रत्ती से एक माशा।
धातुओं के मारण एवं पुटों में श्वेतार्क एवं अर्क का विशेष उल्लेख है।

यथा – शिला गंधार्क दुग्धाक्ता, स्वर्णाद्याः सर्वधातवः।
म्रियते द्वादश पुटै :, सत्यं गुरूवचो यथा।। "रसतरङ्गिणी"

टिप्पणी :- बाल्मिकीय रामायण में अर्क (मदार) का उल्लेख अयोध्या काण्ड ९४/६ में अर्क पुष्प एवं (पुष्पार्क) के प्रसंग में आया है।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - कोंगा, लाखन, मारंग
लैटिन - Dregea Volubilis Benth.

स्वरूप :- इसकी चक्रारोही मोटी-मोटी लतायें होती हैं। मोटे काण्ड कार्कयुक्त एवं टहनियों पर बिन्दु होते हैं। पर्ण-लट्वाकार लम्बाग्र, एवं रोमश, पुष्प-हरे, चिकने, सवृन्त मूर्धज गुच्छों में खिलते हैं। पलामू, सिंगभूमि, रांची एवं संथालपरगना में इसकी लतायें पाई जाती हैं।

स्थानिक प्रयोग :- संथाली आदिवासी जाति के लोग लकवा में इसके मूल का प्रयोग करते हैं। पचांग कण्डूघ्न एवं शोथघ्न के रूप में उपयोग किया जाता है। बेल काण्ड का उपयोग लकड़ी बांधने एवं टोकरी बनाने के रूप में करते हैं।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - सरिवा (कृष्ण)
स्थानिक - दुधलालर, करण्टा
लैटिन - Cryptolepis buchanani Roem.

स्वरूप :- इसकी आरोही लत्ता होती है। काण्ड-कृष्णाभ वर्ण का, पर्ण-जामुनपर्ण सद्यश, चिकने आयताकार, अण्डाकार, पत्र सिरायें पत्रतट के पहले ही परस्पर मिली हुई रहती हैं। पुष्प-पीतवर्ण के फलियाँ दो-दो एक साथ बड़ी होती हैं। काण्ड त्वक् रक्ताभ, कृष्ण और पतले परतों वाला होता है।

स्थानिक प्रयोग :- इसके काण्ड का दूध गरम पानी में मिलाकर आमवात में घुटनों एवं सन्धिप्रदेशों में वाह्य प्रयोग करने से लाभ होता है। मूलक्वाथ एवं घनसत्व का प्रयोग आदिवासी लोग र्मीगी के दौरे पड़ने पर आभ्यन्तरिक रूप में करते हैं। पंचाग का उपयोग कण्डूघ्न एवं रक्तशोधन के रूप में किया जाता है।

टिप्पणी :- संहिता ग्रन्थों में सारिवा द्वय का उल्लेख है। कृष्णं सारिवा के नाम से इसी द्रव्य का उपयोग किया जाना चाहिये।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - सरिवा, अनन्ता,
स्थानिक - अनन्तमूल, कपुरी, अनलसिंग, छोटीदुधी,
लैटिन - Hemidesmus indicus Br.

स्वरूप :- इसकी पतली आरोही लता होती है। पत्तियाँ आमने-सामने भिन्न-भिन्न आकार की, नीचे हलके रंग की और ऊपर प्रायः सफेद चिन्हों से युक्त, पुष्प छोटे, हरित, जामुनी रंग के एवं पत्रकोणीय, गुच्छों में निकलते हैं। मूल और काण्ड चक्र प्रायः कृष्णाभ होते हैं एवं भीतर से सफेद रंग का होता है। मूल में एक सुगन्धित प्रिय गन्ध होती है इसी कारण इसे सुगन्धमूला एवं कपूरी कहते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- रस-मधुर, तिक्त, वीर्य-शीत, विपाक-मधुर, गुण-मूत्रल, रक्तशोधक, ग्राही, ज्वरघ्न, त्रिदोषशमन।

रोगोपयोग :- त्वचारोग, रक्तरोग, आमवात, ज्वर, अतिसार, मूत्रावरोध एवं दन्तरोगों में उपयोगी। अनन्तमूल के फाण्ट से मूल की मात्रा दुगनी बढ़ती है तथापि वृक को इससे कोई हानि नहीं होती है। स्वेदजनन होने से ज्वरघ्न औषध द्रव्यों के साथ प्रयोग करने से विशेष लाभ होता है।

(१) वृकशोथ जिसमें मूत्र की मात्रा कम हो मूत्र गाढ़ा एवं लाल रंग का हो, तब इसका फाण्ट गुडूची (गिलोय) एवं जीरे के साथ देने से अच्छा लाभ होता है।

(२) फिरंग की द्वितीयावस्था में तथा अन्य चर्म रोगों में इसको गुडूची के साथ देने से अच्छा लाभ होता है।

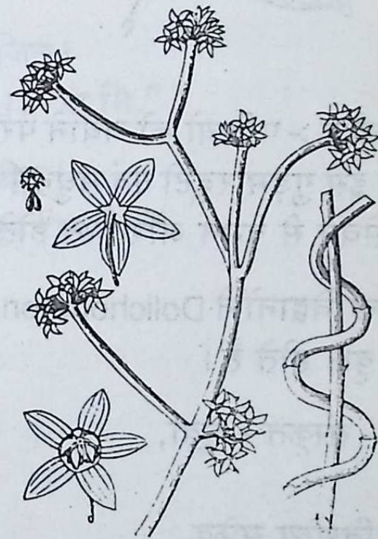
(३) बच्चों की दुर्बलता तथा पाण्डु आदि में वायविडंग के साथ प्रयोग करने से लाभ होता है।

(४) प्रदर में इसके मूल का अच्छा प्रभाव देखा गया है।

योग :- सारिवादिवटी - कर्ण रोग में।
सारिवाद्यारिष्ठ - रक्तरोग में।
सारीवाद्यासव - त्वचाविकार, वातरक्त में।
अनन्त मूलादिचूर्ण - प्रमेह एवं ज़ीर्णज्वर में।

विशेष :- वर्ण भेद से श्वेत एवं कृष्ण दो प्रकार की सारिवा होती है। इनिण्डियन सार्सपरीला से अनन्तमूल का प्रयोग किया जाता है।

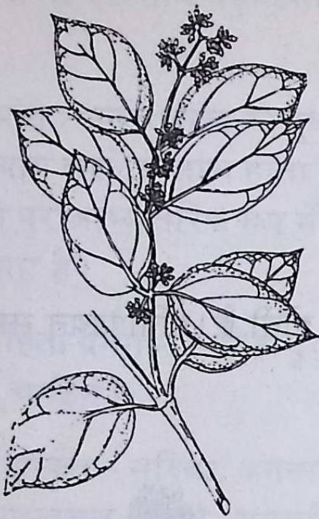
द्रव्य नाम :- संस्कृत - अर्कपुष्पी,
स्थानिक - मोरन अड़ा,
लैटिन - Holostemma Rheedeii Wall.



स्वरूप :- इसकी सुन्दर चमकदार आरोही लतायें होती हैं। पर्ण आयताकार, लट्वाकार, ३ से ९ इंच लम्बी एवं आधारतल मृदु रोमश, पुष्प-श्वेत या हल्के गुलाबी रंग के और भीतर से लाल होते हैं। कलियाँ ४ इंच तक लम्बी और इनके पृष्ठ पर दाने होते हैं। काण्ड को तोड़ने पर पीताभवर्ण का दूध निकलता है। इसीकारण कतिपय विद्वानों ने इसे जीवन्ती लिखा है। छोटानागपुर एवं संथालपरगना में लतायें पाई जाती हैं।

स्थानिक उपयोग :- मुण्डा एवं कोल जाति के आदिवासी पत्तियों का उपयोग श.. क के रूप में करते हैं। मूलक्वाथ का उपयोग कास एवं श्वासघ्न के रूप में भी करते हैं। यह मूत्रल एवं शोधक गुणों वाली वनस्पति है।

विशेष :- औषधि संग्रहकार के अनुसार इसे स्नेहन एवं शीतल गुणों वाला माना है। सोजाक, शुक्रदौर्वल्य, व्रण, अमिष्पन्द तथा कास में भी इसे उपयोगी बताया है। कतिपय आधुनिक विद्वानों ने इस वनस्पति को जीवन्ती एवं सोमलता की ओर भी संकेत किया है। शास्त्रीय जीवन्ती Leptadenia reteculata है।



द्रव्य नाम :- संस्कृत - मेषश्रृंगी,
स्थानिक - गुड़मार, आफो,
लैटिन - Gymnema sylvestre R. Br.

स्वरूप :- गुड़मार की चक्रारोही, लतायें पाई जाती हैं। शाखायें रोमश होने के कारण प्रायः पीताभ, पत्तियाँ अण्डाकार, आयताकार, कभी-कभी हृद्वत् २ इंच तक लम्बी होती हैं। पुष्प सूक्ष्म पीले-समस्तमूर्घज क्रम में निकले हुये, फलियाँ प्रायः एकाकी ३ इंच तक लम्बी एवं क्रमशः संकुचित रहती हैं। इसकी लतायें पलामू सिंगभूमि, संथालपरगना में पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग :- पत्तियों को चबाने पर जीभ की मधुर स्वाद की ग्रहण शक्ति नष्ट हो जाती है। इसी कारण इसे गुड़मारबूटी एवं मधुनाशिनी भी कहते हैं। मूल का उपयोग सर्पविष में किया जाता है जिसके सेवन से वमन और दस्त होते हैं। मधुमेह में पत्ती का उपयोग किया जाता है।

विशेष :- कुंछ विद्वानों ने Dolichondron falacata Seem. को भी मेषश्रृंगी लिखा है। इसके मध्यम आकार के वृक्ष होते हैं।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - मूर्वा,
बाजारी
प्रचलित - विशोथ सफेद,
संथाली - कोंगा, सिटनी, था मरवी,
लैटिन - Marsdenia tenacissima W. 8A.

स्वरूप :- इसकी आरोही मजबूत काण्ड की लता होती हैं। काण्ड एवं यन्त्र को तोड़ने पर दूध निकलता है। पत्तियाँ स्पर्श में मखमली तल वाली आयताकार, तीक्ष्णाग्र एवं हृदयाकार होती हैं। पुष्प हरित पीताभ एवं गुच्छों में खिलते हैं। फलियाँ तीन से चार इंच तक लम्बी होती हैं। मूल-मूली के आकार सदृश पुरानामूल का अन्दर का भाग काष्ठमय एवं श्वेत वर्ण का होता है। इसकी लतायें पलामू, हजारीबाग, सिंगभूमि एवं संथालपरगना के शुष्क पर्वत मालाओं और झाड़ीदार जंगलों में पाई जाती है। इसकी अन्य प्रजाति कहीं-कहीं छोटानागपुर एवं संथालपरगना में पाई जाती है। जिसे मोरनअड़ा M. Hamiltonii कहते हैं। पुष्प छोटे और आम्यन्तर कोश सफेद होता है। M. Volubilis भांडी-गुरजा के मूल एवं पत्र का प्रयोग हाइड्रोफोविया में किया जाता है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग मूल का उपयोग मिर्च के साथ पीस कर कुष्ठ में करते हैं। मूल चूर्ण का उपयोग विषमज्वर में विशेष करते हैं। इसके काण्डत्वक् से निकाले हुये रेशों से अत्यन्त मजबूत रेशों वाली रस्सी बनाई जाती है। इससे धनुष की डोरी (मौर्वी) मछली मारने के कांटों में लगने वाली रस्सी आदि बनाई जाती है। इसी आधार पर इसे शास्त्री मूर्वा माना गया है।

विशेष :- बाजार में मूल का क्रय सफेद निशोथ के नाम से किया जाता है। वास्तव में इसके मूल का उपयोग मूर्वा के नाम से किया जाना चाहिये। आधुनिक ग्रन्थकारों ने ५-६ जातियों की वनस्पति को मूर्वा लिखा हैं। वास्तव में उपरोक्त वर्णित औषध द्रव्य का उपयोग मूर्वा के नाम से किया जाना चाहियें।

आयुर्वेदीय उपयोग :- रस-मधुर, तिक्त, कषाय, उष्ण वीर्य, ज्वरघ्न, कफ-पित्तहर, विषघ्न, रोगोपयोग-कुष्ठ, कण्डू, विषमज्वर एवं हृद्रोगहर।

मूर्वा स्वादुरसा चोष्णा, हृद्रोग् कफ वातजित्।
कुष्ठ कण्डूवमी मेह, विषमज्वर नाशिनी।। "रा.नि."

मुर्वा तिक्ता कषायोष्णा, हृद्रोग कफवातहृत्।
वमि प्रमेह कुष्ठारिः, विषमज्वरहारिणी।। "रा.नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - उत्ततमारणी,
हिन्दी - उतरन, संथाली - जुतिपाकु,
स्थानिक - मोतीफूल, छगलवासी, उदुरदी,
लैटिन - Pergularia extensa D. C.
(= Demia extensa R.Br.)

स्वरूप :- उतरन की बहुशाखीय, दुग्धमय एवं कुछ दुर्गन्धवाली लतायें होती हैं। पर्ण-वृताकार, लट्वाकार, हृद्वत्, लम्बाग्र, हरित या पीताभ वर्ण की होती है। पुष्प रक्ताभ-श्वेत काण्डज मञ्जरियों में खिलते हैं। फलियाँ लम्बी अग्रभाग नुकीली, कुछ टेढ़ी, मुलायम कंटक उभार सद्यश रचना में। इसकी लतायें प्रायः गांवों के बाड़ों पर फैली हुई पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग :- इस औषध द्रव्य के मूल का उपयोग आदिवासी सर्प दंश में वामक एवं विरेचक के रूप में करते हैं। इस औषधि का उभयतोभागहर प्रभाव देखा गया है। व्रणशोधन एवं कृमिहर के रूप में भी इसका प्रयोग किया जाता है। संथाली आदिवासी पत्र का उपयोग अस्थिभग्न में वाह्य रूप से वेदनाशामक में करते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- राजनिघण्टु कार ने इसका उल्लेख इन्दीवरी तथा उत्तमारणी के नामों से

किया है। संहिता ग्रन्थों में भी उत्तमारणी का उल्लेख आया है। निघण्टुकार के अनुसार कटु, शीत, पित्तश्लेष्मापहारी, चक्षुष्य, कासहर, विषघ्न, व्रण-कृमिहर माना गया है।

यथा – इन्दीवरी युग्मफला, दीघवृतोत्तमारणी।
पुष्पमन्जरिका द्रोणी, करम्मा नालिका च सा।।
इन्दीवरी कटुः शीता, पित्तश्लेष्मापहारिका।
चक्षुष्या कास दोषघ्नी, व्रण कृमि हरा परा।। "राज निघण्टुः"

विशेष :- कुछ विद्वानों के मत से इस औषध द्रव्य की रचना तथा उभयतोभागहर गुणों की साम्यता अजश्रृंगी एवं वृश्चिकाली से मिलती जुलती है। जिसके कारण कतिपय लेखकों ने वृश्चिकाली यातुक एवं अजश्रृंगी लिखा है। डल्हण आदि टीकाकारों ने उत्तरण की बेल में मेषश्रृंगी सद्यश बतलाया है। यथा - वृश्चिकाली कण्टकित मेषश्रृंगतुंगाकार फला पाठापत्रा, ईषद्रोमशा श्वेतपुष्प गुच्छा-दक्षिणावर्त वल्ली-मेषश्रृंगीभेदः वृश्चियाकमन्येः।। सु.सू. अ. ३८, डल्हणः लेखक के विचार से वृश्चिकाली Tragia involucrata Linn. को स्वीकार करना उपयुक्त है। वृश्चिकाली - वृश्चिकपत्रों विच्छातीती लोके "चरकः चि.अ. ९,१ फलियाँ वृश्चिक तुल्य होती हैं। लतायें दुग्धिल एवं दक्षिणावर्त होती हैं। इस साद्यश्यता से वृश्चिकाली कह सकते हैं।

द्रव्य नाम :- अर्कपुष्पी, सोमवल्ली (प्रतिनिधि)
स्थानिक - वाघदूध, कुलुतोआ (शेर का दूध)
लैटिन - Sarcostemma bervistigma Wight.

स्वरूप :- यह प्रसरणशील, दुग्धिध, मृदुशाखीय आरोही लता जाति की वनस्पति है। प्रायः पत्थरों के बीच से इसकी लतायें निकलती हैं। पत्तियाँ स्थायी नहीं होती हैं। प्रायः पत्तियाँ गिर जाती हैं। इसके शाख काण्ड हरे, चिकने प्रायः एक-एक बालिस्त पर सन्धियुक्त और चट्टानों पर फैले हुये या झाड़ियों पर सवृन्त-मूर्धज क्रम से निकलते हैं। रांची, पलामू, सिंगभूमि, संथालपरगना के चट्टानों एवं पहाड़ों पर इसकी बेल पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण आदिवासी अर्कदुग्ध की तरह इसके दूध का उपयोग जीर्णकास, श्वास में करते हैं। पंचाग का उपयोग वातव्याधि में क्वाथ के रूप में मुण्डा जाति के लोग करते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- राजनिघण्टुकार ने सोमवल्ली का प्रतिनिधि द्रव्य माना है। सोमसद्यश पत्र विहीन पीताभ श्वेत दुग्धिल लता जाति की वनस्पति होने से सोमवल्ली भी कहा गया है। यह रस, गुण वीर्य विपाक में सोमवल्ली सद्यश गुणों वाली औषधि है।

यथा – सौम्या महिषवल्ली च, प्रतिसोमाऽत्र वल्लिका,
अपत्रवल्लिका प्रोक्ता, काण्ड शाखा षडाह्वया।

रसवीर्य विपाके च, सोमवल्ली समास्मृता।। "राजनिघण्टु"

आधुनिक द्रव्यगुण लेखकों ने सोमवल्ली से निम्न कतिपय द्रव्यों का उल्लेख किया है।

सोमकल्प - Ephedra gerardiana Wall.

सोमवल्ली - Sarcoetemma brevistigma w. & f.

होमा - Periploca aphylla Decme

विजया - Canabis indica Lam C C.Sativa Linn.

अमृतवल्ली - Tinospora cordifolia (willd.) Miers.

अमृतवल्ली - Ceropegia sp.

मशरूम - Amanitamuscaria

आदि फर्न एवं फंगस की जातियों का उल्लेख सोमा, सोमवल्ली के लिये किया गया है। विस्तृत उल्लेख यहां पर सम्भव नहीं है।

संस्कृत साहित्य में सोमवल्ली :- बाल्मिकीय रामायण में अयोध्या काण्ड के यज्ञ से सम्बन्धित याज्ञिक द्रव्यों में सोमवल्ली का उल्लेख है। इसी प्रकार अरण्यकाण्ड में ऋृषियों के आश्रम में अभिमंत्रित एवं सुरक्षित सोमरस को रावण द्वारा नष्ट करना आदि प्रसंगों में उल्लेख मिलता है। २४ प्रकार के सोमों का उल्लेख वैदिक ग्रन्थो से लेकर संहिता ग्रन्थों एवं निघण्टु ग्रन्थों में विस्तृत वर्णन मिलता है। लेखक के विचार से वैदिक सोम संहितोक्त सोम से भिन्न है। सम्प्रति अभी अज्ञात एवं संदिग्ध द्रव्य है। सोम ब्राह्मणकाल से ही अप्राप्य हो गया था, अतः उसके स्थान पर आदारी आदि प्रतिनिधि द्रव्यों की व्यवस्था की गई है। वैदिक काल में भी यह औषध सुलभ नहीं थी। यह मुञ्जवान् नामक पर्वत पर होता था और वहाँ के निवासियों (गन्धर्वो) द्वारा लाया जाता था। सोम औषधियों का राजा माना गया है। सोम, वभ्रु, अरूण या हरिवतर्ण कहा गया है। इसमें पर्व और अंशु होते हैं। काण्ड अंगुल्याकार होता है। इसमें पत्र भी होते हैं। इसका रस उत्तेजक और मादक कहा गया है। पत्थरों या शिला में पीस कर गन्धर्व रस निकालते थे और दूध, दही, या मधु मिलाकर उपयोग में लाते थे। दिन में तीन बार सोम सेवन का विधान है। ऋग्वेद के नवम मण्डल में सोम का विस्तृत वर्णन मिलता है।

यथा - "सोमोवीरूधा मधि पतिः समावतु"
सोमो वै देवानां हविः"
हरिः सोमो हरितवर्णः"
सोमो दुग्धाम्भक्षरति"
आयुर्वेदे श्यामलाउमला च निष्पन्नी क्षीरिणी
त्वचि मांसला श्लेष्मला वामनी,
वल्ली सोमः स्याच्छागभोजनम्" वृतिः।।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - गोचन्दना, कपूरी,
स्थानिक - नागबेल, चंदवा, लाट, तुलसिया
लेटिन - Tylophora basciculata Ham.

स्वरूप :- यह शाकीय आरोही क्षुप जाति की औषध है। काण्ड शाखायें मूलोद्भव, चारों ओर फैली हुई होती है। पत्तियाँ आमने सामने निकली रहती हैं। फलियाँ लम्बी रूईदार होती हैं। जड़े पतली गुच्छों में सारिवामूल सद्यश सुगन्धवाली होती हैं। इसके पौध रांची, सिंगभूमि के आसपास पथरीली जमीन एवं छायादार स्थानों पर पाई जाती है।

स्थानिक उपयोग :- आदिवासियों की यह प्रसिद्ध बूटी है। इस बूटी का उपयोग वशीकरण एवं तान्त्रिक के रूप में किया जाता है। बच्चों के सूखारोग में मूल को गले में बांधते हैं और उनके अनुसार गायचंदवा, भैंसचंदवा आदि भेद होते हैं। आदिवासियों का कहना है कि जहाँ यह पौधा मिलता है उसके पास उसका जोड़ा अवश्य होता है। सुजाक में भी मूल क्वाथ का उपयोग किया जाता है। आदिवासी डगरैंन गर्भस्नाव हेतु मूलिका का उपयोग करते हैं। न्यूनाधिक मात्रा में यह विषैली है।

विषेश :- सुश्रुत संहिता सूत्रास्थान अध्याय २८ में गोचन्दना का उल्लेख है। डल्हण ने प्रियंगु अर्थ किया है। ठा. बलवंत सिंह ने गोचन्दना नामक बनौषधि की सम्भावना स्वीकार की है। जो कि रसायन गुँणों वाली है।

गोचन्दना माहनिका, मधुकं, माक्षिकं मधु।
सुवर्ण मितिसंयोग, पेयः सौभाग्यमिच्छता।। सुश्रुतः।।



सूरणकुल - ARACEAE

द्रव्य नाम :- संस्कृत - वचा, घोड़वच
स्थानिक - घोड़वच,
लैटिन - Acorus Calamus Linn.

स्वरूप :- यह बहुवर्षायु जलीय प्रदेशों में पैदा होने वाली वनस्पति है। भौमिक काण्ड कन्दसद्यश, ग्रन्थिल सुगन्धित, तोड़ने पर श्वेताभ वर्ण के होते है। पर्ण-मूलोद्भव सीधे ऊपर को तलोत्थ, पुष्प सनाल मुण्ड़क। छोटानागपुर के पहाड़ी भागों के जलीय प्रदेशों के आसपास इसके काण्ड़ कहीं-कहीं पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- (१) छोटे बच्चों के ज्वर में वचामूल को पानी में पिसकर लोशन सा बनाते हैं। इस लोशन को बच्चे के हाथ पैरों पर लगाते हैं। इनका विश्वास है कि बालकों का ज्वर ठीक हो जाता है।

(२) सर्वांगवेदना एवं शिरःमूल में पंचाग का लेप मस्तिष्क एवं वेदना वाले भाग में प्रयोग करने से लाभ होता है। आमाशय विकार में ग्रामीण लोग वचामूल का प्रयोग करते हैं।

(३) श्वास में वचामूल का प्रयोग करने से श्वासवाहिनियों का प्रसार हाने से श्वासकष्ठ में विशेष लाभ होता है।

(४) कषाय गुणों के कारण अतिसार एवं प्रवाहिका में भी आदिवासी प्रयोग करते हैं।

(५) मूलचूर्ण का उपयोग कृमिघ्न, वामक वेदनाशामक, वातनाड़ी-उत्तेजक के लिये करते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- रस-कटु, तिक्त, वीर्य-उष्ण विपाक-कटु, गुण-मृदुरेचक, वामक, मेध्य, मूत्रल, वातकफशामक, रोगोपयोग-अर्श, विबन्ध, कुष्ठरोग, अपस्मार एवं शुष्ककास में उपयोगी।

योग :- सारस्वतचूर्ण (उन्माद), सारस्वतारिष्ठ (अपस्मार),
मात्रा :- चूर्ण २ से ५ रत्ती तक, वमन के लिये १० से १५ रत्ती।

विशेष :- वैदिक ग्रन्थों में वचा को स्मरणशक्ति एवं वाक् शक्ति को बढ़ानें वाली औषध बताई गई है। वचा के औषध मणि कहा गया है, जिसको कण्ठ एवं शिर में धारण करने को लिखा है। आज भी कतिपय आदिवासी बच्चों के गले में इसी बूटी को धारण करवाते हैं। ऐसा करने से हकलाने वाले बच्चों की वाक्शक्ति बढ़ती है।

यथा – वचायास्त्रिवृत कारमेन मंण्रि तं मंणि कण्ठेन
शिरसा वा धारयेत् कथासु श्रेयान् भवति।।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - कासालु,
स्थानिक - मानकन्द, मानसरू, मानकचु
लैटिन - Alocasia indica Schott.

स्वरूप :- मानकन्द के क्षुप ३ सेमी. ऊचे होते हैं। पत्तियाँ २ से ३ फीट लम्बी, पंखवत्, त्रिभुजाकार एवं पार्श्वीय खण्ड लट्वाकार होते हैं। मूलस्तम्भ से निकले हुये मूलों के अग्र कन्द सद्यश होते हैं। इसके भी कई भेदोप भेद होते हैं। यह प्रायः वागों तथा घरों के आसपास लगाया हुआ पाया जाता है।

स्थानिक प्रयोग :- स्कन्ध तथा छोटे कन्द ग्रामीण लोग आग में भून कर खाते हैं। मवेशियों के अतिसार में इस कन्द का घोल पिलाया जाता है।

विशेष :- नरहरि ने कई किस्मों के कन्दिल आलूओं का उल्लेख किया है जिसमें मुखालु, पिण्डालु, रक्तपिंड़ालु पानियालु, नीलालु मुख्य हैं। ये सभी कन्द वातघ्न एवं कफघ्न माने गये हैं।

लेखक के विचार से सभी कन्द सूरणकुल एवं वाराहीकुल की है। इस कुल की कतिपय कन्दिल प्रजातियों का उपयोग आलु की तरह आदिवासी करते हैं।

गुण :- कासालु रूग्रकण्डूति वातश्लेष्मापयापहः।
अरोचक हरः स्वादुः पथ्योदीपन कारकः।। "नरहरिकृत निघण्टु"



द्रव्य नाम :- संस्कृत - गोनसी, सर्पा,
स्थानिक - तूया, जोन्धश
लैटिन - Arisaema tortuosum Schoot.

स्वरूप :- इसके पौधे ३ फीट ऊँचे और सूरण से कुछ मिलते-जुलते होते हैं। काण्ड सुन्दर चित्रितवर्ण के होते हैं। पत्तियाँ प्रायः दो होती हैं। पुष्प फणाकार, फल-लाल दानों की बाली में अनेंको बीजों वाले होते हैं। कन्दशीर्ष-गोल, चपटा सा व्यास में २-३" का होता है। हिमालय में इसकी कई जातियाँ पाई जाती हैं। कुछ लोग सांपछल्ली भी कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- मूल कन्द का प्रयोग आदिवासी लोग भून कर एवं पानी में रखकर बार-बार धोकर भोजन सामग्री में प्रयोग करते हैं। मूलकन्द का उपयोग बवासीर, एवं उदर रोगों में करते हैं। सिक्किम हिमालय के भोटिया एवं लेपचा लोग इसकी अन्य जातियों के कन्दों का उपयोग आटे की तरह रोटी के लिये करते हैं। कन्दों का विषैला प्रभाव शोधन कर समाप्त किया जाता है उसके बाद खाद्य सामग्री में उपयोग करते हैं।

विशेष :- सुश्रुत संहिता अध्याय ३० में सर्पा नामक दिब्योषधि का उल्लेख मिलता है। डल्डण ने इसे गोनस कहा है।

यथा - द्विपर्णिनी मूलभवामरूणां, कृष्णमण्डलाम्।
द्व्यरत्निमात्रां जानीयाद्, गोनसींगोनसाकृतिम्।। "सु.चि.अ.३०"

द्रव्य नाम :- संस्कृत -सूरण, (जिमिकान्द)
स्थानिक - ओल,
लैटिन - Amorphophalus Campanulatus Blume.

स्वरूप :- यह बहुवर्षायु मूल कन्द वाला ग्रामीण शाक है। काण्डतलोत्थ चित्रित श्वेताभ वर्ण का एवं मांसल होता है। पत्र-त्रिपत्रक सद्यश अभिलट्वाकार होते हैं। पुष्प एकलिंगी, मूल-चपटा लम्ब गोल गहरावादामी वर्ण युक्त, फल-मांसल, रक्तवर्ण के। यह रांची, छोटानागपुर एवं संथालपरगना के इलाकों में सर्वत्र गाँवों के आसपास लगाया हुआ पाया जाता है।

स्थानिग प्रयोग :- ग्रामीण लोग बल्य शाकों में मूल कन्द का उपयोग करते हैं। अर्श (बवासीर) में इसका उपयोग आदिवासी लोग करते हैं। फलों का वाह्य प्रयोग संधिवात में मुंडा जाति के लोग करते हैं।

आयुर्वेदीय प्रयोग :- रस-कटु, कषाय, गुण-अनुलोभन, दीपन, पाचन, लघु, सर, रोचक, वातकफ शामक, रोगोपयोग - गुल्म, अर्श, कफ-रोग, यकृतप्लीहा रोग,। स्थौल्य, आर्तवदोष।

योग - वृ. सूरणमोदक, (अर्श)
मात्रा - चूर्ण २ से १० माशा।

विशेष :- छोटानागपुर एवं संथालपरगना में स्वयंजात किस्म भी पाई जाती है। Amorphophalus bulbifer Blum कहते हैं। सम्भवतः यह शास्त्रीय बज्रकन्द हो सकता है। कुछ विद्वानों ने A. sylva ticus kunth को भी बज्रकन्द लिखा है। लेखक के विचार से इस कुल की वनस्पति Typhonium officinalis शास्त्रीय बज्रकन्द हो सकता है।

जंगली सूरण का प्रयोग आदिवासी उदरकृमि (रिंगवर्म) एवं एक्जीमा में करते हैं।

द्रव्यनाम :- संस्कृत - पिण्डालुक (रक्त)
स्थानिक - अरवी, कचान्दु, पिचकी, सास,
लैटिन - Colocasia esculenta Schot.

स्वरूप :- इस वनस्पति के कई भेद, उपभेद पाये जाते हैं। यह वन्य तथा कृषिजन्य दोनों अवस्थाओं में पाया जाता है। यह छोटानागपुर एवं संथालपरगना में सर्वत्र पाया जाता है। वन्य जाति को C. nymphaeifolia Kunth कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- पत्र, पत्रनाल एवं मूल का शाकों में उपयोग किया जाता है। अरवी की प्रायः खेती की जाती है।

विशेष :- राजनिघण्टुकार के अनुसार सम्भवतः यह लोहितालु हो सकता है। Dioscoria की किस्मों में भी पिण्डालु, पिण्डालुक, रक्तापिण्डालु की साम्यता मिलती है।

रक्त पिण्डालुकः शीतो, मधुराम्लश्रमापहः।
पित्त दाहापहोवृष्यो, वलपुष्ठिकरोगुरूः।। "ध.नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - जलकुम्भी, वारिपर्णी,
लैटिन - Pistia strtiotes L.

स्वरूप :- इसके क्षुप जलाशयों के उपर तैरते हुये पाये जाते हैं। पत्तियाँ १ से ३ इंच लम्बी, अभिलट्वाकार और चक्राकार गुच्छों में, पुष्पव्यूह, पत्रावृत होता है। पुष्प नीलाभ हरित वर्ण के गुच्छों में। कतिपय लोग इसे समुद्रशोष भी कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण लोग दाहशामक, शीतल मूत्रजनन, अर्श, गण्डमाला में उपयोग करते हैं।

विशेष :- सुश्रुत संहिताकार ने जलकुम्भीक एवं वारिपर्णी के नाम से इस वनस्पति का उल्लेख किया है। जो कि कुम्भीक Careya arborea नामक वृक्ष से भिन्न है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - वीरा
हिन्दी - जयमंगलकांदा,
स्थानिक - कांटासरू, वामलशाक, ते-गोलाकांटा
लैटिन - Lasia aculeata Lour. (= L. Spinosa Thw.)

स्वरूप :- वामलशाक एक कांटेदार जाति की वनस्पति है। अधोभूमि शायिकाण्ड कन्दिल (राईजोम) होते हैं। इन कन्दों के खुर्चने पर श्वेत दूध सद्यश पदार्थ निकलता है। पर्ण १५ सेमी. लम्बे, पक्षवत्, खण्डित, नसों पर तीव्र कांटे, पत्रवृन्त, रक्ताभवर्ण का काफी लम्बा, सीधा एवं कांटेदार पर्णवृन्त के आधार कोषाकार होते हैं। पुष्पदण्डवृत ३ सेमी. से ५ सेमी. पत्रवृन्त पुष्प ब्यूह से युक्त होते हैं। फल बड़े चौकोर एवं स्वाद में मुंह पर लगने वाले होते हैं। काण्ड जलीय एवं नमदार स्थानों पर पाया जाता है। छोटानागपुर एवं संथालपरगना के रांची, मुंगेर, सिंगभूमि, पलामू आदि स्थानों पर यह वनस्पति पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग :- १. आदिवासी लोग कांटेदार पत्तों का शाक एवं मूलकन्दों का प्रयोग कण्ठगत शोथ एवं व्रण में करते हैं।
२. संथाली मूल का उपयोग मांस पेशियों के ऐंठन एवं दर्द में प्रयोग करते हैं।
३. मुण्डा तथा पहाड़ियां लोग मूल एवं पंचाग का उपयोग गर्भ निरोध में किया जाता है।

४. बांझपन (वन्ध्यत्व) के लिये कांटासरू के मुलकन्द स्वरस को दूध के साथ स्त्रियों को रजःकाल के बाद एक सप्ताह तक देते हैं ऐसा करने से स्त्रियों की गर्भाधान शक्ति नष्ट हो जाती है।

५. आदिवासियों का विश्वास है कि अधिक मात्रा में प्रयोग करने पर विषैला प्रभाव देखा गया है। इसलिये सावधानी से प्रयोग करना चाहिये।

अमरकण्टक आदि वन्य क्षेत्रों के स्थानिक लोग इस बूटी को जयमंगल कांदा कहतेहैं। कन्द का आकार अण्डोकोष सद्यश रज्जूमय होता है। तोड़ने पर गुठलीदार कन्द श्वेतवर्ण के दुग्धिल होते हैं। इस कन्द को दिब्य कन्द मानते हैं। बाजीकर एवं पुत्रदा मानते हैं। ठा. बलवन्त सिंह ने वीरा नामक दिव्यौषधि, अष्ठवर्ग सद्यश गुणों वाली इसे माना है।

विशेष :- संहिता ग्रन्थों में वीरा नामक वनस्पति का उल्लेख जीवनीयगण के औषध द्रब्यों के साथ एवं वृंहणीगुटिका, दाक्षादिघृत आदि कतिपय योगों में ब्यृष्य, वृंहण एवं बलवर्धक हेतु आया है। निघन्टु ग्रन्थों में भी अनेक कार्य वोधक द्रब्यों क्षीरकाकोली, शतावरी, भूम्यामलकी, आदि के पर्यायों में उल्लेख मिलता है चक्रपाणी, जेज्जट आदि टीकाकारों ने वीरा नामक द्रब्य से जालन्धरी या जालन्धर शाक अर्थ किया है। अभीरूपत्री से शतावरी अर्थ किया है। जो जलीय, नमदार स्थानों में पैदा होने वाला कन्दिल शाक प्रधान द्रब्य है। जालन्धर वन्ध योगिक क्रिया का एक योगाभ्यास है। पथ्यशाकों में चरक ने जालन्धर शाक का निर्देश किया है। इस सभी आधार स्थलों के प्रसंगों से स्पष्ठ है कि वीरा नामक वनस्पति कन्दिल, शाकीय एवं वृंहण तथा वाजीकरण वाली वनस्पति है।

स्थानिक आदिवासी परम्परागत प्रयोगों के आधार पर द्रब्यों का स्वरूप एवं गुणात्मक पक्षों का विश्लेषण करते हुये स्पष्ट प्रतीत होता है कि शाकीय वीरा कांटासरू (वाममशाक) नामक वनौषध द्रब्य विशेष है। देखिये विस्तृत वर्णन "वीराविनिश्चय महासम्मेलन पत्रिका अप्रैल, १९८२"।

द्रब्य नाम :- संस्कृत - वन्यसूरणभेद, वज्रकन्द,
स्थानिक - कोल, हद,
लैटिन - Plesmonium marqarititerum Schot

स्वरूप :- वहुवर्षायु कन्दवाली वनस्पति है। पर्ण एक, कभी-कभी १ से २ फीट ऊँची ब्यास में, पाणिवत्, सदल और उसके पार्श्विक दल द्विविभक्त होकर पुनः प्रत्येक खण्ड पक्षवत् खण्डित रहता है। पुष्पध्वज २ फीट तथा ऊँचा और पत्तियों के पहले निकलता है। बाली के दाने (फल) पकने पर लालवर्ण के होते हैं। कन्द सूरण के आकार में ब्यास में ३ इंच ऊपर से दबे हुये होते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- कन्द बहुत तिक्त स्वाद वाले होते हैं। कोल भाषा में हद का अर्थ तिक्त होता है। आदिवासी लोग फल (दानों) का उपयोग अंग-शून्यता के लिये वाह्य लेप करते हैं। इनका कहना

है कि रक्त का भी प्रवाह भी यह करता है। कन्द का ग्रन्थिशोथ एवं ग्रन्थिमाला में करते हैं। दन्तमल एवं दन्तकृमि में भी प्रयोग किया जाता है।

विशेष :- संहिता ग्रन्थों में व्रजप्रोक्ता, अमरामधुसाह्वय आदि नामों का उल्लेख मिलता है। डल्हण ने वज्रपोक्ता से वज्रकन्द अर्थ किया है। सुश्रुत ने रक्तशोधन द्रव्यों में इस औषध का उल्लेख किया है। सम्भवतः निम्न दो प्रजातियों में वज्रकन्द की सम्भावना हैं। कुछ लोग स्नुही अर्थ करते हैं।

यथा - Plesmonium marquaritiferum

2. Amorphophalus sylvaticus

वज्रप्रोक्ता वज्रकन्दः स्नुहीत्यन्ये वज्रप्रोक्ता।
इत्यत्रान्ये ऋष्यप्रोक्ता इतिपठन्ति।। (सु. स. उ. डल्हणः)



द्रव्य नाम :- संस्कृत - गजपिप्पली,
स्थानिक - हाथीपीपर, हथकौंल, जनपा,
लैटिन - Scindapsus officinalis scott

स्वरूप :- हाथी पीपर की वृक्षरूह मोटी लतायें वृक्षों पर तथा कभी कभी चट्टानों पर फैली रहती है और असंख्य काण्डोद्भव मूलों द्वारा आश्रय से चिपकी रहती हैं। काण्ड-मोटे, मांसल, पर्ण-बड़े आकार में अविभक्त, वृन्त, सपक्ष एवं कोषाकार होते हैं। पुष्पब्यूह हरे कोषाकार पत्र में ढका रहता है। पत्रावरण के गिर जाने पर ३ से ५ इंच लम्बे फल पिप्पली के आकार में दिखाई देते हैं। इसकी लतायें रांची, सिंगभूमि तथा अन्य स्थानों की आद्रघाटियों में पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग फल को कुलथी की दाल के साथ पीसकर गरम करके कण्ठमाला एवं शोथ पर लेप करते हैं। मवेशियों में नीम के पत्तो के साथ इसके फल को पीस कर खाने को दिया जाता है। संथाली लोग आमवात में इसका वाह्य प्रयोग करते हैं।

विशेष :- संहिता ग्रन्थों एवं निघण्टु ग्रन्थों में गजपिप्पली का उल्लेख मिलता है। राजनिघण्टुकार ने चब्य नामक औषध द्रब्य के फल को गजपिप्पली लिखा है। चब्य (पाईपरचवा) को कहते हैं। जो

कि पिप्पली की प्रजातियों में एक है। अधिकतर लेखकों ने हाथीपीपर हथकौंल नामक आरोही लता के फलों को गजपिप्पली कहा है। व्यवहार में हथकौंल (गजपिप्पली) का उपयोग बहुत कम देखने में आया है। द्वीपिप्पली पर्याय गजपिप्पली का आया है। जिससे प्रतीत होता है कि यह पाईपर का फल ही है।

गजोषणा चब्यफला गजपिप्पली।
गजपिप्पलिका स्वादुः कटुरूष्णाचकीर्तिता
वलासं हन्तिवातेन, सार्घ जंन्तुजयः प्रदा।। रा.नि.

द्रब्य नाम :- स्थानिक - निरविष,
लैटिन - Typhonium trilobatum Schott.

स्वरूप :- तलोत्थ शाकीय वनस्पति है। पर्ण मूलोद्भव, पर्ण २ से ३ संख्या में होती हैं। कन्द शीर्ष दबा हुआ होता है। वन्यसूरण की तरह इसका कन्द होता है। रांची, छोटानागपुर में कहीं-कहीं यह पाया जाता है।

स्थानिक प्रयोग :- लोहार जाति के आदिवासी मूलकन्द का प्रयोग कुत्ते के काटने पर, सर्पदंश पर करते हैं। इसके अतिरिक्त इस कन्द का उपयोग श्लीष्पद, कैंसर आदि रोगों में ये लोग उपयोग करते हैं। इन लोगों का विश्वास है कि कैंसर जैसे रोगों में यह कन्द प्रभावकारी है। इस दिशा में शोध कार्य अपेक्षित है। उड़ीसा एवं बंगाल के ग्रामीण कन्द का उपयोग अर्श में कच्चे केले के साथ शाक बनाकर प्रयोग करते हैं।

विशेष :- सम्भवत : 'यह कन्द वन्यसूरण भेद में एवं संहिताओं में वर्णित वज्रकन्दों के प्रकारान्तर भेदों में यह हो सकता है।'

जिनसेनकुल (ARALIACEAE)

द्रब्य नाम :- स्थानिक - सूकरीरून, भुरकुंण्ड,
संथाली - वनसिमसर,
लैटिन - Heptapleurum Venulosum Gaertn.

स्वरूप :- आरोही लता जाति की वनस्पति है। काण्ड ३ फीट तक मोटे पत्तियाँ-पाणिवत्, ५ से ७ पत्रक, पुष्प-पीले, सवृन्तमूर्धज, पुष्प गुच्छों में निकले मालुम होते हैं। पौधे इस क्षेत्र के जलप्रायः एवं पहाड़ी भागों में पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- हो जाति के आदिवासी लोग जड़ को पीस कर बच्चों के पूनी वाले रोग में पीस कर लगाते हैं।

ईश्वरीकुल (ARISTOLOCHICEAE)

द्रब्य नाम :- संस्कृत - नाकुली, ईश्वरी,
स्थानिक - वनकिगना, इसरौल, गद,
लैटिन - Aristolochia indica Linn.

स्वरूप :- यह बहुवर्षायु आरोही लता जाति की वनस्पति है। काण्ड पतले जालीदार होते हैं। पर्ण २ से ४ इंच लम्बे लम्ब्राग्र और एक विशेष आकार की होती है। पुष्प-फल के आकार में पीताभ बैगनी रंग के, फल गोल या चौड़ा आयताकार, फटने पर हवाई छतरी सद्यश चिपटे, त्रिकोण और सपक्ष होते हैं। सिंगभूमि, पालमू, मुंगेर, संथालपरगना के जंगलों में इसकी लतायें पाई जाती हैं। इसकी अन्य प्रजाति कहीं-कहीं पायी जाती है जिसे धूम्रपत्रा, कीटमारी A. bracteta Rat कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग सर्पविष की उपयोगी दवा मानते हैं वे लोग गद के नाम से इस बूटी का उपयोग करते हैं। संथाली आदिवासी मूल का उपयोग गर्भनिरोधक के रूप में ऋतुकाल के बाद करते हैं ऐसा करने से गर्भधारण नहीं होता है।

आयुर्वेदीय उपयोग :- निघण्टु ग्रन्थों के आनुसार यह तिक्त, कटु, उष्णवीर्य, विषघ्न, ज्वरघ्न, कृमिघ्न, कटुपौष्ठिक, गर्भाशयोत्तेजक, स्वेदजनन, संधिशोथध्न एवं नाड़ी उत्तेजक है। संहिता ग्रन्थों में नाकुली द्वय शब्द का उल्लेख मिलता है। गन्धनाकुली सुगन्धा चपाठ आया है। एवं नाकुली से सर्पगन्धा अर्थ किया है। सुगन्धा नामक द्रब्य से ईश्वरी का उपयोग करना शास्त्र संगत प्रतीत होता है। आनन्दकन्द ने ईश्वरी मूल को क्षीरपरिस्त्रावा लिखा है। इस लक्षण को छोड़कर अन्यलक्षण इस बूटी में मिलते हैं।

ईश्वरी च्युच्यते काचिदीश्वरी तुल्यरूपिणी।
भूरिक्षीर परिस्त्रावा सबीज रसबन्धनी।। "आननदकन्द"

दारूहरिद्राकुल BERBERI DACEAE

द्रब्य नाम :- संस्कृत - दारूहरिद्रा,
स्थानिक - सुमलु,
लैटिन - Berberis asiatica Raxb

स्वरूप :- सदाहरित झाड़ीनुमा वनस्पति है। काण्ड का अन्दर वाला भाग पीत वर्ण का होता है। पर्ण-मसृण, कण्टकित और दन्तुर-धार में पुष्प-पीतवर्ण के, फल-मांसल, बीजवाले पकने पर बैंगनी रंग के होते हैं। यह हिमालय में मिलने वाली वनस्पति है, बिहार प्रान्त के छोटानागपुर और

पारसनाथ के चार हजार फीट की ऊँचाई पर यह वनस्पति पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग :- पके फल कभी-कभी खाये जाते हैं। मूल का प्रयोग आदिवासी औषध रूप में करते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- रस-तिक्त, कटु, वीर्य-ऊष्ण, विपाक-कटु, गुण-रस, चक्षुष्य, यकृदुत्तेजक, रक्तशोधक, रोगोपयोग-हिक्का, नेत्र-रोग, विषमज्वर, वातरोग, त्वक्रोग, यकृतविकार, अर्श आदि रोगों में उपयोगी। योग-दार्बीचूर्ण, (यकृतरोग), दार्व्यादिक्वाथ (स्वांगशोथ) रसाज्जनवटी, अर्शोघ्नवटी, रसाज्जननेत्रबिन्दु।

टिप्पणी :- मूल एवं काण्ड घनसत्व को रसौंत कहते हैं। हिमालय की घाटियों में इस वनस्पति की कतिपय प्रजातियाँ पाई जाति है।

तिक्ता दारूहरिद्रातु कटूष्णा व्रणमेहनुत्।
कण्डूविसर्पत्वग्दोष, विष कर्णाक्षिदोषनुत्।। "धन्वन्तरिनिघण्टु"

पीतकार्पासकुल (BIXACEAE)

द्रव्य नाम :- संस्कृत - सिन्दूरी, शोणपुष्पी
स्थानिक - लटकन, सिंन्दूरिया, सीयूल
लैटिन - Bixa orellana Linn

स्वरूप :- मध्यम आकार का वृक्ष वागों में लगाया हुआ पाया जाता है। पर्ण-हदयवत्, लम्ब्राग, चिकनी, चमकीली और ४ से ८ इंच तक लम्बे होते है। पुष्प गुलाबी रंग के श्वेताभ होते हैं। बीज सिंदूरवर्ण के स्तर से ढके रहते हैं। इन फलों से रंग तैयार किया जाता है। यह वृक्ष अमेरिका का आदिवासी पौधा है।

स्थानिक प्रयोग :- फल से रंगने के लिये रंग तैयार किया जाता है। बीज एवं मूल रेचक, ग्राही और ज्वरघ्न होता है। इसके अलावा बीज का उपयोग सोजाक एवं हृदयविकार में किया जाता है। आदिवासी पत्र का उपयोग सर्पदंश एवं कामला (पीलिया) में करते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- कैय्यदेव निघण्टुकार सिन्दूरी रक्त बीजा स्यात् रक्तपुष्पातु कोमला कहा है। मूल, बीज एवं पत्र का उपयोग विषघ्न, हृदयविकार, शिरोविकार एवं भूतवाधाहर के रूप में होता है। यह कटु, तिक्त, कषाय, शीतल एवं श्लेष्मवातहर हैं।

यथा :-सिन्दूरी कटुका तिक्ता, कषायाश्लेष्म वातजित्।
शिरोऽर्तिशमनी भूतनाशा, चण्डी प्रिय भवेत्।
सिन्दूरी शीतला हन्ति, विष पित्त तृषा वमी।। (शा. नि.)

टिप्पणी :- बीजों का लेप शरीर पर करने से मलेरिया के मच्छरों का शरीर पर कोई विषैला प्रभाव नहीं होता है।

द्रब्य नाम :- हिन्दी - कतीरा,
स्थानिक - गल-कल, कांटेपलाश,
संथाली - होपो, को-हुपू,
लैटिन - Cochlospermmum gossypuim DC

स्वरूप :- इसके वृक्ष मध्यम एवं छोटें आकार एवं सीधे ओर मृदु काण्ड वाले होते हैं। पर्ण ३ से ५ खण्डित, पुष्प-पीतवर्ण के एवं फलके अन्दर बीजो के ऊपर पीताभ रंग की और रेशम की तरह मुलायम रूई होती है। वृक्ष से एक पीताभ एवं श्वेतरंग का गोंद निकलता है, इसे कतीरागोंद भी कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- गोंद रेचक और अत्यार्त्तव, श्वेत एवं रक्तप्रदर में दिया जाता है। सिंगभूमि के आदिवासी मूलत्वक् को मूत्रल व अश्मरीघ्न मानते हैं।

विशेष :- इसे अरण्यकार्पासी, भारद्वाजी के नामों से जाना जा सकता है। स्थानिक प्रयोगों को आधार पर इसमें गुणधर्मो में साम्यता मिलती है। यथा - भारद्वाजी हिमारूच्या, व्रणशस्त्रक्षतापहा।। रा.नि.'

शाल्मलीकुल BOMBACACEAE

द्रब्य नाम :- संस्कृत - शाल्मली (श्वेत)
स्थानिक - शितासिमूल,
लैटिन - Ceiba plntandra Gaertn.k (=Eriodendrona pfractouosuns)

स्वरूप :- इसके मध्यम आकार के वृक्ष होते हैं। तना-मोटा, गोल, कुछ कण्टकित, पत्र-एकान्तर पीताभ हरित, पुष्प-श्वेतवर्ण के फल-आक के फल के समान, रूईदार, छोटानागपुर में सफेद जाति का सेमल कहीं-कहीं पाया जाता है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग गोंद, मूलत्वक् का प्रयोग विशेष करते है। गोंद एवं मूल का प्रयोग धातुदौर्वल्य, मासिकधर्म के अनियमित काल में, रक्तप्रबाहिका एवं अतिसार में करते हैं। मूल का उपयोग शीतल एवं मूत्रदाह तथा मधुमेह में क्वाथ एवं चूर्ण के रूप में करते हैं। सफेद जाति का सेमल विशेष उपयोगी मानते हैं।

विशेष :- श्वेतशाल्मली का उल्लेख संहिता एवं निघण्टु ग्रन्थों में नहीं मिलता है। शाल्मली रक्तपुष्पा मोचरस इति ख्याता।। इस नाम से वर्णन मिलता है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - शाल्मली, मोचरस,
हिन्दी - सेमलमुशली,
स्थानिक - लालसिमुल,
लैटिन - Salmalia malabarica Schoot.



स्वरूप :- इसके मध्यम से लेकर बड़े आकार के वृक्ष होते हैं। तना-मोटा, गोल, खर, कण्टकित, पर्ण-गुच्छेदार, एकान्तर, श्लक्ष्ण, पुष्प-रक्तवर्ण के फल का आकार आंख के फल के सदृश एवं रूईदार होते हैं। छोटानागपुर एव संथाल परगना में इसके वृक्ष सर्वत्र पाये जाते हैं। छोटे पौधों के मूल को सेमल मूशली कहते हैं। मूल क़न्द सदृश वल्य होते हैं।

प्रयोज्य अंग :- मूल-निर्यास, पुष्पकलिका।

स्थानिक प्रयोग :- कच्चे पुष्प कलिकाओं का शाक के रूप में प्रयोग करते हैं। आदिवासी लोग मूल एवं गोंद (मोचरस) का उपयोग रजोदोष, धातुदौर्बल्य एवं उदरशूल में करते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- रस-मधुर, कषाय, वीर्य-शीत, विपाक-मधुर, गुण-पिच्छिल, ग्राही, रोगोपयोग-अतिसार, प्रवाहिका, रक्तप्रदर, दाह एवं शुक्रक्षीणता में उपयोगी।

योग :- प्रदरनाशक घृत, मूशलीपाक (वृंहण)।
मात्रा :- मूलचूर्ण २ से ६ माशा, मोचरस (निर्यास) २ माशा।

मधुरः शाल्मलीकन्दो, मलसंग्रह रोधजित्।
शिशिरः पित्तदाहार्तिः, शोषसन्तापनाशनः।। "रा.नि."
मोचरसस्तु कषायः, कफवातहरो रसायनों योगात्।
वलपुष्ठ वर्ण वीर्य, प्रज्ञायुर्देहसिद्धिदोग्राही।। "रा.नि."

संस्कृत साहित्य में :- वाल्मिकीय रामायण में शाल्मली (सेमल) का उल्लेख अरण्यकाण्ड में रावण को सीता जी की फटकार के प्रसंग में पंपासर के अरण्य में, सुग्रीव-रावण युद्ध की उपमा, लक्ष्मण और इन्द्रजीत के उपमा के प्रसंग मे आता है।

श्लेष्मातककुल (BORAGINACEAE)

द्रव्य नाम :- स्थानिक - कुजरी, भैरो,

हिन्दी - चमरोर,
लैटिन - Ehretia laevis Roxb

स्वरूप :- मध्यम झाड़ीनुमा वृक्ष होते हैं। काण्डत्वक् श्वेताभ वर्ण का पर्ण-मसृण, अण्डाकार, दन्तुर, एकान्तर क्रम में। संथाल परगना में सर्वत्र सुलभ है।

स्थानिक प्रयोग :- पत्तियों का उपयोग मवेशियों के चारे के लिये किया जाता है। पके फल खाये जाते हैं। संथाली आदिवासी छाल का उपयोग मूत्रल के रूप में करते हैं।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - हस्तिशुण्डी, पानाबूटी,
लैटिन - Heliotropium indicum L.

स्वरूप :- तलोत्थ, बहुशाखीय क्षुपजाति की वनस्पति है। पर्ण-लट्वाकार, आयताकार, २ से ४ इंच लम्बे, पुष्प-मञ्जरी में हाथी सुंड की तरह टेढी होती है। पुष्प दो कतारों में और हल्के जामुनी रंग के होते हैं। इसके क्षुप सड़कों के किनारे सर्वत्र पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी मूल एवं पंचांग का उपयोग संग्राहक वेदनास्थापन, व्रणशोधन व रोपण के रूप में करते हैं। इस कुल की एक अन्य प्रजाति इस क्षेत्र में पाई जाती है। जिसे पानापोरी, पानबूटी (H. supnum L.) कहते हैं। यह मृदुशाखीय प्रसर जाती की वनस्पति है। रांची के पहाड़िया एवं मुण्डा आदिवासी मूल का उपयोग वेदनास्थापन, व्रणरोपक एवं व्रणशोधक केलिये करते हैं। इसके मूल को चबाने पर दांत लाल रंग के हो जाते हैं। इसलिये हसे दांतरंगा भी कहते हैं।

विशेष :- आनन्दकन्द में हस्तिशुण्डी का उल्लेख है। इसके पर्यावाची नामों में नागशुण्डी, महाशुण्डी, धूसरपत्रिका आदि पर्यायों का उल्लेख है। गुणों में यह कषाय, कटु, उष्ण एवं सन्निपातज्वर नाशक है।

यथा– हस्तिशुण्डी कटूष्णो स्यात्, सन्निपातज्वरापहा।। "आनन्दकन्दम्"

द्रव्य नाम :- संस्कृत - अधःपुष्पी,
संथाली - हठमुडया, हि. अंधाहुली,
लैटिन - Trichodesma indicum R. Br.

स्वरूप :- प्रसरणशील एवं तलोत्थ शाकीय वनस्पति है। पर्ण-अवृन्त, रेखाकार, आयताकार, प्रासवत् या लट्वाकार होते हैं। पुष्प-नीले या नील-लोहित, या श्वेताभवर्ण के होते हैं। पुष्प नीचे मुख होने के कारण अंधाहुली कहते हैं। इसकी अन्य जाति भी कहीं-कहीं इस क्षेत्र में पाई जाती है। जिसे T. zeylani cum R. Br. कहते हैं। इसे आदिवासी खरधार, कुकुरौड़ भी कहते हैं।

स्थानिक प्रायोग :- फौड़ा वैठाने के लिये मूलका उपयोग करते है। सान्धिशोथ में मूल को पीसकर लेप करते हैं। पंचाग क्वाथ का मूत्रल के रूप में प्रयोग करते हैं।

द्रब्य नाम :- संस्कुत - श्लेष्मातक
स्थानिक - कुच, हेमरम, लिसोड़ा,
लैटिन - Cordia dichotama Forst.

स्वरूप :- बहुशाखीय गुल्मक इस क्षेत्र में पाये जाते हैं। इसकी कई जातियाँ इस क्षेत्र में होती हैं। फल-पकने पर पीतवर्ण के एवं मांसल होते हैं। फल का रस रंग बनाने के काम में आता है।

स्थानिक प्रयोग :- प्रयोज्य अंग-कांण्ड, त्वक्, पत्र फल, रस-मधुर, कषाय, तिक्त, वीर्य-शीत, विपाक-कटु, गुण-केश्य, गुरू-स्निग्ध संकोचक, कफ-पित्तशामक।

रोगोपयोग :- कास, अतिसार, मूत्रकृच्छ्र, विसर्प, कुष्ठ, प्रतिस्श्याय, ज्वर एवं पूयमेह में उपयोगी।
मात्रा :- चूर्ण २ से ४ माशा।

श्योनाककुल (BIGEONIACEAE)

द्रब्य नाम :- संस्कृत - श्योनाक,
स्थानिक - सोनपात्ती, सोनपत्ता, सं. वनहट्टा,
लैटिन - Orxulim indicim Vent.

स्वरूप :- श्योनाक के छोटे-छोटे वृक्ष अधिकतम २५ फीट तक ऊँचे पाये जाते हैं। पत्तियाँ २ से ३ फीट तक लम्बी, पत्रक लम्बाग्र तथा अखण्ड होते हैं। पुष्प-बड़े मांसल जामुनीरंग के तथा मञ्जरियों में सवृन्त काण्डज क्रम से खिले रहते हैं। फलियाँ १ से ३ फीट लम्बी चिपटी, तलवार जैसी टेढ़ी होती है। बीज सपक्ष होते हैं। छाल मुलायम पीताभ हरित होती है। इसके वृक्ष इस क्षेत्र के सभी जंगली भागों में प्रायः नदीनालों के किनारे या पहाड़ियों पर पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी मूलत्वक् का उपयोग उत्तमस्वेद-जनन, वेदनास्थापन, व्रणरोपण एवं शोथघ्न के रूप में करते हैं। एक माशा मूलत्वक् चूर्ण को दूध में मिलाकर पिलाने से मिर्गी का दौरा कम हो जाता है। कर्णमूलशोथ में इसके बीज और इरिमेद एक साथ पीसकर लेप करने एवं पीने से लाभ होता है।

आयुर्वेदीय उपयोग :- यह दशमूल घटक की मुख्य औषधि है। रस-तिक्त कषाय, वीर्य-शीत, विपाक-कटु, गुण-ग्राही, स्वेदल, आमपाचक, कण्डूघ्न, त्रिदोषहर, रोगोपयोग-कास, सन्निपाशूलज्वर, अतिसार, आमवात, कर्णशूल, प्रसूतिजन्य दौर्बल्य में उपयोगी। शोथ तथा वातप्रधान रोगों में श्योनाक मूल देते हैं।

योग :- दशमूल तैल, दशमूलारिष्ठ।

विशेष :- अरलू एवं श्योनाक दोनों भिन्न-भिन्न द्रब्य हैं। कतिपय निघण्टुकारों ने श्योनाक का पर्याय अरलू माना है। वास्तव में अरलू से Ailanthus exclsa Roxb. का प्रयोग करना चाहिये। जिसे घोड़ानीम कहते हैं। यह तिक्त, कषाय, दीपन, कृमिघ्न, कुष्ठनाशक तथा आमपाचन है।



द्रब्य नाम :- संस्कृत - पाटला,
स्थानिक - कोल-हुसी,
संथाल - पाडर, पाद्रुली,
लैटिन - Steneospermum suaveolens DC.

स्वरूप :- पाढल के मध्यम ऊँचाई के सुन्दर वृक्ष पाये जाते हैं। पर्ण-पक्षवत्, सदल, पत्रक, संख्या में ५ से ९ इंच चौड़े, मृदुरोमश, खुरदरे और तीक्ष्ण दन्तुर होते हैं। पुष्प सुगन्धित लाल रंग एवं भीतर से पीली रेखाओं से युक्त होते हैं। फल-गोल घेरे वाला और पृष्ठपर विन्दुकित होता है। बीज कार्कसद्यश सपक्ष, छाल चिकनी धूसरवर्ण की काटने पर हलके पीले वर्ण की होती है। इस क्षेत्र के सभी पहाड़ी घाटियों में इसके वृक्ष पाये जाते हैं। अन्य प्रजाति भी यहाँ पायी जाती है जिसे S. tetragonum कहते हैं।

स्थानिक उपयोग :- आदिवासी छाल, पुष्प फल का चिकित्सा में उपयोग करते है। दशमूलगण का एक प्रसिद्ध द्रब्य है। पुष्प का प्रयोग वाजीकर, पौष्टिक के रूप में आदिवासी करते हैं। बीजों की माला बनाकर शिरःशूल एवं अधकपारी में धारण करते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- रस-तिक्त, कषाय, वीर्य-समशीतोष्ण, विपाक-मधुर, गुण-मूत्रल, बल्य, त्रिदोषशमन, रोगोपयोग-वमन शोथ, हिक्का, तृष्णा, पित्तातिसार, रक्तापित्त में उपयोगी, सित एवं रक्तपाटला दो भेद निघण्टुकारों नें निर्दिष्ठ किये हैं।

योग :- दशमूलारिष्ठ, दशमूलतैल, दशमूलघटक।

विशेष :- यह मस्तिष्क के नाड़ी केन्द्रो पर उपशामक की क्रिया करता है।
२. सुश्रुत एवं चरक ने इस औषध को सविष निंवारण में विशेष उपयोगी माना गया है।
३. पुष्पों में शर्करा और प्रोटीन काफी मात्रा में मिलता है।

संस्कृत साहित्य में :- संस्कृत साहित्य में पाटला का वर्णन बाल्मिकीय रामायण के बालकाण्ड में विश्वामित्र के साथ राम के बन जाते समय मार्ग में पाटला वृक्ष का मिलना, अरण्यकाण्ड के पंचवटी में पाटलावृक्ष का होना पंपासर के वन में एवं पंपा के पर्वतीय क्षेत्र के पृष्ठभाग में पाटला में वृक्षों का मिलना आदि प्रसंग इस वृक्ष के सन्दर्भ में मिलते हैं। इसी प्रकार रघुवंश नामक महाकाव्य में मनोहरगन्ध में पाटलापुष्पों का उल्लेख ग्रीष्मऋतु में पाटला पुष्प का विकसित होना आदि प्रसंग इस वृक्ष के विषय में मिलते हैं।

यथा – मनोजगन्ध सहकार भंगे पुरारशीधुं नवपाटलं च।
सम्बध्नता कामीजनेषु दोषाः सर्वेनिदाघा बधिनाप्रमिष्ठाः।। "रघु. सं. १६"

एवं

सुभग सलिलावगाहाः पाटलसंसर्गि सुरभिः वनवाताः।। "अभिज्ञान"

ग्रीष्मकाल में पुष्पित पाटला के पुष्पों से प्रवाहित पवन बहुत मनोहारी है। नयें पाटला के पुष्पों को संचय करने वाले ग्रीष्म ने कामी पुरूषों के सब दुःख दूर कर दिये हैं। पाटलापुष्पों से साद्यश्यता की है।

द्रब्या नाम :- संस्कृत - रोहीतक,
स्थानिक - रोहेड़ा,
लैटिन - Tecomella undulata Scem

स्वरूप :- रोहेड़ा के गुल्म जाति के छोटे वृक्ष होते हैं। पत्तियाँ लगभग ६ इंच लम्बी, आयताकार, कुण्ठिताग्र, अखण्ड, लहरदार धारवाली होती हैं। पुष्प छोटे शाखाओं के अग्रभाग पर काण्डज क्रम में और नारंग वर्ण के होते हैं। पलामू आदि क्षेत्रों में कहीं-कहीं इसके गुल्म पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी छाल का उपयोग सारक-यकृत प्लीहा के रोगों, गुल्म एवं उदर रोगों में क्वाथ विधि से देते हैं।

आयुर्वेदिय औषध उपयोग :- रस-कषाय, कटु, वीर्य-शीत, विपाक-कटु, गुण-सारक, रक्तशोधक, स्निग्ध, कफपित्तशामक, यकृत-प्लीहारोग, एवं कामला, पाण्डु, प्रदर आदि में उपयोगी, काण्डत्वक् चूर्ण से चाय बनाई जाती है।

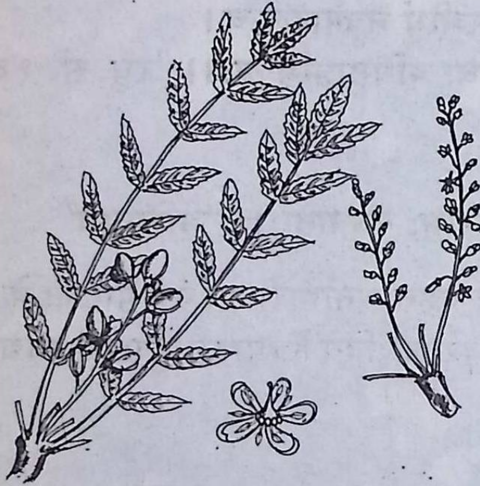
मात्रा :- चूर्ण २ से ३ माशा, क्वाथ - एक से दो तोला।

योग :- रोहितकघृत (उदररोग) रोहितकारिष्ठ।

विशेष :- आधिकतर लेखकों ने Amoora rohit aka को शास्त्रीय रोहितक लिखा है। इसके पेड़

भी रांची, सिंगभूमि में पाये जाते हैं। असरिन एवं हो जाति के आदिवासी इसे सिकरू, सिकरून, पीतराज कहते हैं। इसके वृक्ष सदा हरित होते हैं।

गुग्गुलुकुल (BURSERACEAE)



द्रब्य नाम :- संस्कृत - शल्लकी (अगिनिझाड़)
स्थानिक - सालम, सालंगा, कुंदरू
लैटिन - Boswellia serrata Roxb.

स्वरूप :- इसके ऊँचे वृक्ष होते हैं। छाल हरित, रक्ताभ श्वेत या भूरे रंग की होती है और कागज की तरह पतली-पतली परतों में छूटती है। पर्ण-सदल, पतनशील, पत्रक-प्रासवत्, लट्वाकार एवं दन्तुर होते हैं। पुष्प श्वेताभ मञ्जरियों में खिलते हैं। वृक्ष से पीताभ पारदर्शक गोंद निकलता है जिसे भारतीय लोवान या कुंन्दरू या शलई-गुग्गुलु कहते हैं। विदेशी लोवान B. bloribunds नामक वृक्ष का गोंद है। इसके वृक्ष संथालपरगना एव छोटानागपुर के शुष्क पहाड़ियों में सर्वत्र पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी गोंद (निर्यास) का उपयोग धूपन सामग्री के रूप में भूतवाधाहर के रूप में करते हैं मुण्डाजाति के आदिवासी निर्यास का उपयोग परिवार नियोजन, ज्वर, उदरशूल, अतिसार, क्षय एवं रक्तप्रवाहिका में करते हैं।

विशेष :- संहिता ग्रन्थों में शल्लकी, कुन्दुरूक, गजाशना आदि पर्याय इस औषध के मिलते हैं। निघण्टु ग्रन्थों में कुन्दुरू नाम मिलता है। बाजार में शलई गोंद के या शलई-गुग्गुलु के नाम से इस वृक्ष का निर्यास है जिसका प्रयोग आमवात, सन्धिवात में किया जाता है। डल्हण ने अपनी टीका में कुन्दुरूक नामक द्रब्य से शल्लकीचोप ग्रहण करने का निर्देश मिया है।

यथा – कुन्दुरूः स्यात्कुन्दुरूकः शिखरी गुन्द्र गोपुरः।
सुकुन्द्रतीक्ष्णगन्धश्च पालिन्दो भीषणोबली।।
कुन्दुरूः कटुकस्तिक्तो वात श्लेष्मामयापहाः।
पाने लेपेच शिशिरः प्रदरामय शान्ति कृत्।। "धन्वन्तरिनिघण्टु"

द्रव्य नाम :- हिन्दी - चोगर,
स्थानिक - अरमु, केकड़,
लैटिन - Garuga pinnata Roxb.

स्वरूप :- इसके मध्यम ऊँचाई के वृक्ष पाये जाते हैं। पर्ण-पक्षवत् डेढ़ फीट लम्बे, पत्रक ८ से १६ जोड़े में, लट्वाकार, प्रासवत् एवं गोलदन्तुर होते हैं। इसके वृक्ष इस क्षेत्र के उष्ण भागों में सर्वत्र पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- फल-शीतल और पाचक है। छाल का उपयोग नेत्रबिन्दु के रूप में नेत्रामिष्यन्द एवं आखों के धुंधलापना को दूर करने में किया जाता है। आदिवासी लोग पत्र स्वरस को मधु के साथ मिलाकर दमा में प्रयोग करते हैं।

वास्तूक कुल (CHENOPODIACEAE)

द्रव्य नाम :- संस्कृत - उपोदिका,
हिन्दी - पोईशाक,
लैटिन - Basella rubra Linn.

स्वरूप :- यह आरोही लता जाति की वनस्पति है। काण्ड मृदु बहुशाखीय, पर्ण-मांसल, मसृण, एकान्तर, पुष्प कोणीय, यह आरोही लता प्रायः घरों के आसपास एवं उद्यानों में पाई जाती है।

स्थानिक उपयोग :- आदिवासी इसकी पतियों का शाक बनाकर खाते हैं। पत्तियों में सारक गुण पाया जाता है। मूत्रल एवं सोजाक आदि में भी इसके पत्तों का उपयोग करते हैं। इसकी अन्य प्रजाति B. alba का भी उपयोग किया जाता है।

आयुर्वेदीय उपयोग :- चरक एवं सुश्रुत संहिता के कतिपय स्थलों पर उपोदिका का उल्लेख मिलता है। राजनिघणटुकार ने इसे कषाय, उष्ण, कटु, मधुर, रोचक एवं विष्ठम्भी माना है।

यथा – उपोदकी कषायोष्णा, कटुका मधुरा च सा।
निंद्रालस्यकरी रूच्या, विष्ठम्भश्लेष्मकारिणी।। "शा.नि."

विशेष :- लेखक के विचार से क्षुद्रउपोदकी से Basella alba का प्रयोग करना चाहिये जो कि गुण धर्मो में उपोदकी का भी तीसराभेद राजनिघण्टुकार ने निर्दिष्ठ किया है। जो कि गुणो में कटु उष्ण, तिक्त एवं रोचक है।

यथा – उपोदकी पराक्षुद्रा सूक्ष्मपत्रा तुमण्डपी।
रसवीर्य विपाकेषु सद्यशी पूर्वयास्त्वर्यम्।।

उपोदकी तृतीया च वनजा वनजाह्वया,
वनजोपोकदी तिक्ता, कटूष्णा रोचनी च ते।। "राज. नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - गुलुच्छकन्द,
हिन्दी - चुकुन्दर,
लैटिन - Beta vulagris L.

स्वरूप :- यह शाकीय जाती की वनस्पति है। पत्र पालक सद्यश मूल कन्दिल रक्तवर्ण का होता है। वागों में प्रायः इसकी खेती की जाती है। यह यूरोप का आदिवासी पौधा है। सन १९५८ में पहले भारतीय वनस्पति उद्यान हाड़वा में यह रोपित किया गया।

उपयोग :- मूल कन्द का भोजन सामग्री में सलाद के रूप में प्रयोग किया जाता है। बीज का उपयोग शीतल एवं ज्वरघ्न के रूप में किया जाता है।

यथा – गुलुच्छकन्दो मधुरो, सुशीतलो वृष्यप्रदरस्तर्पणदाहनाशनः।। "राजनिघण्टु"

द्रव्य नाम :- संस्कृत - वास्तूक,
स्थानिक - वथुआ, वथुआ-अड़ा,
लेटिन - Chenopodium album L.

स्वरूप :- यह शाकीय जाति की वनस्पति है। यह ग्रामीणों का प्रसिद्ध शाक है जो प्रायः जाड़ो में खेतों में पाया जाता है। ग्रामीण आदिवासी लोग दस्तावर, उदरविकारों में इस शाक का विशेष प्रयोग करते हैं। आयुर्वेद में पथ्य शाकों में बथुआ शाक का विशेष महत्व है।

यथा – वास्तुकं सु मधुरं सुशीतलं, क्षारमीषद्मलं त्रिदोषजित्।
रोचनं ज्वरहरं महार्शसां नाशनं च, मलमूत्रकशुद्धिकृत्।। "ध.नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - सुगन्धवास्तूक, चिल्ली,
स्थानिक - जंगली वाथु,
लैटिन - Chenopodium ambrosioides Linn.

स्वरूप :- यह सुगन्धित क्षुप जाति की तलोत्थ वनस्पति है। काण्ड बहुशाखीय २ से ४ फीट ऊँचा, ग्रन्थिरोमश, पत्तियाँ आयताकार, प्रसावत, कुण्ठिताग्र एवं दन्तुर होती है। पुष्प-असंख्य, सूक्ष्म, हरित लम्बी मञ्जरियों में गुच्छवद्ध क्रम में निकलते हैं। इसके क्षुप रांची छोटानागपुर, संथालपरगना में सर्वत्र पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग पत्ती का उपयोग कालीमिर्च के साथ गोली बनाकर अर्श (बवासीर) में प्रयोग करते हैं। बीजतैल उत्तम कृमिघ्न माना जाता है। अधिक मात्रा में प्रयोग करने

से विषैला प्रभाव होता है।

यथा -चिल्ली वास्तुक तुल्या च स क्षारा श्लेष्म पित्तनुत्।
प्रमेह मूत्रकृच्छ्रघ्नी, पथ्या च रूचिकारिणी।। "रा.मू."

द्रब्य नाम :- संस्कृत - पालंकी,
हिन्दी - पालकशाक,
लैटिन - Spinacia oleracea Linn.

स्वरूप :- यह एक वर्षायु शाकीय वनस्पति है। प्रायः इसकी खेती की जाती है। पालक का शाक अधिकतर हरी सब्जी के रूप में प्रयोग करते हैं।

विशेष :- चरक एवं सुश्रुत में पालंकी शाक रूप मे उल्लेख मिलता है। गुणों की द्यष्टि से यह मधुर, शीत और सर है, बीज सारक एवं यकृत विकार तथा पीलिया में उपयोगी है। मूत्रल प्रभाव भी इसके पत्र एवं बीजों में देखा गया है।

अमलतासकुल LEGUININOSAE

द्रब्य नाम :- संस्कृत - आरग्वध,
हिन्दी - अमलतास, स्थानिक - कोल-हारि,
संथाल - मिरजु, वाहा, सोनारि, सोनरकी,
लैटिन - Cassia fistula L.



स्वरूप :- अमलतास के वृक्ष इस क्षेत्र में सर्वत्र पाये जाते हैं। पर्ण-समपक्षवत्, पत्रक-लट्वाकार-प्रासवत् या लट्वाकार, आयताकार एवं लम्बाग्र होते हैं। इसकी पीले पुष्पों की मञ्जरियों नीचे की ओर लटकी हुई रहती हैं। फल-मञ्जा, मूल छाल और पत्तियों का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है। अस्थिभग्न एवं सोजाक में उपयोग करते हैं।

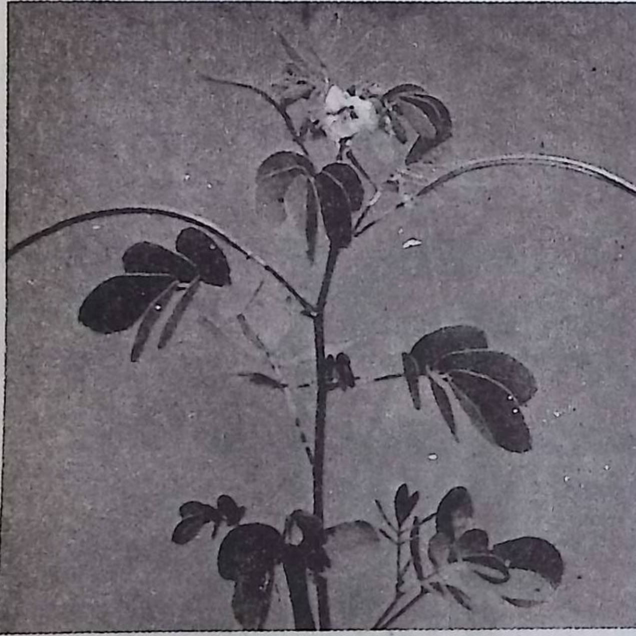
स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग फलमंज्जा का क्वाथ मल सारक के रूप में प्रयोग करते हैं। पत्र एवं छाल का उपयोग चमड़ी के रोगों में क्वाथ विधि से तैयार कर प्रयोग करते हैं। फूलों का गुलुकन्द बनाकर उपयोग किया जाता है।

आयुर्वेदीय प्रयोग :- रस-मधुर, तिक्त, वीर्य-शीत, विपाक-कटु, गुण-गुरू, मृदुरेचक, कफपित्तशामक,

रोगोपयोग-कुष्ठ, कण्डु, ज्वर, त्वचारोग, हृदयरोग, कर्णरोग, वालरोग एवं प्रसूता विकारों में उपयोगी बीज वामकगुणों वाले होते हैं। बीजों का चूर्ण वमन के लिये दिया जाता है।

योग :- आरग्वधादिक्वाथ (विवन्ध), अमलतासादिअवलेह (मंदाग्नि), अमलतासारिष्ठ (उदर रोगों मे)।

संस्कृत साहित्य में अमलतास :- महाकवि कालिदास ने अमलतास का उल्लेख कर्णिकार नामक वृक्ष विशेष से किया है। वसन्तकालीन पुष्पोद्गम काल के रूप में इसका उल्लेख है। इन पुष्पों का रंग सुवर्ण सद्यश पीत वर्ण का होने से पार्वती इन पुष्पों को धारण करती है। पार्वती के काले केशों में गुंथे हुये ताजे कर्णिकार पुष्पों की शोभा एवं कानों में लटके हुये पुष्पों से पार्वती शंकर को प्रणाम करती हैं। वाल्मीकीय रामायण के अरण्यकाण्ड में पंचवटी के पास, पंपासर से पास, लंका में हनुमान द्वारा इस वृक्ष को देखना आदि कतिपय प्रसंगों में कर्णिकार के पुष्पों का उल्लेख मिलता है।



द्रब्य नाम :- संस्कृत - चक्रमर्द, प्रपुन्नाड,
हिन्दी - चकवड़, पंवाड़बीज,
लैटिन - Cassia tora Linn.

स्वरूप :- इसके स्वावलम्बी क्षुप ४ फीट तक ऊँचे होते हैं। पर्ण-समपक्षवत्, पत्रक तीन जोड़ों में, अभिलट्वाकार, गोल, कुण्डित, नताग्र, एवं पत्रों को मसलने पर कुछ दुर्गन्धी होते है। पुष्प-पीत पर्ण के पत्रकोणीये होते हैं। फली-लम्बी, पतली, गोलाई लिये हुये अनेकों बीजों वाली होती है। वर्षात के बाद सड़को के आपपास इसके क्षुप सर्वत्र पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी बीज एवं पत्रों का उपयोग चर्मरोगों में करते है। दाद-खुजली में पत्तो एवं बीज का प्रयोग मलहम में करते हैं। आदिवासी लोग त्वचा के विकारों में पत्रशाक के रूप में भी इसका उपयोग करते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- चरक ने इसे मधुर, शीत एवं गुरू गुणों वाला लिखा है। रस-कुटु, मधुर, वीर्य-उष्ण, विपाक-कटु, गुण-रूक्ष, लघु, वात-कफघ्न, पित्तप्रकोप, रोगोपयोग-दद्रु, कण्डु विष, गुल्म, कास, कृमि श्वास, कुष्ठ आदि रोगो में उपयोगी।

मात्रा :- चूर्ण एक से दो माशा।

विशेष :- पत्तियों में सनाय सद्यश गुण पाये जाते हैं। बीजो का उपयोग कौफी के रूप में किया जाता है।

द्रब्य नाम :- संस्कृत - आवर्त्तकी, चर्मरंगा,
हिन्दी - तरवड़,
लैटिन - Cassia auriculatata L.

स्वरूप :- प्रथम महायुद्ध के समय इसके पौधों का रोपण भारत में किया गया। इस के पौध इस क्षेत्र में लगाये हुये पाये जाते हैं। पुष्प पीत पर्ण के, छाल को पानी में घिसने पर रंग देती है। इसी कारण चमड़े को रंगने में छाल का उपयोग किया जाता है। चिकित्सा में पुष्प, बीज तथा पंचाग का उपयोग किया जाता है।

आयुर्वेदीय उपयेग :- सुश्रुत संहिता उत्तरतंत्र में आवर्त्तकी का उल्लेख है। आहुल एवं आवल के पर्यायों से भी इस वनस्पति का उल्लेख संहिताकारों ने किया है। कुछ विद्वानो ने मरोड़फली को आवर्त्तकी माना है। वास्तव में मरोड़फली शास्त्रीय आवर्त्तनी (Helictens isora) है। यह कषाय, तिक्त, शीतल एवं पित्तनाशक है। कृमि, कुष्ठ नेत्ररोग एवं प्रमेह में उपयोगी है।

यथा - आवर्त्तकी कषायाम्ला, शीतला पित्तहारिणी।
रक्तपित्तातिसारघ्नी, कृमिकुष्ठ विनाशिनि।।
नेत्ररोगे प्रमेहे च, तत्पुष्पं-प्रयुज्यते।। "रा-नि."

द्रब्य नाम :- संस्कृत - चक्षुष्या,
हिन्दी - चाकसू,
लैटिन - Cassia absus L.

स्वरूप :- यह परिसृत क्षुप जाति की वनस्पति है। काण्ड-मृदु, रोमश, पत्रक-जोड़ों में लट्वाकार, पुष्प-पीतवर्ण के सवृन्त मञ्जरी में। फली चपटी एवं काले बीज वाली होती है। यह छोटानागपुर के उसरभूमि एवं पथरीले जंगलों में सर्वत्र पाया जाता है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी बीजों का उपयोग चर्मरोग में करते हैं। यह संग्राहक और चक्षुष्य है।

आयुर्वेदीय उपयोग :- कषाय, कटु-शीत, चक्षुष्य, कण्डू एवं व्रणदोषनाशक।

यथा - कुलत्थिकातुचक्षुष्या, कषाय कटुकाहिमा।
विष विस्फोटकण्डूति व्रणदोष निवर्हिणी।। "रा.नि."

द्रब्य नाम :- सस्कृत - पत्तंग,
हिन्दी - बकम,
लैटिन - Caesalpinia sappan L.

स्वरूप :- पत्तंग के छोटे-छोटे वृक्ष, रांची क्षेत्र में लगाये हुये पाये जाते हैं। काण्ड़ में कांटे छोटे और कम होते हैं। पत्रक १० से २० जोड़े में पाये जाते हैं। पुष्प पीले रंग के फली ३ से ४ इंच लम्बी होती है।

औषध उपयोग :- काष्ठ चूर्ण का उपयोग रजोदोष में किया जाता है। चरक, सुश्रुत संहिता में पत्तंग का उल्लेख चिकित्सा स्थान २६ एवं सुश्रुत में सूत्रस्थान तथा चिकित्सा स्थान १८, २१ में पाठ आया है। आजकल रक्तचन्दन के स्थान पर इसकी मिलावट की जाती है जो कि अशुद्ध है।

मुख्ययोग-पत्रगांसव (स्त्रीरोगाधिकार)।

द्रब्य नाम :- स्थानिक - गुलतुर्रा, कृष्णचूड़ा,
लैटिन - Poinciana pulcherrima Linn. (= Caesalpinia pulcherrima)

स्वरूप :- इसके बहुशाखीय गुल्म पाये जाते हैं। काण्ड पर कुछ कांटे पाये जाते हैं। ऊपर की शाखाओ पर कांटे होते हैं। पत्रक ८से १० की संख्या में जोड़ों में होते हैं। इसके गुल्म रांची, छोटानागपुर क्षेत्र में बागों में लगाये हुये पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- छाल का उपयोग आर्तवजनन एवं स्त्रंसन के रूप में किया जाता है।

औषधीय उपयोग :- पत्र उत्तेजक, विरेचक, छाल-वामक, गर्भस्त्रावकर पुष्प-ज्वरघ्न, कास-श्वासघ्न।

द्रव्यनाम :- स्थानिक - दिवी - दिवी,
लैटिन - Caesalpinia Coriaria Willd.

स्वरूप :- इसके छोटे एवं मध्यम ऊँचाई के वृक्ष पाये जाते हैं। यह विदेशी जाति का पौधा है। बागों में लगाया हुआ पाया जाता है। पर्ण-द्विपक्षवत्, पत्रक-बहुत छोटे, पुष्प छोटे, सुगन्धित, श्वेताभ, फली कुणुलित (मरोड़ी हुई जैसी) होती है।

औषध उपयोग :- छाल और फली का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है। फली में टैनीन का अंश अधिक होता है। इसलिये चमड़ा रंगने के काम में इसका उपयोग किया जाता है। फली का उपयोग विषमज्वर में एवं छाल ग्राही होती है।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - वाकेरी, उमुलकुची,
लैटिन - Caesalpinia digyna Rott.

स्वरूप :- इसके बड़े और सशाखीय गुल्म पाये जाते हैं। शाखायें आरोहरणशील और कांटेदार होती हैं। पत्रदण्ड प्रायः ५ से ८ इंच लम्बे रोमश, और उपपक्षों के मूल के पास कांटों से युक्त होते हैं। पत्रक प्रायः ७ से १० जोड़े आयताकार और बहुत पास-पास होते हैं। पुष्प-पीत वर्ण के फली-लम्बी अनेकों बीज वाली होती है। चम्पारन एवं पूर्णियाँ के जलप्राय पहाड़ी स्थानों पर इसके गुल्म पाये जाते हैं।

औषध उपयोग :- पत्ती और मूल का उपयोग चिकित्सा में किया जाता है। यह शोधन, स्तम्भन, बल्य और व्रणरोपक माना गया है। ग्रामीण लोग भगन्दर, नाड़ीव्रण एवं नासूर में इसका उपयोग करते हैं। अधिक मात्रा में प्रयोग करने पर नशा पैदा करता है। मूल का उपयोग मधुमेह में किया जाता है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - कुवेराक्षी, लताकरंज,
स्थानिक - कांटाकरंज, वघनी,
लैटिन - Caesalpinia Crista Linn.

स्वरूप :- इसके बहुशाखीय सघन एवं विस्तृत गुल्म होते हैं। शाखायें आरोहणशील एवं तीक्ष्ण कांटों से युक्त होती हैं। पत्रक-आयताकार लट्वाकार एवं कुष्ठिताग्र होते हैं। पुष्प पीताभ वर्ण के एवं मञ्जरियों में खिलते हैं। फली-चौड़ी-आयताकार, २ से ३ इंच लम्बी, १-२ बीज वाली और ऊपर से कांटों से ढ़की रहती है। बीज प्रायः धूम्रवर्ण के गोल एवं कठोर आवरण वाला होता है। इसके पौध खेतों के बाड़ों पर छोटानागपुर एवं संथालपरगना के सभी स्थानों पर पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग मूल, पत्ती एवं बीज का चिकित्सा में उपयोग करते हैं। फलों का उपयोग विषमज्वर में करते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- रस-तिक्त, कषाय, वीर्य-उष्ण, विपाक-कटु, गुण-तीक्ष्ण, कृमिघ्न, पित्त, कफशामक, रोगोपयोग-विषमज्वर, अर्श व्रण, प्रमेह, कृमि-श्वेतप्रदर, त्वक्रोग, यकृतरोग, शोध एवं उदरशूल में उपयोगी।

योग :- करञ्जारिष्ठ - (यकृतवृद्धि में)
जव्रनाशकचूर्ण - (मलेरिया में)
उदरनाशकचूर्ण - (उदररोग में)

मात्रा :- अरिष्ठ १ से २ तोला, चूर्ण २ से ३ ग्राम, जल या मधु के साथ।

विशेष :- इसके बीजों में क्वीनेन के समान तत्व पाये जाते हैं यह मलेरिया में गुणकारी है। पत्तियों का उपयोग त्वचा के रोगों में लाभदायक है।

यथा - तद्बीजन्तु कुबेराक्ष, तिक्त मुष्ण प्रभावतः।
विषमज्वर हन्तस्यात्, यकृच्छूलनिवारणम्।। "प्रिय. नि."

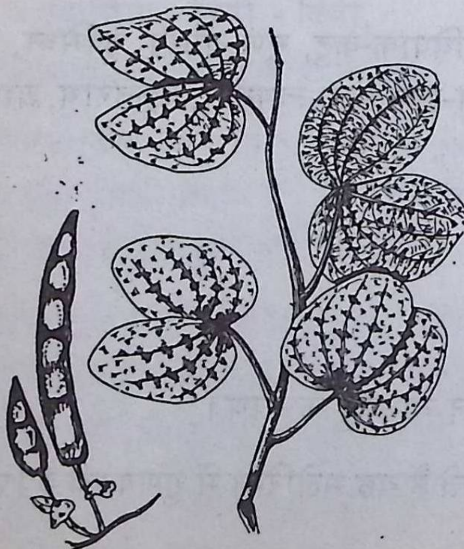
द्रव्यनाम :- संस्कृत - कासमर्द,
हिन्दी - कसौदी,
लैटिन - Cassia occidentalis L.

स्वरूप :- इसके २ से ४ फीट ऊँचे क्षुप होते हैं। पत्तियाँ ६ से १२ इंच लम्बी पत्रक ४ से ५ जोड़ो में लट्वाकार, आयताकार एवं लम्बाग्र होते हैं। पुष्प-पीतवर्ण के सवृन्त, काण्डज मञ्जरियों में खिलते हैं। बरसात के दिनों इसके क्षुप समूह रूप में पाये जाते हैं। पौधों में दुर्गन्धि होती है।

स्थानिकप्रयोग :- आदिवासी लोग पत्ती, मूल एवं बीजों का चिकित्सा में उपयोग करते हैं। बीजों का उपयोग कासघ्न के रूप में किया जाता है। इसकी अन्य प्रजाति भी इस क्षेत्र में पाई जाती है। जिसे Cassia shophera कहते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- शाकीय द्रव्यों में इस वनस्पति का उल्लेख मिलता है। चरक ने इसे ग्राही एवं त्रिदोषघ्न माना है। सुश्रुत ने पाचन एवं कष्ठशोधन माना है। रस-तिक्त, मधुर, वीर्य-उष्ण, विपाक-कटु, गुण-पाचन, कण्ठशोधन, मूत्रजनन, कासघ्न, रोगोपयोग-अजीर्ण, कास, हिक्का, श्वास, कुक्करकास, जलोदर में उपयोगी।

विशेष :- पत्तों में सनाय सदृश विशेष गुण पाया जाता है। बीजों में भी विरेचन तत्व पाया जाता है।



द्रव्यनाम :- संस्कृत - कांचनार,
हिन्दी - कचनार,
स्थानिक - कोईनार, कंडोल,
लैटिन - Bauhinia variegata L.

स्वरूप :- कचनार के मध्यम ऊँचाई के वृक्ष पाये जाते हैं। पत्र द्विखण्डित पुष्प बड़े, श्वेत एवं गुलाबी रंग के चित्रित होते हैं। कलियाँ चपटी एवं रक्ताभवर्ण की होती हैं। इसके वृक्ष प्रायः शुंष्क एवं पथरीली पहाड़ियों पर सर्वत्र पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- छाल, पुष्प एवं पुष्प कलिका का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है।

ग्रामीण लोग छाल क्वाथ का उपयोग गलगण्ड (घेघा) में करते हैं। पुष्पकलिका का प्रयोग शाक के रूप में किया जाता है। पुष्प वर्णभेद के श्वेत, पीत, रक्त तीन प्रकार का होता है।

आयुर्वेदीय उपयोग :- रस-कषाय, मधुर, वीर्य-शीत, विपाक-मधुर, गुण-रूक्ष, ग्राही, रक्तशोधक, कफ-पित्तशामक, रोगोपयोग- गण्डमाला, आन्त्र-कृमि, दन्तरोग, यकृतविकार में उपयोगी।

योग :- काञ्चारगुगुलू, (गण्डमाला, अपची)
चरक एवं सुश्रत संहिता के शाकीय द्रव्यों में पुष्प एवं नवीन पत्रों का प्रयोग कर्वुदार के नाम से मिलता है। चरक सू.अ.९९ एवं सुश्रुत सु.अ. ४६"।

द्रव्यनाम :- स्थानिक - कठमहली, को. कैमू, कटहुल,
लैटिन - Bauhinia racemosa Lamk.

स्वरूप :- इसके छोटे वृक्ष होते हैं। पत्तियाँ छोटी, खण्डित, पुष्प श्वेताभ छोटे, सवृन्त काण्डज मञ्जरी में खिलते हैं। प्रान्त के मध्य दक्षिणी भागों के जंगलों में इसके वृक्ष पाये जाते हैं। छाल का उपयोग आदिवासी चिकित्सा में करते हैं।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - अश्मन्तक, (विचारणीय)
स्थानिक - लावा, या. साहुल, संझिझिट,
लैटिन - Bauhimia malabarica Roxb.

स्वरूप :- इसके छोटे-छोटे वृक्ष होते हैं। पत्तियाँ गहरे हरे रंग की अधः पृष्ठश्वेताभ एवं चिकनी होती है। पुष्प-श्वेताभ किंचित अनियताकार वृन्त-पतले और रोमश और समस्त काण्डज सशाख व्यूह में रहते हैं। इसकी पत्तियाँ स्वाद में कुछ खट्टी होती हैं। इसके पौधे इस क्षेत्र में सर्वत्र पाये जाते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- संहिता ग्रन्थों में अश्मन्तक का प्रयोग कतिपय स्थलों पर आया है। यह संदिग्ध वनस्पति है। अधिकतर विद्वानों ने कोविदार की प्रजाति को अश्मन्तक माना है।

अश्मन्तकः स्थान्मधुर कषायः,
सु शीतलः पित्तहरः प्रमेहजित्।
विदाह तृष्णा विषम ज्वरापही,
विषर्ति विच्छर्दिहरश्च भूतजित्।। "शा.नि."

फलं स्वादु हिमं रूक्षं, कषायं लेखनं गुरू।
संग्राहि कफवातघ्न, विवन्धाध्मान कारकम्।। कै.नि."

चरक के तीन क्षरी वृक्षों के अन्तर्गत अश्मन्तक का पाठ दिया है। यथा - वमने अश्मतकं विद्यात्, धन्वन्तरि निघण्टु में युग्मपत्र, मालु-कापर्ण, आदि पार्याय आये हैं। अश्मन्तक कर्वुदारः, कोविदार, अम्लपात, अम्लोटकसद्यश वृक्षः आदि कतिपय प्रसंग अश्मन्तक के मिलते हैं।



द्रव्यनाम :- कोविदार, कचनार,
स्थानिक - कोइलार, सिंग-अड़ा, सिंहरा,
लैटिन - Bauhinia purpurca L.

स्वरूप :- इसके मध्यम ऊँचाई के वृक्ष होते हैं। पत्र-खण्डित, आयताकार, ५ से ७ इंच लम्बें एवं खण्ड के अग्र भाग कोणीय होते हैं। पुष्प-नीलारूण होते हैं। इस क्षेत्र के सभी स्थानों में गांवों के आस-पास इसके वृक्ष लगाये हुये पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- कोमल पत्तियों एवं पुष्प कलिकाओं का शाक बनाकर खाते हैं। छाल का चिकित्सा में प्रयोग किया जाता है। रक्तप्रदर में ग्रामीण महिलायें इसके श्रृतशीत कषाय का प्रयोग करते हैं।

आयुर्वेदीय प्रयोग :- कषाय, दीपन, संग्राही, व्रणरोपक, मूत्रकृच्छ्रं एवं गण्डमाला में उपयोगी।

कोविदारः कषायः स्यात् संग्राही व्रणरोपणः।
दीपनः कफ वातघ्नो, मूत्रकृच्छ्रं निवर्हणः।।
गण्डमाला गुदभ्रंश, व्रणकुष्ठकृमीन् जयेत्।। कै.नि."

द्रव्यनाम :- संस्कृत - मालायु, मालू,
स्थानिक - मालझन,
संथाली - जोलमर, था. महुलन, महुलान,
लैटिन - Bahuhinia Vahlii Wofa.

स्वरूप :- इसकी बहु विस्तृत आरोही लताये होती हैं। जिनमें प्रायः पत्राभिमुखी कुण्डलित तन्तु होते हैं। पत्र द्विखण्डित, २ से ८ इंच ब्यास में दोनों खण्ड गहराई में कटे हुये होते हैं। पुष्प-श्वेताभ हलके पीले रंग के गुच्छों में खिलते हैं। फली-चपटी, कठोर, रक्ताभ एवं रोमश होती है। इसकी लतायें छोटानागपुर संथालपरगना के जंगलों में सर्वत्र विशेषकर पहाड़ियों एवं पथरीले नालों में

पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग :- छाल से मजबूत रेशे निकलते हैं छाल का उपयोग रस्सी बनाने के काम में आता है। बड़ी पत्तियों का उपयोग पत्तल बनाने के काम में आता है। बीजें को आग में भून कर खाया जाता है। मूल क्वाथ का उपयोग ज्वरघ्न के रूप में किया जाता है। मूल स्वरस को क्षय में पिलाने से लाभदायक मानते हैं।

विशेष :- कतिपय ग्रन्थकारों ने इसे मूर्वा माना है। डल्हण ने इसे मालू एवं मालायू कहा है। तथा अश्मन्तक के पहिचान में मालायु सद्दश पत्र ऐसा उल्लेख किया है। प्राचीन काल में इसके मूल का उपयोग मूर्वा के स्थान पर होता आया है इसी कारण इसका प्रचलन मूर्वा के स्थान पर हुआ है। लेखक के विचार से मूर्वा इस से भिन्न द्रव्य है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - अंजन,
स्थानिक - अंजन,
लैटिन - Hardwickia binata Roxb.

स्वरूप :- इसके बहुत बड़े और दर्शनीय वृक्ष होते हैं। शाखायें नीचे की ओर लटकी हुई, पत्तियाँ चिकनी और चमकीली होती हैं। पत्तियाँ कचनार की तरह तिर्यगायताकार, या लट्वाकार एवं कठिताग्र होती हैं। पुष्प छोटे बहुसंख्यक और सशाख तथा सवृन्त काण्डज मज्जरियों में खिलते हैं। फली-रेखाकार आयताकार और दो बीज वाली होती हैं। पलामू एवं कैमू की पहाड़ियों पर इसके वृक्ष अधिकतर पाये जाते हैं। लकड़ी मजबूत एवं लालरंग की होती है।

स्थानिक प्रयोग :- इसके काष्ठ से निकला हुआ तैल का ग्रामीण लोग चिकित्सा में उपयोग करते हैं। क्वाथ का उपयोग सोजाक में करते हैं।

विशेष :- ब्राह्मणग्रन्थों, पाणिनीय अष्ठाध्यायी में अञ्जन नामक वनस्पति का उल्लेख मिलता है। इसे हरित भेषज भी कहा है। संहिता ग्रन्थों में इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है।

द्रव्यनाम :- संस्कृत - अशोक,
स्थानिक - उसंगिद-वा,
लैटिन - Saraca indica L.

स्वरूप :- इसके बहुशाखीय गुल्म होते हैं। पत्तियाँ समपक्षवत्, अवृन्त, चिकनी और चर्मिल होती है। पत्रक ३ से ६ जोड़े में आयताकार और प्रासवत् होते हैं। पुष्प नारंगी रंग के गुच्छों में देखने में सुन्दर लगते हैं। इसके वृक्ष चम्पारन एवं सिंगभूमि की घाटियों में पाये जाते हैं।

स्थानिक उपयोग :- स्थानिक आदिवासी छाल का चिकित्सा में प्रयोग करते हैं। बाजार में अशोक



छाल के नाम से शाल, कचनार एवं नकली अशोक के छाल से मिलती है।

आयुर्वेदीय उपयोग :- रस-कषाय, तिक्त, वीर्य-शीत, विपाक-कटु, गुण-ग्राही, रक्तशोधक, वर्ण्य, कफ पित्तशामक, रोगोपयोग-दाह-शोथ, गर्भाशिय विकार, गर्भस्त्राव आदि में उपयोगी।

योग - अशोकारिष्ठ (सोमरोग, गर्भस्त्राव)
अशोकादिघृत (रक्तप्रदर)
अशोक चूर्ण - २ से ३ माशा, अनुपान - शीतल जल।

संस्कृत साहित्य में अशोक :- संस्कृत के कवियों नें ऋतुराज बसन्त को नैसर्गिक सुषमा में अशोक को मुख्य माना है। दौहद वृक्षों में भी अशोक का उल्लेख मिलता है। कवियों ने श्रृंगार प्रधान पुष्पों में अशोक वृक्ष का बार-बार उल्लेख किया है। इस वृक्ष के प्राप्ति स्थान के विषय में कवियों के वनस्थलियों के प्रकृति सौन्दर्यवर्धक वृक्ष के रूप में उल्लेख किया है। पश्चिम मध्य एवं दक्षिण में भारत में रावण की लंका तक पर्वतश्रेणियों, उनकी उपत्यकाओं एवं अश्वस्थलियों में अशोक का उल्लेख किया है। यथा - रैवतकपर्वत, विदर्भ, नर्मदा के तटों, विन्ध्यिस्थली, कोंकण दक्षिणापथ के जंगल, पंचवटी, रावण की अशोक वाटिका आदि वनस्पतियों के प्रकृति सुषमा के अतिरिक्त सामाजिक एवं सांस्कृतिक मान्यताओं के साथ अशोक वृक्ष को मदनोद्यानों, नगरोद्यानों, क्रीडाद्यानों तथा देवालयों और शयन कक्षों के पास आरोपित करने के कतिपय प्रसंग उपलब्ध हैं। अशोक पुष्प प्रिय दर्शन एवं राग रञ्जित होने के साथ-साथ मधुगन्धि, सुरभिसौरभ सम्पन्न, भी होता है। यह भ्रमरों का प्रिय पुष्प एवं वायु को भी सौरभान्वित करने वाला है।

दौहदवृक्षों में कवियों ने अशोक का समावेश किया है। जो अपने प्रसव समृद्धि के उद्दीपनाथ, कामागंना नूपुररणित पादाघात की अपेक्षा करता है।

यथा - वन्ध्योऽपि सालक्तकपादधातं, लब्ध्वा रणन्नूपुर मंगलानाम्।।

अशोक वृक्ष के लिये काव्यों में अशोक लता, अशोक विटपी आदि श्रृंगारिक शब्दों का प्रयोग मिलता है। अशोक रक्ताशोक एक ही वृक्ष हैं। कालिदास आदि कतिपय कवियों ने नीलाशोक का भी उल्लेख किया है। लोकब्यवहार में इस प्रकार का प्रमाण नहीं मिलता है। प्रचीन काल से ही अशोक वृक्ष का सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं औषधीय मान्यता रही है। अशोक इन्डोमलायन वनस्पतिपरिमण्डल का अनुपम प्रेमी वृक्ष है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - अम्लीका, तितिडिक,
हिन्दी - ईमली, सं.जोजोस, को.जो.जो,
लैटिन - Tamarindus indica Linn.

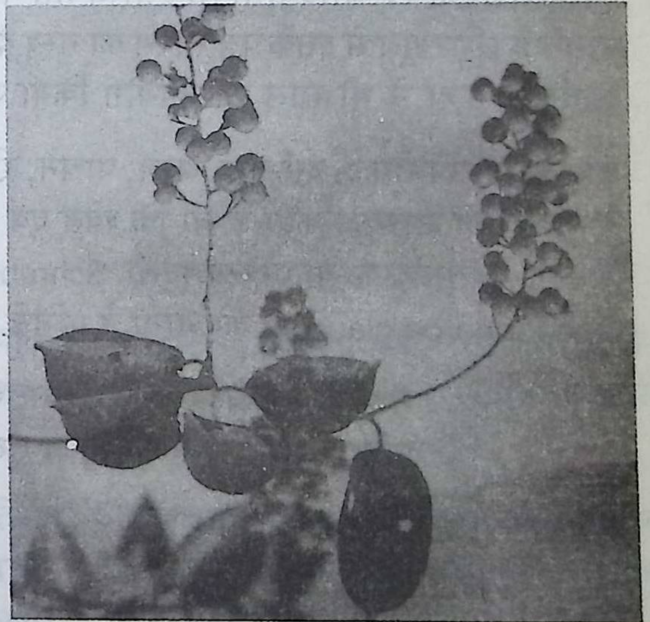
स्वरूप :- इसके मध्यम आकार के वृक्ष होते हैं। ये वृक्ष अधिकतर सड़को के आस-पास लगाये हुये पाये जाते हैं। यह प्रसिद्ध फलदार वृक्ष हैं। इस क्षेत्र में सर्वत्र पाया जाता है। ग्रामीण लोग इसकी चटनी अधिक बनाते हैं। व्यापारिक रूप से इसकी फलियों का संग्रह किया जाता है।

आयुर्वेदीय उपयोग :- रस-अम्ल, मधुर, वीर्य-उष्ण, विपाक-मधुर, कफ-वातशामक, सारक, पाचक, ग्राही, आमातिसार, हृदाह एवं शुक्ररोग में उपयोगी।

योग - अम्लिकापानक (हृददाह) में,
अम्लिका मंथ (शुक्ररोग) में।
मात्रा - चूर्ण २ से ४ माशा।

ज्योतिष्मतीकुल (CELASTRACEAE)

द्रव्य नाम :- संस्कृत - ज्योतिष्मती,
हिन्दी - मालकांगनी, कालकुजरी,
पलामु - झिझनी, गुंजनी, चिरैनी,
लैटिन - Celastrus paniculata Willd.



स्वरूप :- आरोही बहुशाखीय लता जाति की वनस्पति है। नवीन शाखाओं पर बहुत श्वेत बिन्दू पाये जाते हैं। पत्तियाँ प्रायः अभिलट्वाकार, आयताकार एवं दन्तुर-धार वाली होती हैं। पुष्प-हरित मञ्जरियों में, फल-पीत तीन खण्ड वाले, बीज-लाल आवरण से युक्त तथा काले होते हैं। इस क्षेत्र में इसकी काष्ठीय लतायें सर्वत्र पायी जाती हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग छाल क्वाथ का उपयोग गर्भस्त्राव के रूप में करते हैं। बीजों का उपयोग सारक, पक्षाघात, श्वेतकुष्ठ एवं ज्वरघ्न के रूप में करते हैं। बीज तैल का उपयोग जलाने तथा चिकित्सा में करते हैं। पागलपन (मिर्गी) के दौरे पड़ने पर एवं ऋतुमती (मालकांगनी) की छाल एवं रतनगौरी की छाल समभाग लेकर चूर्ण बना लेते हैं ३ ग्राम की मात्रा में दिन में २ बार गुड़ के साथ सेवन कराने पर लाभ होता है।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- रस-कटु, तिक्त, वीर्य-उष्ण, विपाक-कटु, गुण-वामक, मेघावर्धक, तीक्ष्ण, वात-कफहर रोगोपयोग-स्मृतिभ्रंश, बेरी-बेरी, जलोदर, गर्भपात, मूत्रवृद्धि एवं श्वेत कुष्ठ मे उपयोगी। मालकांगनी तैल उत्तेजक, मूत्रनिस्सारक तथा स्वेदल होता है। नवीन बेरी-बेरी नामक रोग में १० से १५ बूंद तैल दूध में देने से लाभ होता है। इसके बीजों को व्रण के ऊपर पीसकर लगाने से न भरने वाले व्रण जल्दी भरते हैं।

योग - ज्योतिष्मत्यादितैल।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - मुष्कक, मोक्षक,
स्थानिक - जमरासी, रतनगरूर मिरी,
लैटिन - Elaeodendron glaucum Pers.

स्वरूप :- इसके मध्यम कद के बहुशाखीय वृक्ष होते हैं। पत्तियाँ गहरे हरे रंग की चिकनी, लट्वाकार, गोल, सवृन्त, पुष्प-हरित-श्वेत वर्ण के फल-अष्ठिल पीतवर्ण के, तथा आधा इंच लम्बे होते हैं। इसके वृक्ष छोटानागपुर, संथालपरगना के सभी क्षेत्रों में पाये जाते हैं।

स्थानिक उपयोग :- आदिवासी लोग सन्धिवात में छाल का लेप करते हैं। छाल के ग्राही और शोथघ्न मानते हैं। शिरशूल में इसके पत्र स्वरस का नस्य देते हैं। पत्तियों का धुवां देने से भूतोन्माद में चेतना आती है। हैजा में भी छाल का उपयोग किया जाता है।

आयुर्वेदीय उपयोग :- रस-कटु, अम्ल, पाचन, रोचक, प्लीहोदर एवं गुल्म में उपयोंगी है। सुश्रुत ने मुष्कक को क्षारवृक्ष कहा है जो कि श्वेत एवं कृष्णभेद से दो प्रकार का होता है। ठा. बलवन्त सिंह ने श्वेतमोक्षक या घण्टापाटली Schrebera Swi tenioides Roxb. एवं कृष्णामोक्षक Elaeodendron glaucum को माना है। जिसे कृष्णपाटली कहते हैं।

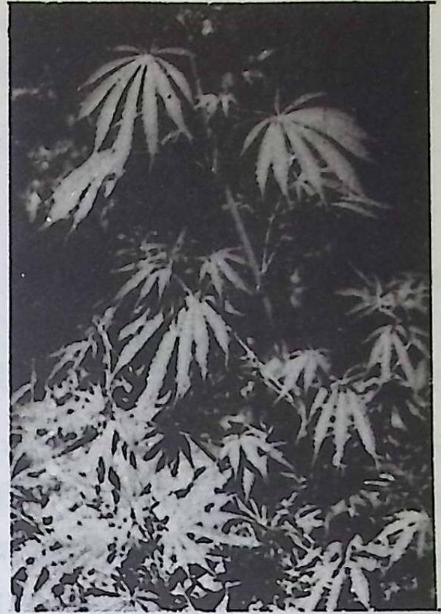
मुष्ककः कटुकोऽम्लश्च, रोचनः पाचनः सरः।
प्लीह गुल्मोदरार्तिघ्नो द्विधा तुल्यगुणान्वितः।। "शा. नि."

भांगकुल. (CANNABINACEAE)

द्रव्य नाम :- संस्कृत - भंगा, विजया,
स्थानिक - भंगा, गांजा भांग,
लैटिन - Canabis sativa Linn.

स्वरूप :- भाग के एक वर्षायु गन्धयुक्त प्रायः ३ से ५ फीट ऊंचे द्विलिंगक क्षुप होते हैं। पुरूष और स्त्री क्षुप अलग-अलग पाये जाते हैं। पत्तियाँ व्यास में ३ से ८ इंच लम्बी होती हैं। स्त्री क्षुप के पुष्प वाहक शाखाओं से गांजा बनता है और सूखे पत्तों से भांग बनती है। पत्रादि से एक स्त्राव निकलता

है जिससे चरस बनता है। यह सिंगभूमि एवं संथालपरगना में सर्वत्र पाया जाता है। पुष्प छोटे गुच्छेदार, बीज-मसृण दानेदार एवं आवरणमय होते हैं।



प्रयोज्य अंग :- पत्र, निर्यास, बीज।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी पत्तियों का उपयोग मादकता हेतु करते हैं। इस के पत्तों को पीसकर दूध में मिलाकर पीते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- रस-तिक्त, वीर्य-उष्ण, विपाक-कटु, गुण-दीपन, पाचन, लघु, ग्राही, रूच्य, निद्राकारक, कफवात-शामकरोगोपयोग- अतिसार, रक्तप्रदर, अग्निमांद्य, शुक्ररोग, अर्श एवं प्रवाहिका में उपयोगी।

मुख्य योग :- मदनानन्द मोदक।

वरूणकुल. (CAPPARIDACEAE)

द्रव्य नाम :- हिन्दी - हुर हुर (पीला),
स्थानिक - चमनी, सं. केदारझावक,
लैटिन - Cleome vicosa L.

स्वरूप :- एक वर्षायु, गन्धिल शाकीय वनस्पति है। पत्रको की संख्या ३ से ५ तक होती है। पुष्प-पीतवर्ण के होते हैं। बीज पकने पर काले रंग के राई सद्यश। इसकी एक अन्य प्रजाति भी पायी जाती है जिसे C. monophylla L. कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग:- बीज- दीपन, स्वेदजनन उत्तेजक, कोष्ठवात-प्रशमन, दाह-जनन और कृमिघ्न होते हैं। मूल-स्वरस का प्रयोग आदिवासी मिरगी के दौरे पड़ने पर करते हैं। कभी-कभी औषध विक्रेता इसके बीजों का विक्रय खुरासानी अजवाईन के नाम से करते हैं।

द्रव्य नाम:- संस्कृत - तिलपर्णी, उग्रगन्धा,
स्थानिक - हुर-हुर (श्वेत), सं. अड़ा-शाक को-चमनी,
लैटिन - Gynandropsis pentaphylla (Linn.) Brique.



स्वरूप :- यह उग्रदुर्गन्धियुक्त १ से ३ फीट ऊँचा एक वर्षायु पौधा है। पत्तियाँ-सपत्रक, पाणिवत्, बैंगनी-श्वेतवर्ण के। फलियाँ लम्बी, बीज - राई सद्यश संख्या में अनेक होते हैं। इसकी पत्तियाँ-पर्णनाल पर सूर्य के साथ घुमती रहती हैं। इसी कारण वैद्य इसे आदित्यभक्ता भी कहते हैं। गुजराती एवं मराठी के वैद्य इसे तिलवंण अर्थात तिलपर्णी का सन्देह करते हैं। वंगीय वैद्य इसे सुवर्चला मानते हैं। श्री आचार्य यादव जी ने इसे अजगन्धा माना है। संथालपरगना एवं छोटानागपुर में इसके क्षुप सर्वत्र पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोगः- इस वनस्पति के शास्त्रीय नाम के सम्बन्ध में मतभेद हैं। गुजराती एवं मराठी वैद्यों के मतानुसार यह तिलपर्णी हो सकती है। वंगीय चिकित्सकों के आधार पर यह सुवर्चला हो सकती है एवं उत्तरी भारतीय चिकित्सक इसे अजगन्धा मानते हैं। कुछ विद्धानों ने अजश्रृंगी भी लिखा है। अजगन्धा कोई यवानी सद्यश उग्र सुगन्धित कृमिध्न एवं पूतिहर वनस्पति है। जिसके आधार पर यह Ocimum की प्रजातियों की वनस्पति हो सकती है। सम्भवतः यही तिलपर्णी है। सुश्रुत ने तिलपर्णी से हुल-हुल अर्थ किया है। भावप्रकाश ने तिलपर्णी को श्वेत, पीत भेद से दो प्रकार का माना है।

द्रव्यनामः- संस्कृतः- हिंस्त्रा, कन्थारी,
स्थानिकः- हँईसा
लैटिनः- Capparis sepiaria L.

स्वरूप :- इसके गुल्म बहुशाखीय विस्तृत एवं कुछ प्रसरणीशील होते हैं। ग्रन्थियों पर टेढ़े तीक्ष्ण कांटो के जोड़े पाये जाते हैं। पुष्प-श्वेत वर्ण के मूर्धजक्रम में समूहवद्ध रहते हैं। रांची, पलामू, सिंगभूमि में इसके गुल्म पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग मूल कल्क का उपयोग फोड़े को बैठाने एवं पकाने के लिये करते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- संहिता ग्रंथों में हिंस्त्रा के नाम से इस वनस्पति का उल्लेखमिलता है राजनिघण्टु में कन्थारी के नाम से उल्लेख मिलता है राजनिघण्टुकार ने इसे कटु-तिक्त, उष्ण, कफवातनाशक, शोफघ्न, दीपन, एवं रक्तग्रन्थि रोग नाशक बतलाया है।

कन्थारी कटुतिक्तोष्णा, कफवात निकृन्तनी।
शोफघ्नी दीपनी रूच्या, रक्तग्रन्थिरूजापहा ।। रा. नि.

द्रव्य नाम :- संस्कृत - व्याघ्रनखी, स्थानिक - वधनई, करेरूआ,
लैटिन - Capparis horrida L.F.

स्वरूप :- यह आरोही विस्तृत गुल्म जाति वनस्पति है। यह अंकुशभूत कांटों के द्वारा आश्रय पकड़कर फैलती है। पत्तियाँ प्रायः लट्वाकार २ से ३ इंच लम्बी, पुष्प-श्वेत एवं गुलाबी रंग के फल पकने पर लाल रंग के होते हैं। रांची, सिंगभूमि, पलामू एवं संथालपरगना में सर्वत्र यह पाया जाता है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी मूल को दाहक और स्फोट-कारक मानते हैं। इन लोगों का विश्वास है कि कच्चे फलों के खाने के सालभर सर्पदंश का भय नहीं रहता है। कफ एवं कास में पंचाग का उपयोग क्वाथ के रूप में करते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य प्रजाति पायी जाती हैं, जिसे गृध्रनखी Capparis zeylani Ca L. कहते हैं। सुश्रुतसंहिता सूत्रस्थान अध्याय ४६ में इसके फलको डुडुरक कहा है। कुछ लोग डोडीशाक को जीवन्ती भी अर्थ करते हैं।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - करीर, स्थानिक - कवर, करेरूआ,
लैटिन - Capparis decidua Ed.

स्वरूप :- इसके बहुशाखीय कण्टकित गुल्म होते हैं। पत्तियाँ वृताकार, चौड़ाई लिये हुये एवं लट्वाकार होती हैं। पुष्प श्वेताभ-गुलाबी वर्ण के फल पकने पर मृदु रक्त वर्ण के होते हैं। इसकी अन्य प्रजाति भी इस क्षेत्र में पाई जाती है जिसे कवरा Capparis spinosa L. कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- मूल को आदिवासी लोग उष्ण, मूत्रजनन और कफघ्न मानते हैं।

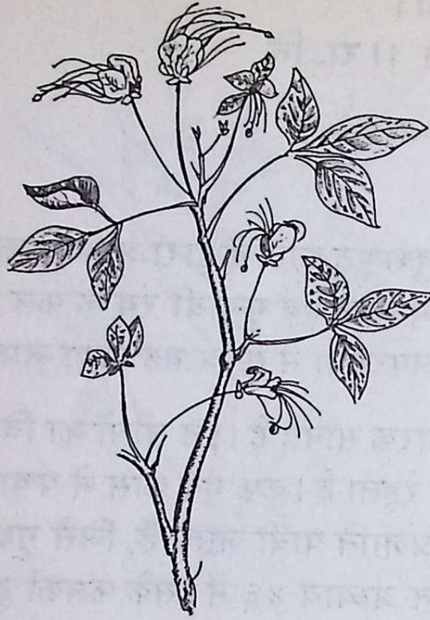
आयुर्वेदीय उपयोग :- कटु, उष्ण रोचक, वात-कफहर, अर्शोघ्न, शूलघ्न एवं श्वासकसनाशक।

यथा – वातेश्लेष्हरं रूच्यं कटूष्णं गुदकीलजित्।
करीरमाध्मानकरं, रूचिकृत्स्वादतिक्तकम्।। ध. नि.

द्रव्य नामः- संस्कृत - वरूण, स्थानिक - वरना,
लैटिन - Crataeva nurvala Bach-Ham.

स्वरूप :- वरूण के छोटे-छोटे वृक्ष प्राय बिहार प्रान्त में लगाये हुये मिलते हैं। इसके तीन-तीन पत्रक होते हैं। पत्रक लट्वाकार अथवा भालाकार और लम्ब्राग्र होते हैं। टहनियों पर श्वेतबिन्दु चिन्ह होते हैं। पुष्प-श्वेत-पीत या गुलाबी रंग के फल पकने पर लाल रंग के मांसल होते हैं।

स्थानिक उपयोग :- ग्रामीण लोग छाल का उपयोग मूत्रसम्बन्धी विकारो में करते हैं।



आयुर्वेदीय उपयोग :- रस-तिक्त, कटु, मधुर, वीर्य-उष्ण, विपाक-कटु, गुण-दीपक, भेदन, वात-कफशामक, रोगोपयोग-अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, गुल्म वात रक्त, गण्डमाला एवं मूत्रविकारों में उपयोगी।

योग :- वरूणादिक्वाथ, वरूणादिगुड़।

मात्रा :- चूर्ण २ से ३ ग्राम, मधु एवं उष्णजल।

विशेष :- बाल्मिकीय रामायण के अयोध्याकाण्ड में चित्रकूट के प्रसंग में वरूण का उल्लेख आया है।

एरण्डकर्कटीकुल (CARI CACEAE)

द्रव्य नाम :- संस्कृत - एरण्डकर्कटी, एरण्डचिर्मिट,
स्थानिक - पपीता,
लैटिन - Carica papaya L.

स्वरूप :- पपीते के छोटे-छोटे वृक्ष लगाये जाते हैं। यह मैक्सिको तथा पश्चिमी भारतीय द्वीप समूह का मूलनिवासी गुल्म है। अमेरिका में इसे पपाया कहते हैं, उसी से इसे पपीता कहा जाता है। आधुनिक काल में इसका प्रवेश यूरोपवासियों के माध्यम से हुआ है। कच्चे फल में चीरा लगाने से दूध जैसा निर्यास निकलता है। इसे धूप में सूखाकर चिकित्सा में उपयोग किया जाता है।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण लोग कच्चे फलों को शाक के रूप में तथा पके फल खाये जाते हैं। यह शीतल, मधुर एवं दाहशामक होता है।

औषधि उपयोग :- दूध (पेपेन) उत्तमपाचक, कृमिध्न, वेदनास्थापक, स्तन्यजनन, कुष्ठघ्न और उदर रोग हर है। पत्रों की क्रिया हृदय पर डिजिटेलिस के समान होती है।

पथरचुरकुल (CRASSULACEAE)

द्रव्य नाम :- संस्कृत - पर्णबीज,
स्थानिक - पथरचूर, पथरचटा,
लैटिन - Bryophyllum calycinum Solis

स्वरूप :- इसका चिकना मांसल क्षुप होता है। पत्तियाँ अपत्रक अथवा नीचे त्रिपत्रक आयताकार, अण्डाकार, गोलदन्तुर, पुष्पवाहक काण्ड १ स ३ फीट ऊंचा होता है। पुष्प हलके गुलाबी रंग के एवं धण्टिकाकार होते हैं। पत्तियाँ जमीन पर गिरकर उनसे कलिकायें विकसित होकर स्वतन्त्र पौध निकल आते हैं। इसी कारण इसे पर्णबीज भी कहा गया है। व्रणरोपण होने से इसे जख्मेहयात कहा गया है। वागों में सर्वत्र लगाया हुआ एवं कभी-कभी स्वयंजात पाया जाता है। यह मोलक्कस का आदिवासी पौधा है। इस पौधे को अंगरेजों द्वारा भारत लाया गया है। कहते हैं श्रीमती क्लाइव इसे १७९१ ई. में लायी तभी इसे कलकत्ता के वानस्पतिक उद्यान में लगाया गया है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग पत्तों का उपयोग चोट एवं व्रण रोपण में करते हैं।

औषध प्रयोग :- अधिकतर ग्रामीण वैद्य इसे पाषाणभेद मानते हैं, क्योंकि इस में पाषण भेद सद्यश मूत्रलगुण पाया जाता है। यह उत्तम व्रणशोधक, व्रणरोपक, रक्तसंग्राहक और रक्तस्कन्दन में उपयोगी है। नवीन जख्मों को भरने के लिये यह उत्तम औषधि है। पित्ताशय को पथरी में पत्रस्वरस लाभ करता है।

विशेष :- निघटुकारों ने पाषाणभेद के पर्यायों के साथ एरावती दिया है। तथा कुछ स्थलों पर पाषाणभेंदों का प्रकारभेद में एरावण, महिरावण नाम दिया है। उस आधार पर एरावती नामक वनस्पति पर्णबीज है ऐसा संदेह उत्पन्न होता है। लेखक के विचार से संहितोक्त ऐरावती यह वनस्पति नहीं हैं। सुश्रुत संहिता के टीकाकर डल्हण ने स्पष्ट निर्देश दिया है कि ऐरावम् ऐरावर्णिका, कृष्ण लोहित फला "इति" फल के उपयोग का निर्देश विशेष मिलता है। दुसरे स्थल पर टीकाकारों ने स्पष्ट निर्देश दिया है "एरावतं दन्तशठम्लं शोणितपित्तकृत्" ऐरावत नामक फलविशेष द्रव्य है जो निम्बुक जाति का है।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - हेमसागर,
लैटिन - Kalauchoe laciniata DC.

स्वरूप :- इसके प्राय १ से ३ फीट ऊँचे बहुवर्षायु क्षुप होते हैं। सभी पत्तियाँ खण्डित और मांसल होती हैं। पुष्प बड़े एवं पीले रगं के होते हैं। इसके पौधे प्रायः बागों में लगाये हुये मिलते हैं। इसकी दूसरी जाति सिंगभूमि एवं संथालपरगना में पाई जाती है जिसे K. heterophylla कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण लोग शोथघ्न एवं व्रणरोपण के रूप में इसके पत्तों का उपयोग करते हैं। पुराने व्रणों पर इसका विशेष उपयोग होता है। इसलिये इसको भी कुछ लोग जख्मेहयात कहते हैं।

साबुनीकुल (CARYOPHYLLACEAE)

द्रव्य नाम :- प्रचलित नाम - पित्तपापड़ा (प्रतिनिधि)
लैटिन - Polycarpea corymbosa Lenk.

स्वरूप :- यह मृदुशाखीय शाकीय वनस्पति है। पत्तियाँ रेखाकार और अभिमुख होती हैं। पुष्प-मञ्जिरियाँ छोटी होती हैं। ज्वार के खेतों में इसके पौधे पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण लोग पित्त के प्रकोप की शान्ति में इसके पंचाग का उपयोग क्वाथ के रूप में करते हैं। ग्रामीण वैद्य पित्तपापड़ा (पपर्ट) के स्थान में ज्वरघ्न के रूप में प्रयोग करते हैं। हिसक जन्तुओं के आघात पर इसका वाहय एवं आभ्यान्तिरिक रूप से उपयोग किया जाता है। पत्र का लेप पोटलिस के रूप में व्रण के पकाने के लिये भी ग्रामीण उपयोग करते हैं।

विशेष :- यह वनस्पति Fumaria parviflora (पर्पट) का प्रतिनिधि द्रव्य हो सकता है।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - साबुनी,
लैटिन - Saponaria vaccaria L.

स्वरूप :- यह क्षुप जाति की वनस्पति है। काण्ड १ से ३ फीट ऊँचा पर्ण अभिमुख, भालाकार, रेखाकार, आयताकार एवं काण्ड ससक्त होते हैं। पुष्प गुलाबी सवृन्त २ से ३ विभक्त मज्जरी में खिलते हैं। यह वनस्पति शीतकाल में खेतों में उपल्बध होती है।

औषधि उपयोग :- इस वनस्पति में साबुन तत्व पाया जाता है। यह सत्व तीव्रशिरोविरेचक, कफनिस्सारक, विरेचक गुणों वाला होता है। अधिक मात्रा में प्रयोग करने पर हानिकारक है।

हरीतकी कुल (COMBRETACEAE)

द्रव्य नाम :- संस्कृत - धव, शकटाक्ष,
स्थानिक - धौरा, हेसल,
लैटिन - Anogeissus latifolia Wall.

स्वरूप :- इसके मध्यम ऊँचाई के वृक्ष होते हैं। पत्तियाँ चौड़ाई लिये हुये अण्डाकार २ से ४ इंच लम्बी, कुण्ठित, पृष्ठपर बिन्दुयुक्त और सनाल होती है। पुष्प-छोटे हरिताभ, पत्र-कोणीय, मुण्डक के रूप में स्थित होते हैं। फल-चिपटे एवं चोंचदार होते हैं। छोटानागपुर, संथालपरगना में सर्वत्र पाया जाता है। इसकी अन्य प्रजाति भी पायी जाती है। जिसे हेंसल, रतेंग A. acuminata कहते हैं।

स्थानिकउपयोग :- ग्रामीण लोग काष्ठ का उपयोग बैलगाड़ी के धुरों को बनाने में करते हैं। पत्तियों का उपयोग चारे के रूप में मवेशियों के लिये किया जाता है। गोंद का उपयोग चिकित्सा में किया जाता है।

आयुर्वेदीय उपयोग :- शीत, कषाय, कटु, कफघ्न, वातनाशंक, प्रमेह, अर्श एवं पाण्डु में उपयोगी।

धवः शीतः प्रमेहार्शः पाण्डुपित्तकफापहः "ध. नि."

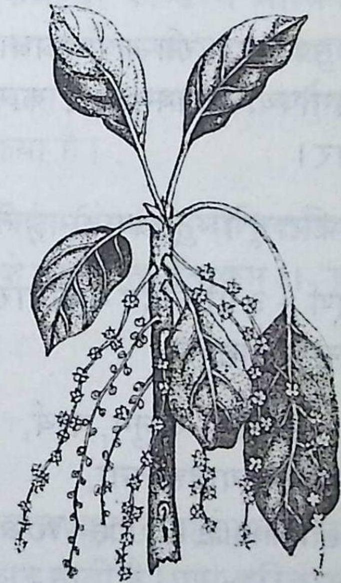
संस्कृत साहित्य में धव :- बाल्मिकीय रामायण में धव का उल्लेख अयोध्याकाण्ड में चित्रकूट के प्रंसग में पंचवटी में पंपासर के वनों में, युद्धकाण्ड में सेतु निर्माण हेतु इसका उल्लेख आया है।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - को.-फलांडु, रसेंग,
संथाली - भुरादमरोदी, अतेन,
लैटिन :- Combertum decandrum Roxb.

स्वरूप :- यह विस्तृत आरोही लता जाति की वनस्पति है, जो कि बड़े-बड़े वृक्षो में घेरे रहती है। इसके श्वेताभ वर्ण के पुष्प दिसम्बर-जनवरी में खिलते हैं। संथाल एवं छोटानागपुर में सर्वत्र यह पाई जाती है।

स्थानिक उपयोग :- आदिवासी पत्तियों का वाह्यप्रयोग फोड़े-फुन्सी और छालों पर करते हैं। पत्रक्वाथ का उपयोग मलेरिया में करते हैं।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - बिभीतक
स्थानिक - लुपुंग, बेहड़ा,
लैटिन - Terminalia belerica Roxb.



स्वरूप :- इसकेसीधे एवं बड़े वृक्ष होते हैं। पर्ण चौड़ाई लिये हुये अण्डाकार अभि-लट्वाकार ३ से ८ इंच लम्बे, पुष्प-पीले, हरित श्वेत मज्जरियों में। फल-गोल, रोमश और धूसर वर्ण के होते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण लोग व्यापारिक रूप से भी फलों का संग्रह करते हैं। फलमींगी खाई जाती है। फल मज्जा का उपयोग चिकित्सा में करते हैं। छाल का उपयोग पीलारंग बनाने में करते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- रस-कषाय, वीर्य-उष्ण, विपाक-मधुर, गुण-केश्य, लघु, स्वर्य, रसायन, कफपित्ताशामक, रोगोपयोग-कास, स्वरविकार, उदररोग, अर्श, कुष्ठ, नेत्ररोग, श्वासनलिका एवं आन्त्रविकारों में उपयोगी है।

योग :- त्रिफलाचूर्ण (उदर विकार बिवन्ध) त्रिफलायोग (नेत्ररोग)
मात्रा २ से ४ ग्राम चूर्ण जल से।

संस्कृत साहित्य में विभीतक :- वाल्मीकीय रामायण में अयोध्याकाण्ड के भारद्वाज आश्रम पर, युद्धकाण्ड में सेतुनिर्माणार्थ, हवन सामग्री में समिधा हेतु आदि प्रसंगो में विभीतक का उल्लेख मिलता है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - हरीतकी,
स्थानिक - हर्रा, हरड़, को. शेला,
लैटिन - Terminalia Chebula Retz.

स्वरूप :- हरड़ के मध्यम ऊँचाई के वृक्ष पाये जाते हैं। पत्तियाँ अभिमुख लट्वाकार या अण्डाकार, पुष्प श्वेताभ-पीत, अवृन्त, काण्डज मज्जरियों में खिलते हैं। फल-दीर्घ-वृताभ, पांचकोणों या रेखाओं से युक्त गुठलीदार होता है। इसके वृक्ष प्रायः इस क्षेत्र में सर्वत्र पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- व्यापारिक रूप से ग्रामीणलोग फलों का संग्रह विक्रय हेतु करते हैं। फल का उपयोग स्थानिक चिकित्सा में करते हैं। यह त्रिफला का मुख्यघटक है।

आयुर्वेदीय उपयोग :- रस-कषाय प्रधान, अम्ल, तिक्त, कटु, वीर्य-उष्ण, विपाक, मधुर, दीपन, रूक्ष, चक्षुष्य, रोगोपयोग-विषमज्वर, कामला, अर्श, प्रमेह हिक्का, उदरशूल, अजीर्ण, पाण्डु एवं आन्त्रविकार।

योग :- त्रिफलाचूर्ण - (उदर रोग,) नेत्ररोग।

हरीतकी चूर्ण :- ३ ग्राम दिन में दोबार गुड़ या नमक के साथ खाने से पूर्व प्रयोग करने से अग्निमांद्य में विशेष लाभ होता है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - अर्जुन, पार्थ,
स्थानिक - कौहा, गाड़हातना,
लैटिन - Terminalia arjuna Wofa.

स्वरूप :- अर्जुन के विशाल वृक्ष नदी-नालों केकिनारे सर्वत्र इस क्षेत्र में पाये जाते हैं। छाल-पाण्डुर, हरित एवं धूसरवर्ण की होती है। पत्तियाँ आमने-सामने, आयताकार, चिकनी और चौड़ाई में तीन गुनी लम्बी होती है। पुष्प छोटे श्वेताभ हरित अवृन्त काण्डज मज्जरियों में खिलते हैं। फल पक्षयुक्त कठोर होते हैं।

औषध उपयोग :- आदिवासी लोग व्रणशोधन के रूप में छाल का उपयोग करते हैं।



आयुर्वेदीय उपयोग :- रस-कषाय, वीर्य-शीत, विपाक-कटु, गुण-हृद्य रसायन, ग्राही, रोगोपयोग-हृदयरोग, क्षय, कास, रक्तपित्त, मूत्राघात में उपयोगी है। हृदय के सभी प्रकार के रोगो में इसकी छाल को दूध में क्षीरपाक विधि से सेवन करने से लाभ होता है।

मात्रा :- दूध ३० एम. एल. से ५० एम. एल.। व्रण, अस्थिभग्न, शोथ आदि में इसका वाह्य एवं आभ्यन्तर प्रयोग किया जाता है।

योग :- अर्जुनादिचूर्ण (हृदय रोग) अर्जुनारिष्ठ (हृदय-फुफ्फुसरोग) इसकी छाल में विशेष प्रकार का हृदय रोग मे उपयोगी शल्की टैनीन पाया जाता है।

संस्कृत साहित्य में अर्जुन :- वाल्मिकीय रामायण के किष्कन्धा काण्ड में माल्यवानपर्वत पर मलयपर्वत कानन में एवं सेतुनिर्माण में अर्जुन का उल्लेख आया है। इसी प्रकार ऋतुसंहार नामक महाकाव्य में वर्षाकाल का वर्णन करते हुये महाकविकालिदास ने कदम्ब, सर्ज, अर्जुन, आदि वृक्षों के सुगन्धित पुष्पों द्वारा सर्वांग शीतल पवन का वर्णन किया है।

यथा :- कदम्ब सर्जार्जुन केतकी वनम्, विकम्पयंस्तत्कुसुमाधिवासितः।
स सीकराम्भोधरसंग शीतलः, समीरण कं नकरोतिसोत्सुकम्।। "ऋतुसंहार"

द्रव्य नाम :- संस्कृत - असन,
स्थानिक - साज, आसना, एन,
लैटिन - Terminalia tomentosa Wofa.

स्वरूप :- असन केऊँचे वृक्ष मे सर्वत्र पाये जाते हैं। काण्ड-छाल खुरदरी एवं गहरी फटी हुई रहती है। पत्ती न्यूनाधिक, आमने-सामने अण्डाकार एवं लट्वाकार होती है। पुष्प-हरिताभ एवं मज्जरी में, फल-अर्जुन फल सद्यश सपक्ष में होते हैं। इस क्षेत्र में साज की अन्य प्रजाति भी पाई जाती है। जिसे उजरकी-आसन एवं कोहासन भी कहते हैं। बिहार एवं मध्यप्रदेश के वस्तर आदि क्षेत्रों में इस वृक्षों पर रेशम के कीड़े पाये जाते हैं। इस क्षेत्र में अन्य प्राजाति T. Coriacea नीलामठी भी पाई जाती है।

स्थानिक उपयोग :- आदिवासी लोग छाल के क्वाथ का प्रयोग मोटापा कम करने के लिये करते

हैं। मूत्रदाह के रूप में प्रयोग किया जाता है। व्रणों पर छाल का वाह्यलेप करते हैं।

विशेष :- शास्त्रकारों ने असन का पर्याय बीजक दिया है। वास्तव में असन और बीजक दोनों भिन्न-भिन्न द्रव्य हैं। बीजक से विजयसार Pterocarpus marsipium Roxb. नाम का वृक्ष है। निघण्टुकारों ने असन के अन्य प्रजातियों को सर्ज का भेद माना है। राजनिघण्टुकार ने जरण, द्रुम, सस्यमसंवरण, कुशिकतरू एवं अश्वकर्ण आदि नामों का उल्लेख किया जिसमें को हासन नामक वृक्ष को सस्यसंवरण, कुशिकतरू कह सकते हैं। अश्वकर्ण से Dipterocarpus alatus का उपयोग किया जाता है। जिसे जरणद्रुम भी कहते हैं। यह शाल और सर्ज की प्रजातियों का वृक्ष है।

संस्कृत साहित्य में असन :- संस्कृत साहित्य एवं वाल्मिकीय रामायण में चित्रकूट माल्यवान पर्वत पर असन के वृक्षों का सन्दर्भ मिलता ह। जिससे स्पष्ट है यह वृक्ष वन्यरूप में उत्तर पश्चिम, दक्षिण एवं मध्यप्रदेश के वनों में विशेष पाया जाता है। कवियों ने असन के शरदत्रृतु में पुष्पित होना माना है। असन पुष्पों की सघनता की समता कवि ने व्याघ्र के पीत चित्रित चर्म से बताकर इसके पुष्पों के वर्ण को भी अभिलक्षित किया गया है। असन के पुष्पों एवं पुष्प मञ्जरियों का प्रियदर्शन, मधुस्त्रावी, एवं मधुगंधी होना भी लक्षित होता है।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - देशीवदाम
लैटिन - Terminalia catappa Linn.

स्वरूप :- इसकेबड़े और सुन्दर वृक्ष जलप्रायः भागों में पाये जाते हैं। पत्तियाँ ६ से १० इंच लम्बी, अभिलट्वाकार, हृदयवत्, पर्णमूल वाली होती हैं। पुष्प एकांकी मञ्जरियो में पत्र कोणीय क्रम के निकलते हैं। फल-दीर्घ, वृताभ, चपटा, गुठली-मोटी, रेशेदार एवं कठोर होती है, जिसके भीतर बादाम सद्यश बीज होता है।

स्थानिक :- आदिवासी छाल का उपयोग अतिसार में करते हैं। बीज तैल वर्ण्य, केश्य और पौष्ठिक होता है।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - रंगून की बेल,
लैटिन - Quisaualis india L.

स्वरूप :- यह आरोही लता जाति की वनस्पति है। इस क्षेत्र में इसकी बेल बगीचों में लगाई हुई पाई जाती है। पत्तियाँ अभिमुख, अभिलट्वाकार, पुष्प-पत्रकोणीय क्रम में खिलते हैं।

औषधि उपयोग :- बीजों का उपयोग गोलकृमिरोग में किया जाता है।

भृंगराजकुल - (COMPOSITAE)

द्रव्य नाम :- संथाली - कुपसुंगा,
स्थानिक - उचुण्डी, गण्डहरी,
लैटिन - Ageratum conyzoides L.

स्वरूप :- इसका एक वर्षायु क्षुप रोमश और स्वावलम्बी होता है। पत्तियाँ अभिमुख, एकान्तर गोलदन्तुर एवं लट्वाकार होती हैं। पुष्प-मुण्डक में एवं जामुनी रंग के होते हैं। इसके क्षुप खेतों एवं बागों में समूह रूप में पाये जाते हैं।

स्थानिक उपयोग :- आदिवासी मूल स्वरस का उपयोग माता के दूध के साथ ५-५-१० बूंद मिलाकर बच्चों को पिलाने से वालातिसार में लाभ होता है।

२. घाव पर इसके पत्ती का लेप बांधने से रक्तस्त्राव बन्द होकर घाव अच्छा होता है। फोड़े-फुन्सियों में भी वाहय प्रयोग किया जाता है।

३. शिरःशूल (आधा शीशी) में इसके मूल एवं पत्र स्वरस का नासाबिन्दु के रूप में प्रयोग करने से लाभ होता है। गुदभ्रंश में पत्ती को पीस कर लगाई जाती है। स्वेदजनन हेतु ज्वर में इसके पत्रस्वरस की ग्रामीण लोग मालिश करते हैं। सर्पदंश में भी संथाल के आदिवासी पत्र का वाहय प्रयोग करते हैं।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - कुकुन्दर, कुलाहल,
स्थानिक - कुकरोंधा, कुकापोगाकु (सं.),
लैटिन - Blumea lacera DC.

स्वरूप :- इसी क्षेत्र में इसकी कई प्रजातियाँ पाई जाती है। इस प्रजाति की पत्तियाँ एकान्तर, किञ्चित् सुगन्धित होती हैं। यह एक वर्षायु क्षुप तलोत्थ शाकीय वनस्पति है, जो कि वर्षाकाल में अधिक पाई जाती है। पुष्प मुण्डक में जामुनी एवं श्वेताभ वर्ण के होते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- पत्र मे संग्राहक, कृमिघ्न एवं वेदनास्थापन गुण पाये जाते हैं। इसकी औषध उपयोग की अन्य जाति संथाल में पाई जाती है। इसके मूल स्वरस का उपयोग रक्तमूत्र (हेमिचूरिया) में किया जाता है। अत्यार्त्तव, रक्तातिसार एवं रक्तार्श में भी मूल एवं पत्र स्वरस का उपयोग किया जाता है। आदिवासी पत्तों का शाक भी खाते हैं।

विशेष :- सुश्रुतसंहिता के सूत्रास्थान अध्याय ३८ में कुलाहल नामक वनस्पति का उल्लेख मिलता है। डल्हण ने इसे मुण्डी के भेदों में सकेंत किया है। अन्य कतिपय स्थलों पर कुलाहल से कुकुरसुंगा अर्थ किया है। संथाली इसे कुकायोग एवं गुजराती में कलहाड़ एवं कूकुन्दर कहते हैं। अतः लेखक के विचार से यह Blumea की प्रजातियों में कुलाहल है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - भृंगराज, केशराज,
स्थानिक - भांगरा, को. हातुकेसारी, केसरडा,
लैटिनं - Eclipta alba Hassk.

स्वरूप :- यह मृदु, बहुशाखीय प्रसरणशील शाकीय वनस्पति है। पत्तियाँ अभिमुख, आयताकार, अवृन्त या अण्डाकार नुकीली होती हैं। मुण्डक छोटे विषमाकार पुष्पों में श्वेत वर्ण के होते हैं। इस क्षेत्र में खेतों के आस-पास सर्वत्र इसकी पौध पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग :- स्थानीय लोग भांगरे का क्वाथ योनिगत कण्डू में डूश के रूप में प्रयोग करते हैं। यकृत एवं त्वचा के विकारों में इसका उपयोग करते हैं। उपयोगी अगं- पंचाग।

आयुर्वेदीय उपयोग :- निघण्टु ग्रन्थों में श्वेत, पीत एवं कृष्ण भेद से तीन प्रकार के भृंगराज कहे गये हैं। रस-तिक्त, कटु, वीर्य-उष्ण, विपाक कटु, गुण-रसायन, संग्राही, रूक्ष, केश्य, वातकफ शामक, रागोपयोग-पाण्डु, संग्रहणी, त्वचा के रोग, व्रण उपदंश, प्रतिश्याय एवं पलित में उपयोगी।

योग :- भंगराज तैल (खालित्य एवं पलित में), रसमण्डूर - (यकृत प्लीहा वृद्धि में)

मात्रा :- स्वरस १ से २ ग्राम।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - मयूरशिखा, वर्हिशिखा,
स्थानिक - मयूरजुटी, सहसमूली,
लैटिन - Elephanotopus scaber L.

स्वरूप :- इसके स्वावलम्बी क्षुप ८ से १५ इचं तक ऊँचे होते हैं। पत्तियाँ मूलीय गुच्छो में अभिलट्वाकार, अभिप्रासवत् और ४ से ६ इंच लम्बी होती हैं। पुष्प-मुण्ड में एवं प्रत्येक मुण्डक में पुष्पों की २ से ५ तक होती है। इस क्षेत्र के सभी छायादार स्थानों पर इसके पौध पाये जाते हैं। मुण्डक गुच्छ को कोणपुष्पों के साथ मयूर की शिखा सद्यश दिखाई देती है इसी कारण इसे मयूरजुटी (मयूरशिखा) कहते हैं। इसकी जड़ गुच्छेदार होती है, इसी कारण इसे सहंसमूली कहते हैं।

स्थानिक उपयोग :- आदिवासी रक्तातिसार में मूलचूर्ण का उपयोग करते हैं। आधा शीशी तथा प्रसूता विकारों में मूल का उपयोग ग्रामीण लोग करते हैं। मूल को तेल में पकाकर ज्वर में वाह्य प्रयोग भी ग्रामीण करते हैं। वल्य के रूप में भी मूलचूर्ण का प्रयोग होता है।

विशेष :- आयुर्वेदिय ग्रन्थों के लेखकें ने कतिपय स्थलो पर वनगोजिह्व के नाम से उल्लेख किया है। ठा. वलवन्त सिंह ने इसे शास्त्रीय मयूरशिखा माना है। लेखक के विचार से स्थानिक नामों एवं गुणधर्मो के आधार पर इस वनस्पति का उपयोग मयूरशिखा के स्थान पर करना शास्त्रसंगत है।

सुश्रुत ने इसे अतिसार नाशक एवं शोठल ने गर्भस्थापक माना है।

यथा – मूलं भुजंगारि शिखासमुत्थं, दुग्धेन संयुक्त मृतौनिपीतम्।
गर्भस्य हेतु प्रभादाजनस्य, स्याल्लक्ष्मणामूल मपीत्यमेव।। "शोठल"

द्रव्य नाम :- संस्कृत - उत्कंटक,
स्थानिक - ऊंटकटेश, गोखुला,
लैटिन - Echinops echinatus Roxb.

स्वरूप :- पत्र तलोत्थ एक वर्षायु काण्ड वाला क्षुप है। पत्तियाँ आयताकार पक्षवत् खण्डित, लट्वाकार कण्टकित होते हैं। पुष्प मुण्डक संयुक्त गोलाकार एवं तीक्ष्ण कांटों से युक्त होते हैं। छोटानागपुर एवं संथाल के शुष्क स्थानों पर यह सर्वत्र पाया जाता है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी बीजों का उपयोग धातुदौर्बल्य (वीर्यदोष) में करते हैं। पंचाग का उपयोग दीपन, मूत्रल और रक्तशोधक के रूप में किया जाता है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - छिक्किका, क्षवक,
स्थानिक - नखधिकनी,
लैटिन - Centipeda minima (L.) A. Br.

स्वरूप :- इसके बहुत छोटे, सुन्दर और प्रसरणशील क्षुप होते हैं। छोटी-छोटी शाखायें मूल से निकलकर चारों तरफ फैलती हैं। पत्तियाँ छोटी अभिप्रासवत्, आयताकार एवं दन्तुर होती हैं। मुण्डक सूक्ष्म और गोलाकार पीताभ-हरित वर्ण के होते हैं। इस क्षेत्र के आद्रभूमि में सर्वत्र इसके पौध पाये जाते हैं।

स्थानिक उपयोग :- ग्रामीण लोग सिर में भारीपन होने अथवा आधाशीसी होने पर इसके स्वरस या चूर्ण का नस्य प्रयोग करते हैं। जिससे शिरःशूल में छींकें आकार लाभ होता है।

आयुर्वेदी उपयोग :- चरक एवं सुश्रुत संहिता में शिरोविरेचक द्रव्यो में नखछिकनी का उल्लेख है। यह कटु गुणों वाली छिक्काजन औषधि है।

द्रव्य नाम :- हिन्दी - मुसतरू,
संथाली - भेदियाचिम,
लैटिन - Gramgea maderaspatana, Poir.

स्वरूप :- इसके प्रसरणशील रोमश तथा क्षुप होते हैं। पत्तियाँ पक्षवत् खण्डित, विषमलिंगि, तथ गोल मुण्डक में होते हैं। धान की क्यारियों तथा नम जमीन पर इसके क्षुप पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- स्थानिक आदिवासी मूल एवं पत्र का उपयोग आमाशयिक विकारों में दीपन के लिये प्रयोग करते हैं। यह उत्तम दीपन एवं ग्राही है। संकोच-विकास प्रतिबन्धक और आर्तवजनन है। कुछ आधुनिक ग्रन्थकार देशी अकरकरा भी कहते हैं।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - हिलमोचिका, हिंगचा,
स्थानिक - हरकुच,
लैटिन - Enhydra blwctuans Lour.

स्वरूप :- यह प्रसरणशील, जलीयस्थानों, नदी के किनारों पर उगने वाली वनस्पति है। पत्तियाँ अभिमुख, अवृन्त, कमचौड़ी, आयताकार और दन्तुर होती हैं। पुष्प मुण्डक में पीताभ वर्ण के होते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी इसके पत्र शाक का उपयोग करते हैं। यह कटु, सर, एवं त्वचा के विकारों मे उपयोगी है। कुछ विद्वान् इसे जलीय ब्राह्मी भी कहते हैं। इसमें ब्राह्मी सद्यश गुण पाये जाते हैं।

विशेष :- लेखक के विचार से हिलमोचिका जलीय ब्राह्मी के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। अधिकतर विद्वानो ने नीरब्राह्मी को वकोपा मोनियारी को माना है। स्थानिक प्रयोगों के आधार पर कटु, पित्तघ्न, सारक त्वक्पूयरोगहर है। जिसकी साद्यश्यता ब्राह्मी के गुण-धर्मो से मिलती है। कुछ टीकाकार हिलमोचिका को हुरहुर भी कहते हैं।

यथा - हिलमोची शंखधरा जलब्राह्मी प्रकीर्तिता।
जलब्रह्मी सराशोफ कुष्ठपित्तकफ प्रणुत् ।। "कै. नि."

द्रव्य नाम :- स्थानिक - हिरनखुनी, सादिमोदि,
लैटिन - Emilia sonchifolia DC.

स्वरूप :- शाकीय तलात्थ क्षुप जाति की वनस्पति है। मूल से पत्र गुच्छों में निकलते हैं। पत्तियाँ आकार में वीणावत्, पक्षवत्, खण्डित आयताकार-प्रासवत् होते हैं। पुष्प गुलाबी नालाकार एवं मुण्डक में होते हैं। खेतों में इसके क्षुप प्रायः पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- मूल का उपयोग मूत्रल के रूप में करते हैं। पंचाग का फांट ज्वरघ्न एवं स्वेदजनन के रूप में करते हैं। यकृत विकारों में इसका क्वाथ प्रयोग करते हैं। पत्र स्वरस का उपयोग नेत्रविन्दु के रूप में रतौंघी में किया जाता है।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - दांतरीसा, पित्तहरी,
लैटिन - Glossocardia linearifolia Coss.

स्वरूप :- इसके सुन्दर छोटे एवं गन्धयुक्त क्षुप पाये जाते हैं। यह चिकना एवं मृदुंशाखीय होता है। पत्तियाँ पक्षवत् खण्डित, एकान्तर एवं रेखाकार होती है। पुष्प पीले रंग के छोटे एवं मुण्डक में होते हैं। रांची, सिंहभूमि में यह प्रायः चट्टानों के ऊपर पाया जाता है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग दांतों से रक्तस्त्राव होने पर या दन्तकृमि में इसका उपयोग करते हैं। यह स्वेदजनक ज्वरघ्न और गर्भाशय संकोचक बतलाया गया है। अनार्त्तव में इसका उपयोग किया जाता है। कई प्रान्तों में इसे पित्तपापड़ा सद्यश गुणों के कारण पित्तापापड़ा कहते हैं।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - रास्ना,
स्थानिक - वायसुरई,
लैटिन - Pluchea lanceolata CB. Cl.

स्वरूप :- यह एकवर्षायु शाकीय वनस्पति है। मूल गांठदार एवं बहुवर्षायु होते हैं। पत्र अभिमुख सनायपत्र सद्यश, आयताकार, पुष्प गुच्छों में गुलाबी रंग के मुण्डकों में खिलते हैं। संथालपरगना एवं छोटानागपुर में कहीं -कहीं इसके पौध देखने को मिलते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- मूल क्वाथ का उपयोग ग्रामीण लोग आमवात एवं सन्धिवात में करते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- रस-तिक्त, वीर्य-उष्ण, विपाक-कटु, गुण-वातशामक, आमपाचन, वात-कफ-शामक, रोगोपयोग-आमवात-शोथ, ज्वर, वातरक्त एवं वातरोगों में उपयोगी।

योग :- रास्नासपृकक्वाथ-वातरोग।

विशेष :- बिहार एवं बंगाल के वैद्य Vanda RoxburghII नामक वनस्पति का उपयोग रास्ना के नाम से करते हैं। निघटुकारों ने पत्ररास्ना मूलरास्ना एवं तृणरास्ना भेद से उल्लेख किया है। पत्ररास्ना से वायसुरई का ग्रहण करना चाहिये।

यथा – रास्नातु त्रिविधा प्रोक्ता मूलं, पत्रं तृणं तथा।
ज्ञेये मूलदले श्रेष्ठे, तृणरास्नातु मध्यमा।। "रा. नि.।।"

द्रव्य नाम :- संस्कृत - मुण्डी,
स्थानिक - वैलाजा, मुरिसा, गोडिलि,
लैटिन - Spaeranthus indicus L.

स्वरूप :- मुण्डी के प्रसरणशील एवं गंध युक्त क्षुप होते हैं। जिनके काण्ड सपक्ष, पत्तियाँ अवृन्त, अभिलट्वाकार अथवा अभिप्रासवत्, दन्तुर होती हैं। पुष्प मुण्डक में गुलाबी रंग के होते हैं। धान

के खेतों में यह सर्वत्र पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण लोग मुण्डी का उपयोग मूत्रजनन और रक्त-क्षोभक के लिये करते हैं। पंचाग स्वरस को हलका गरमकर एवं इसमें थोड़ा लवण मिलाकर कब्ज को दूर करने के लिये पिलाते हैं।

आयुर्वेदीय उनयोग :- तिक्त, उष्ण वीर्य, उत्तम-रक्तशोधक, व्रण, विद्रधी श्लीषपद और अपची में उपयोगी है।

योग :- मूण्डीअर्क (रक्तदोष)



द्रव्य नाम :- संस्कृत - सोमराजी, अरण्यजीरक,
स्थानिक - घोड़ाजीरी, सेवराज,
लैटिन - Centratherum anthelminticum kntz. = (Vernonia anthelmintica)

स्वरूप :- इसकेक्षुप एक वर्षायु २ से ५ फीट ऊंचे होते हैं। पत्तियाँ दन्तुर लम्बाग्र, अभिलट्वाकार एवं प्रासवत् होती हैं। पुष्प-जामुनीरंग के होते हैं। बीज-लम्बें, कृष्णाभ और कड़वा होता है। इसके क्षुप गांवो के आस-पास प्रायः लगाये हुये पाये जाते हैं। बीज कालीजीरी के नाम के बाजार में बिकते हैं।

स्थानिक उपयोग :- आदिवासी बीज का उपयोग उदरकृमि एवं त्वचा के रोगों में करते हैं।

आयुर्वेदी उपयोग :- कटु, तिक्त, उष्ण वीर्य, व्रणनाशक, कृमिघ्न, कटु-पौष्ठिक, ज्वरघ्न, मूत्रजनन, स्तन्यजनन, त्वक्दोषहर एवं कण्डूध्न है।

यथा – अरण्यजीरक तिक्त, कृमिकुष्ठकफापहः।
तीक्ष्णो विषकण्डूति प्रशमनश्च स।। "रा. नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - सहदेवी, सहदेई,
स्थानिक - झुरझुरी, वरनगोम,
लैटिन - Vernonia cinerea Less.

स्वरूप :- इसके क्षुप स्वावलम्बी, प्रसरणशील एवं ३ फीट तक ऊंचे होते हैं। काण्ड-मृदु, रोमश, पत्तियाँ कई तरह की, रेखाकार, अण्डाकार एवं दन्तुर होती हैं। पुष्प जामुनीरंग के मुण्डक में होते हैं। इस क्षेत्र के खुली जमीन पर सहदेई के पौध वर्षाकाल में सर्वत्र पाये जाते हैं।

स्थानिक उपयोग :- आदिवासी लोग पंचाग का उपयोग शोथ दबाने के लिये करते हैं। इसका स्वरस ज्वरों में प्रयोग करते हैं। तथा शरीर पर भी मला जाता है।

आयुर्वेदीय उपयोग :- रस-मधुर, वीर्य-शीत, विपाक-मधुर, गुण-पौष्ठिक, अग्निवर्धक, स्वेदल, त्रिदोषघ्न, रोगोपयोग-ज्वरकास, श्वास, कृमि। विशेषरूप से यह वेदना शामक, स्वेदल और ज्वरघ्न हैं। ज्वरो में सहदेवी के मूल को सिर मे धारण करने का विधान है।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - डोरावाहा,
लैटिन - Vernonia roxburghii Less.

स्वरूप :- स्वावलम्बी ३ से ४ फीट ऊँचे क्षुप पाये जाते हैं। पर्ण-अवृन्त, अभिप्रासवत् एवं दन्तुर, पुष्प-मुण्डक में एवं जामुनी रंग के होते हैं।

स्थानिक उपयोग :- इसकी पत्ती को पीस कर हैजा में दिया जाता है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - वन्ध्यावरी,
स्थानिक - वजरंगी, वंझोरी,
लैटिन - Vicoa indica L

स्वरूप :- यह तलोत्थ एक वर्षायु २ से ३ फीट ऊंचा क्षुप है। काण्ड-मृदु, खर, स्पर्श, पर्ण-अभिमुख, आयताकार पुष्प-मुण्डक में पीतवर्ण के होते हैं। इस क्षेत्र में छोटानागपुर एवं संथाल परगना के नमदार एवं ढालदार स्थानों पर इसके पोध पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी महिलाये पंचाग कल्क का उपयोग १० से १५ ग्रान्न की मात्रा में गोलकी (मरिच) के साथ प्रसूताकाल के बाद ३ से ४ दिन तक सेवन करते हैं। ऐसा करने पर स्थाई वांधपर आ जाता है। ऐसा इनका विश्वास है।

विशेष :- परिवार नियोजन हेतु कतिपय शोध संस्था में इस औषधि पर शोध कार्य कर रही है। केन्द्रीय आयुर्वेद अनुसंधान परिषद् भी इसके कार्मुकता का अध्ययन एवं परीक्षण कर रही है। विस्तृत वर्णन प्रारम्भ मे किया गया है।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - महहट्टिका, मुरेठी,
लैटिन :- Spilanthes acmella L.

स्वरूप :- मृदुशाकीय वनस्पति है। पत्ती आमने-सामने, लट्वाकार, प्रासवत् एवं आरावत्धारवाली होती है। पुष्प पीतवर्ण के मुण्डक में पुष्पदण्ड के अग्र पर होते हैं। नमदार स्थानों पर इसके पौध पाये जाते हैं। इसकी अन्य किस्म बागों में लगाई हुई पाई जाती है जिसे S. oleracea कहते हैं।

स्थाकि प्रयोग :- इसके मुण्डक को मुख में रखने से लालस्त्राव होता है। यह दांतो की पीड़ा एवं मसूड़ो के शोथ में लाभ करता है।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - अकलकोहड़ी,
लैटिन - Tridex procumbens. L.

स्वरूप :- इसके मृदु बहुशाखीय क्षुप होते हैं। पत्तियाँ - अभिमुख, खण्डित दन्तुर, रोमश एवं सूक्ष्मवृन्त वाली होती हैं। पुष्प-मुण्डक में पीताभ वर्ण के एवं पुष्पदण्डों पर निकले हुये होते हैं। यह वनस्पति शुष्क भूमि एवं सड़को के आसपास सर्वत्र पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी रक्तस्त्राव, घाव (चोट) एवं शोथ में वाह्यप्रयोग करते हैं। इसमें रक्तसंग्राहक गुण होता है। भृंगराज के स्थान पर भी कतिपय स्थानों पर इसका संग्रह किया जाता है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - ब्रह्मदण्डी,
स्थानिक - कंटेश,
लैटिन - Volutarella divaricata Benth.

स्वरूप :- यह जमीन पर फैलने वाला एक वर्षायु क्षुप है। काण्ड द्विविभक्त, नालीदार, पत्तियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की, अवृन्त आयताकार, अखण्ड, दन्तुर, खण्डित और प्रायः लहरदार होते हैं। पत्रावली के बाहरी भाग कण्टकित, पुष्प मुण्डक में जामुनी रंग के प्रायः होते हैं। पत्र एवं फल कुछ कण्टकित होते हैं रेतली भूमि एवं नदियों के किनारे इसके पौध होते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- स्थानिक लोग पंचाग क्वाथ का उपयोग ज्वरघ्न एवं कफघ्न के रूप में करते हैं। मज्जातन्तु के रोगो में उपयोगी है।

विशेष :- निघण्टु ग्रन्थों में व्रह्मदण्डी का उल्लेख मिलता है। गुण धर्मो के आधार पर यह कटु, उष्ण, वातघ्न कफघ्न एवं शोफहर है।

यथा – व्रह्मदण्डी कटूष्णास्यात् कफशोफ निलापहा। "रा. नि."

कुछ टीकाकार Lamprachaenium microcephalum Benth को ब्रह्मदण्डी मानते है। यह सुगन्धित एवं कटु गुणों वाला है जिसे कुछ विद्धान अजदण्डी कहते हैं।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - पीतमृंगराज

स्थानिक - भांगरा

लैटिन - Wedelia calendulacea Less.

स्वरूप :- यह प्रसरणशील स्वावलम्बी क्षुप जाति की वनस्पति है। पत्तियां आयताकार, प्रासवत् २ से ३ ऊंचे लम्बी दन्तुर होते है। पुष्प-पीलेरंग के मुण्डक में जो कि संख्या में लगभग ८ होते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- श्वेतभृंगराज की तरह ग्रामीण लोग त्वचा के रोग, कण्डू, व्रण कुष्ठ आदि रोगों में इसका उपयोग करते हैं।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - आर्तगल,

स्थानिक - करोनी, करूअनी,

लैटिन - Xanthium strumarium. Linn

स्वरूप :-इसके क्षुप १ से ३ फीट ऊंची रूक्ष एवं कर्कश होते हैं।पत्तियाँ सवृन्त, लट्वाकार-त्रिकोणाकार श्वेत खण्डित एवं दन्तुर होती है। मुण्डक एक लिंगी होते हैं। पुष्प-हरित-पीताभ, फल-कठोर, कण्टकित होता है। इसके पौध प्रायः शुष्क स्थानों नदी-नालों के किनारे पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- फलों का अञ्जन आखों में रोहे हो जाने पर ग्रामीण करते हैं। रोहे वाले वालकों के गले में फलों की माला पहनाई जाती है। इसके फलों में भी मूत्रल गुण पाया जाता है। पत्र एवं मूल का उपयोग स्वेदजनन एवं शोथघ्न के रूप में किया जाता है।

विशेष :- यह विचारणीय वनस्पति है कुछ विद्वान् आर्तगल के सहचर पीतसैरयक का प्रर्याय मानते हैं।

यथा – अर्गरस्तुवर स्तिक्तो, व्रणशोधन रोपणः।
फलंतु मधुरं तिक्तं, ज्वरं पित्त कफास्तिजित्।। शा. नि.

केनाकुल (COMMELINACEAE)

द्रव्य नाम :- स्थानिक - कालीमूशली,

लैटिन - Aneilema scapiflorum Wight.

स्वरूप :- एकवर्षायु मूशली सद्यश कन्दिल शाकीय वनस्पति है। पुष्पदण्ड पत्तियाँ के मूल स्थान के निकलते हैं। सिंगभूमि रांची, छोटानागपुर में यह पाया जाता है।

स्थानिक प्रयोग :- मूलकन्दों का प्रयोग ग्रामीण लोग वल्य एवं वृंहण के रूप में करते हैं। बच्चों के मानसिक दौरे पड़ने पर इसके मूल का उपयोग किया जाता है।

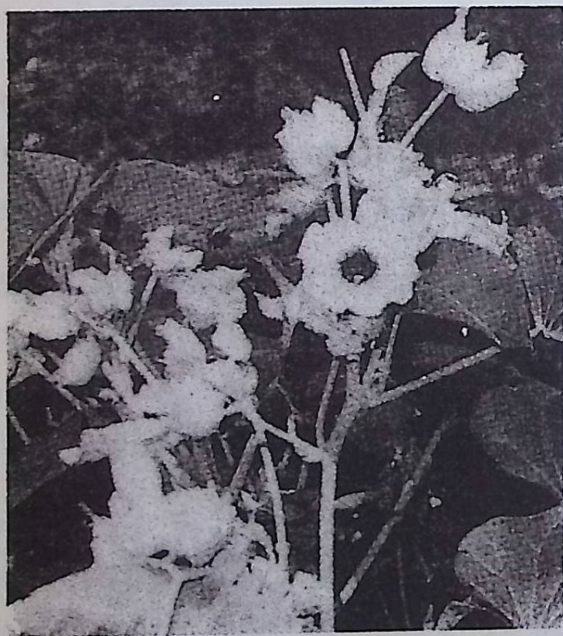
द्रव्य नाम :- स्थानिक - गगेड़, ओंडोरेड़,
लैटिन - Cynotis tuberosa sch.

स्वरूप - एकवर्षायु तलोत्थ शाकीय वनस्पति है। पर्ण-मूलोद्भव आयताकार भालाकार एवं मूल रोमश होते हैं। पुष्प-नीला वर्ण के, मूल-कन्दिल एवं गुच्छ बद्व होते हैं। इसके क्षुप छोटानागपुर एवं रांची में पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग मूल का उपयोग पुराने ज्वर में तथा पशुओं को कृमिघ्न के रूप में दिया जाता है।

टिप्पणी :- इस कुल की अन्य चिकित्सोपयोगी प्रजातियाँ इस क्षेत्र में पाई जाती है। इसमें केना Commelina benghalensis कहते हैं। यह वनस्पति गर्म स्थानो पर पाई जाती है एवं शीतल तथा मूत्रल होती है।

त्रिवृतकुल - (CONVOLVULACEAE)



द्रव्य नाम :- संस्कृत - वृद्धदारूक (प्रचलित)
स्थानिक - घावपत्ता, विधारा,
लैटिन - Argyreia speciosa Sweet.

स्वरूप :- इसकी परिसृत एवं आरोही लतायें होती हैं। पत्तियाँ व्यास में ४ से ६ इंच ऊपरी सतह मसृण अधः पृष्ठ श्वेताभ मखमली रोमावरण युक्त होते हैं। पत्र आकार में लट्वाकार, हृदयाकार और सवृन्त होते हैं। पुष्प श्वेत, जामुनी गुलाबी रंग के होते हैं इसके फल कोषीय एवं बीज संख्या में ४ से ७ तक गोल मसृण होते हैं। इनको वंगीय वैद्य विधारा बीज कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग पत्तियों का उपयोग व्रण को पकाने और भरने के लिये करते हैं। मूल का उपयोग आमवात एवं सन्धिगत विकारों में करते हैं। इसकी अन्य प्रजाति संथाल परगना में पाई जाती है जिसे ग्रामीण लोग कुटाकाटिजा Argyria cymosa Sweet कहते है। इसके मूल स्वरस का उपयोग नमक के साथ मिलाकर बच्चों के प्रवाहिका मे करते हैं।

टिप्पणी :- बाजार में विघारा के नाम से इसके काण्ड, मूल एवं बीजों का प्रयोग किया जाता है। शास्त्रीय वृद्धदाराक Ipomoea petaloidea हैं। देखिये आईपोमिया में।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - शंखपुष्पी,
स्थानिक - शंखादुली,
लैटिन - Convolvulus pluricaulis chois

स्वरूप :- इसके प्रसरणशील एक वर्षायु क्षुप होते हैं। इसकी मृदु शाखायें जमीन पर परिसृत रहती हैं। पत्तियाँ रेखाकार या नीचे की ओर न्यूनाधिक अभिप्रासवत् होती हैं। पुष्प हलके गुलाबी श्वेतरंग के कुप्पी के आकार के होते हैं। रांची, सिंगभूमि में शुष्क खेतों के आसपास यह वनस्पति पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग हृदयविकार एवं मानसिक दुर्बलता में पंचाग चूर्ण का उपयोग दूध के साथ करते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- रस-कषाय, कटु, तिक्त, वीर्य-अनुष्ण, विपाक-कटु, गुण-सारक, मेध्य, वृष्य, वल्य, वात-पित्त शामक, रसायन। रोगोपयोग-उन्माद, अपस्मार, अनिद्रा, कृमि, कुष्ठ एवं मस्तिष्क विकारों में उपयोगी।

योग :- शंखपुष्पी चूर्ण (स्मृति-बुद्धि वर्धक)
शंखपुष्पी चूर्ण (मानसिक दोष)

विशेष :- पुष्पवर्ण भेद से यह रक्त श्वेत और नील तीन प्रकार की होती है। नील पुष्पी को विष्णुक्रान्ता E. alsinoides Linn. कहते हैं। इसकी प्रधान क्रिया मस्तिष्क पर होती है और यह मस्तिष्क तंतुओं की शक्ति देने में ब्राह्मी और वच के गुणों में समानता रखती है। रक्तचाप (ब्लप्रेशर) पर अच्छा कारगर है।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - हिरनखुरी,
लैटिन - Convolvulus arvensis L.

स्वरूप :- इसकी एक वर्षायु मृदु एवं आरोही लतायें होती हैं। यह आस-पास के पौधों को लपेटकर बढ़ती है जो कि खेतों एवं बागों में पाई जाती है। पत्तियाँ १ से ३ इंच लम्बी, लट्वाकार, हृदयवत् होती हैं। पुष्प-सुन्दर एवं हलके हलके लाल-गुलाबी रंग के सफेद धारीदार होती हैं। इस क्षेत्र में यह सर्वत्र पाई जाती है।

स्थानिक उपयोग :- मूल का उपयोग ग्रामीण लोग दस्तावर के लिये करते हैं।

द्रव्य नाम :- स्थानिक -हुरमी, हुरमेट,
संथाली - दरकुली,
लैटिन - Erycibe paniculata Roxb.

स्वरूप :- इसकी विस्तृत आरोही लतायें होती हैं। काण्ड शंक्वाकार, टहनियाँ रोमावरण युक्त होती हैं। पत्तियाँ अखण्ड-आयताकार, अण्डाकार, अभिलट्वाकार, पुष्प पीताभ-श्वेत एवं मञ्जरी में निकलते हैं। इसकी लतायें चम्पारन, छोटानागपुर, संथालपरगना आदि स्थानों के नदी-नालों के आस-पास पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग छाल का प्रयोग हैजा में करते हैं। इसका फल खाया जाता है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - आकाशवल्ली,
स्थानिक - अमरबेल, जामसिंग,
लैटिन - Cuscta reflexa Roxb.

स्वरूप :- इसकी परोपजीवी लतायें प्रायः पीले तथा पतली काण्ड की होती हैं। इसकी लतायें बेर-बबूल आदि वृक्षों पर फैली रहती हैं। इसकी अन्य प्रजाति इस क्षेत्र में पाई जाती हैं जिसे संथाली अलगजारी Cuscuta chinensis कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी काण्ड का उपयोग वातरोगो में करते हैं। यह पित्तसारक और यकृतोत्तेजक है।

टिप्पणी :- कुछ विद्वान् आकाशवल्ली Cassytha filiformis को मानते हैं। यह परोपजीवी पौधा है। गुणों में कटु, मधुर, वृष्य, रसायन, वल्य एवं पित्तनाशक है।

यथा – आकाशवल्ली कटुका, मधुरापित्त नाशिनी।
वृष्या रसायनी वल्या, दिब्यौषधिपरास्मृता।।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - मिचाई, कौडेना,
लैटिन - Calonvction muricatum House.

स्वरूप :- इसकी आरोही लतायें होती हैं। पत्तियाँ चिकनी ३ से ५ इंच तक चौड़ाई लिये हुये होती हैं। पुष्प गुलाबी या जामुनी रंग के होते हैं। फल-वृताकार एवं नोकदार होता है। फल के अन्दर ३ या ४ बीज पाये जाते हैं। हजारीबाग, पलामू में प्रायः गावों के आस-पास बेल पाई जाती है।

स्थानिकप्रयोग :- आदिवासी लोग मूल को विषघ्न मानते हैं। कच्चे बीजों को खाया जाता है। सर्प विष में बीज उपयोगी माने जाते हैं। कच्चे फलों का शाक आदिवासी बनाकर खाते हैं।

टिप्पणी :- अन्य प्रजाति भी इस क्षेत्र में पाई जाती है जिसे चन्द्रकान्ति या चांदनी कहते हैं। इसके पुष्प सुगन्धयुक्त बड़े सफेद रंग के रात में खिलने वाले होते हैं। इसके भी कच्चे बीजो को खाया जाता है एवं सर्पविष में बीज उपयोगी माने जाते हैं।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - मूषाकर्णी,
स्थानिक - मूषाकन्नी,
लैटिन - Ipomaea reniformis Chois.

स्वरूप :- इसके प्रसरी क्षुप होते हैं। काण्ड को ग्रन्थियों से मूल निकले रहते हैं। पत्तियाँ सवृन्त, छोटी, वृताकार, कभी-कभी लट्वाकार, मूषिक के कानों सदृश होती हैं। पुष्प छोटे तथा पीले रंग के होते हैं। फल दो-दो बीज वाले होते हैं। इसकी बेल छोटानागपुर तथा सिंगभूमि में पाये जाते हैं।

स्थानिक उपयोग :- आदिवासी पंचाग का उपयोग चर्मरोगों में करते हैं। यह त्वग् दोषहर एवं मूत्रजनन है।

आयुर्वेदीय उपयोग :- संहिताग्रन्थों में मूषिककर्णी मूषिकाह्ववया, आखुपर्णिका आदि नामों से उल्लेख मिलता है। निघण्टुग्रन्थों मे भी कतिपय पर्याय इस वनस्पति के दिये गये हैं। अधिकतर विद्धानों ने Ipomoea को ही मूषाकर्णी माना है। अभी भी यह वनस्पति विचारधीन है। गुणों में यह वनस्पति कटु, ऊष्ण, कफपित्तहर, सर, विषघ्न, ज्वरघ्न एवं नेत्ररोगहर है।

यथा – आखुकर्णी कटूष्णाश्च, कफपित्त हरा सरा।
आनाहज्वर शूलार्ति, नाशिनी पाचिनीपरा।। रा. नि.

द्रव्य नाम :- संस्कृत - वृद्धदारूक,
स्थानिक - चौघारा, विघारा,
लैटिन - Ipomea petaloidea Chois.

स्वरूप :- इसकी विस्तृत एवं आरोही लतायें होती हैं। काण्ड मसृण एवं उसपर उभरी हुई धारियाँ २ से ४ की संख्या में होती हैं। पत्तियाँ सवृन्त, लट्वाकार, प्रासवत्, आयताकार एवं रक्ताभ वर्ण की होती हैं। पुष्प पीताभ श्वेतवर्ण के फल चार फांक वाला होता है। मूल एवं काण्ड दूध-युक्त होता है। इसकी लतायें रांची, सिंगभूमि आदि में सर्वत्र पाई जाती हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी बीज एवं मूल का उपयोग चिकित्सा में करते है।

आयुर्वेदीय उपयोग :- कफ-वातनाशक, पिच्छिल, वल्य, कासघ्न। आयुर्वेद ग्रन्थों में विधारामूल एवं बीज का उपयोग मिलता है। बाजार में घावपत्ता Argyreia के मूल एवं बीज का उपयोग किया जाता है। संहिता ग्रन्थों में भी इसका उल्लेख मिलता है। लेखक के विचार से निघण्टुग्रन्थों में वर्णित

दो प्रकार का विधारा का उपयोग व्यावहारिक है।

१. वृद्धादारूक (घगलान्त्री) Ipomoea petaloidea Chois.

२. विघारा (घावपत्ता) Argyreia speciosa sweet.

यथा – वृद्धदारूद्धयं मौल्यं, पिच्छिलंकफवातहृत्।
बल्यंकासामदोषघ्नं, द्धितीयंस्वल्पबीर्यदम्।। "रा. नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - त्रिवृत, (त्रिधारा) श्यामां,
स्थानिक - वनएटका, निशोथ,
लैटिन - Ipomaea turpethum Br.

स्वरूप :- इसकी बहुवर्षायु तथा बड़ी आरोही लतायें पाई जाती हैं। काण्ड के ऊपर ३-४ धरायें या पंख सद्यश उभार होते हैं। पर्ण-लट्वाकार, आयताकार, कुण्ठित एवं सवृन्त होते हैं। पुष्प-श्वेत वर्ण के एवं घण्टिकाकार होते हैं। फल-कोषीय एवं उनके अन्दर चिकने एवं भूरे बीज होते हैं। इसकी लतायें गढ़वा, सिंगभूमि, पलामू आदि क्षेत्रों में पाई जाती है।

स्थानिक उपयोग :- आदिवासी लोग मूल का प्रयोग सुखविरेचन हेतु करते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- रस-कटु, तिक्त, मधुर, कषाय, वीर्य-ऊष्ण, विपाक-कटु विरेचक, कफ-पित्तशामक, रोगोपयोग-उदर रोग, ज्वर, यकृत-प्लीहा वृद्धि में उपयोगी।

विशेष :- इसकी कृष्ण (श्यामा) श्वेत और रक्त वर्ण भेद से तीन जातियाँ होती हैं। औषध प्रभाव में श्वेत जाति उपयोगी है।

यथा – ततोहीनगुणा श्यामा, तीक्ष्णा तीव्रविरेचनी।
कण्ठोत्कर्षण सम्मोह मूर्च्छादाह भ्रम प्रदा ।। "कै.नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - कृष्णबीज (कालादाना),
स्थानिक - कालादाना,
लैटिन - Ipomaea hederacea Jacq.

स्वरूप :- इसकी मृदु आरोही लतायें होती हैं। पत्तियाँ सवृन्त, लोमयुक्त, लट्वाकार, त्रिखण्ड, पुष्प-सुन्दर एवं नीले एवं गुलाबी रंग के होते हैं। इसकी बेल छोटानागपुर और संथालपरगना में खेतों के बाड़ो पर सर्वत्र पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग :- बीज चूर्ण का उपयोग आदिवासी लोग सुखविरेचक हेतु करते हैं।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - कलम्बी, नाड़ीशाक,
स्थानिक - कलमीशाक, करमी,
लैटिन - Ipomaea reptans Pair.

स्वरूप :- इसकी बेल जलाशयों में पानी के ऊपर या जलीय स्थानों के समीप पाई जाती है। पत्तियाँ प्रासवत्, अण्डाकार, आयताकार एवं लम्बे वृन्त वाली होती हैं। पलामू, हजारीबाग, सिंगभूमि के जलाशयों के समीप इसकी बेल पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग पत्तों का शाक बनाकर खाते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- संहिता ग्रन्थों में कलम्ब, नाड़ीशाक, नालिका आदि नामों से उल्लेख मिलता है। यह मधुर, रस एवं शीतल गुणों वाला होता है। पत्रशाकों में इसका उल्लेख है।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - वाघचौर, दुधवनिया,
लैटिन - Leattsomia setosa Roxb.

स्वरूप :- इसकी दुग्धमय आरोही लता होती है। काण्ड एवं पत्तियाँ रामों से युक्त होती है। पत्तियाँ लट्वाकार-प्रासवत् कुण्ठिताग्र एवं तीक्ष्ण नोक वाली होती हैं। पुष्प-कुप्पी के आकार के सफेद एवं जामुनी रंग के होते हैं। इसकी लतायें चम्पारण रांची, सिंगभूमि में पाई जाती हैं। मूल-शकरकन्द सदृश और दूध वाला होता है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग मूलकन्द का उपयोग स्तन्यवर्धक के रूप में करते हैं। कन्दों को खाया जाता है।

विशेष :- सम्भवतः यह शास्त्रीय क्षीरविदारी हो सकता है। इसलिये इस पर विचार किया जा सकता है।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - कामलसा,
लैटिन - Quamoclit vulgaris Choisy.

स्वरूप :- इसकी सुन्दर आरोही लतायें लगाई हुई पाई जाती हैं। काण्ड पतले, पत्तियाँ पक्षवत्, सदल एवं पुष्प रक्तवर्ण के होते है।

स्थानिक उपयोग :- ग्रामीण लोग पत्ती का उपयोग रक्त संग्राहक के रूप में करते हैं।

नोट :- इस कुल में अन्य कतिपय प्रजातियां पाई जाती हैं। जिसमें शकरकन्द मुख्य हैं। वालुमिश्रित जमीन में खेती की जाती है। इसके कन्द मधुर और पौष्टिक होते हैं। यह दक्षिण अमेरिका का मूल निवासी पौधा है। सम्भवतः पूर्तगालियों द्वारा इसे भारत में लाया गया है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - फंजिका,
स्थानिक - पैलवाशाक,
लैटिन - Rivea ornata chois.

स्वरूप :- यह आरोही लता जाति की वनस्पति है। शाखओं पर रेशम के तुल्य रोम होते हैं। पत्तियाँ वृताकार, हृदयवत्, अधरतल मखमली रंग का एवं सवृन्त होते हैं। पुष्प श्वेतवर्ण कुप्पीनुमा होते हैं। इसकी लतायें पलामू, रांची, मुंगेर संथालपरगना आदि क्षेत्रों में पाई जाती हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग कोमल पत्तियाँ का शाक बनाकर खाते हैं। यह वातरोगनाशक, दीपन और रोचक है। इसकी अन्य प्रजाति को Rivea hypocratariformis कहते हैं। इसका भी ग्रामीण लोग स्थानिक चिकित्सा में उपयोग करते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- निघण्टु ग्रन्थों में फज्जी, फज्जिका के नाम से पत्रशाक के रूप में इस वनस्पति का उल्लेख मिलता है। यह वातघ्न, ग्राही दीपन, श्वास-कास एवं विषनाशक है।

यथा – वातमयहरं ग्राहि दीपनं रूचिदायकम्।
फज्जीस्वल्पमनाश्लेष्म, श्वासकासविषापहा।। "कै.नि."

अंकोटकुल - (CORNACEAE)



द्रव्य नाम :- संस्कृत - अंकोल, (अंकोट)
स्थानिक - अंकोल, ठेला, उडगा,
लैटिन - Alangium lamarekii Thw.

स्वरूप :- इसके झाड़ीदार, प्रायः छोटे और कांटेदार वृक्ष होते हैं। पत्तियाँ आयताकार-प्रासवत् अथवा अण्डाकार होती हैं, पुष्प सफेद रंग के, फल पकने पर काले, मांसल एवं बीज गुठलीदार होते हैं। इसकी अन्य प्रजाति छोटानागपुर, संथालपरगना में पाई जाती है जिसे अखनी Alangium begomifolium कहते हैं। यह प्रायः नदी-नालों के किनारे में पाया जाता है।

स्थानिक उपयोग :- आदिवासी लोग छाल, मूल और बीजों का चिकित्सा मे उपयोग करते हैं। मूल चूर्ण का उपयोग ये लोग अतिसार में करते

हैं। तेल का उपयोग घाव भरने में करते हैं। पके फल खाये जाते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- गुण-लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, सारक, वात-कफहर, रोगोपयोग-वातव्याधि, रक्तदोष, अतिसार, अर्श एवं जलोदर में उपयोगी है। रक्तचाप को कम करने में भी उपयोगी है।

योग :- प्रमेहनाशक चूर्ण (पूयमेह), अतिसारनाशकवटी (रक्तातिसार), अंकोलतैल (व्रणरोपण में)।

संस्कृत साहित्य में अंकोल :- बाल्मिकीय रामायण में अंकोल का उल्लेख अयोध्याकांण्ड के चित्रकूट के प्रसंग में किष्कन्धा काण्ड के पंपासर के वनों में युद्ध काण्ड के मलयपर्वत के कानन आदि प्रसंगों में आया है।

अंकोट कटुकस्तिक्तः तीक्ष्णोष्णोरेचनस्तथा।
हन्तिशूलं विषं शोथं, विसर्प कृमिजातम्।। "प्रिय नि."

राजिकाकुल - (CRUCIFERAE)

स्वरूप :- संस्कृत - राजिका,
हिन्दी - राई,
लैटिन - Brassica juncea czern.
कालीसरसों (तरा) - B. nigra Koch.

स्वरूप :- एक वर्षायु शाकीय वनस्पति है। इसकी विशेष रूप से खेती की जाती है। पत्तों का शाक उपयोगी है। बीज का तेल के रूप में उपयोग किया जाता है। इसी प्रकार इस प्रजाति की निम्न किस्मों की खेती इस क्षेत्र में की जाती है। जो कि इस प्रकार से है - (१) सर्षप (सरसों) Brassica campestris var-sarson.
प्रयोज्य अंग - पत्रशाक, बीज, तैल,।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- गुण-व्रणपाचक, शोथहर, वामक, कर्म-अग्निमांद्य, अजीर्ण एवं विषहर, वाहयलेपादि में व्यवहृत एवं रक्षोघ्न भूतवाधाहर।

द्रव्य नाम :- शलगम, शलजम - Brassica rapa L.
फूल गोभी - Brassica oleracea L.

स्वरूप :- यह वर्षायु शाक है। इसकी भी इस क्षेत्र में खेती की जाती है। यह योरोपीय मूल निवासी शाक है। १६वीं एवं १७वीं शताब्दी में यह पौधा मुगलकाल में भारत में लाया गया है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - चन्द्रसूर, (होलों)
लैटिन - Lepidium sativus Linn.

स्वरूप :- एक वर्षायु शाकीय वनस्पति है। इस क्षेत्र में इसकी खेती की जाती हैं। यह फारस देश का आदिवासी पौधा है जो मुसलमानों के साथ भारत में आया है। भवप्रकाश निघण्टु में इसका उल्लेख मिलता है। फारसी में इसे तुख्म - इस्यंदान कहते हैं। बीज छोटे-छोटे और लाल रंग के होते हैं।

उपयोग :- चतुर्वीजों में इसका समावेश किया गया है जो कि दीपन, पाचन उदर विकार नाशक है। यह आर्तवजन ऊष्णवीर्य, कटु विषाकी है।

टिप्पणी :- इसकी अन्य किस्म की भी इस क्षेत्र में खेती की जाती है, जिसे तोदरी Lepidium ibenis L. कहते हैं। यह पौधा भी साऊथ योरोप का आदिवासी है जो कि भारत में मुसलमानों द्वारा लाया गया। पंचाग का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - तुवरी,
स्थानिक - तिउर,
लैटिन - Eruca sativa Lamk.

स्वरूप :- इसके पौधे शीतकाल में प्रायः फसलो के साथ पाये जाते हैं। पौधे सर्षप सद्यश, मसृण काण्ड वाले रोमश होते हैं। पुष्प-पीताभ-हलके बैंगनी रंग के होते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- बीज तैल का उपयोग चर्म रोगों में किया जाता है। बीजों का उपयोग मूत्रबाधा एवं रक्षोघ्न के रूप में किया जाता है। कुछ विद्वान् काली सरसों को तुवरी मानते हैं।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - मूलक,
स्थानिक - मूली,
लैटिन - Raphapus sativas L.

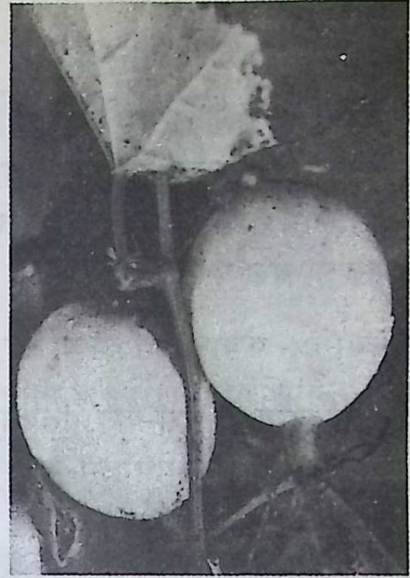
स्वरूप :- यह एक वर्षायु कन्दिल शाकीय वनस्पति है। इसकी विशेष रूप से खेती की जाती है। यह चीन एवं जापान का आदिवासी पौधा है। मूल एवं पत्र, फली, का शाकों में उपयोग किया जाता है। बीज-मूत्रल, कासघ्न एवं दीपक तथा सारक है। मूलस्वरस का उपयोग यकृत-प्लीहाविकार एवं मूत्रल के रूप में किया जाता है।

यथा – वालमूलं त्रिदोष्घ्नं वृद्धमूलं त्रिदोषकृत्।
शुष्कमूलं तु विज्ञेयं, परं श्वयथुनाशनम्।। "प्रिय नि. "

कोषातकीकुल (CUCURBITACEAE)

द्रव्य नाम :- संस्कृत - इन्द्रवारूणी,

स्थानिक - इन्द्रायण,
लैटिन - Citrullus colocynthis Schr.



स्वरूप :- इसकी प्रसरणशील, कर्कश एवं धूसर वर्ण की लतायें होती हैं। पत्तियाँ लट्वाकार, प्रासवत्, आयताकार, बहुखण्डित होती हैं। पुष्प पीले रंग के फल-गोल, चिकने पीत-चित्रित रंग के होते हैं। इसकी बेल रांची, छोटानागपुर पूर्णियाँ एवं संथालपरगना क्षेत्र के नदियों के किनारे एवं रेतली भूमि में पाई जाती हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग मूल और फल का चिकित्सा में उपयोग करते हैं। मूल चूर्ण वामक, कृमिघ्न एवं उदरशूलनाशक मानते हैं। बीज का उपयोग गर्भस्त्राव के रूप में किया जाता है। मवेशियों के पेट के रोगो में इसका उपयोग करते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- रस-कटु, तिक्त, वीर्य ऊष्ण, विपाक-कटु, गुण-रेचक, वात-कफ शामक, रोगोपयोग-प्लीहोदर, गुल्म, जलोदर, योनिशूल, मूत्ररोग, स्तनशोथ, नष्ठार्त्तव एवं कामला आदि रोगों में उपयोग किया जाता है।

मात्रा-मूल चूर्ण :- २ से ४ रत्ती, फलमज्जा आधा ग्राम से ग्राम अनुपान - जल, गोमूत्र, ग्वारपाठा।

विशेष :- यह उत्कृष्ठ विरेचक है। इसलिए अकेले इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए। एलुआ के साथ उपयोग करना श्रेयकर है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - कुष्माण्ड,
स्थानिक - रकसाकोंहड़ा,
लैटिन - Benincasa cerifera Savi.

स्वरूप :- इसकी एक वर्षायु लतायें होती हैं। जिसकी खेती की जाती हैं। फल - शीतल, मूत्रल एवं शाक बनाकर खाया जाता है पेठे की मिठाई अधिक रूप में बनाई जाती है।

आयुर्वेदीय उपयोग :- **कूष्माण्डं वृंहणंवृष्यं, शीतं पित्तापहं स्मृतम्।**
मधुरं मूत्रलं मेध्यं, क्षतक्षत विसर्पनुत।। "प्रिय नि,"

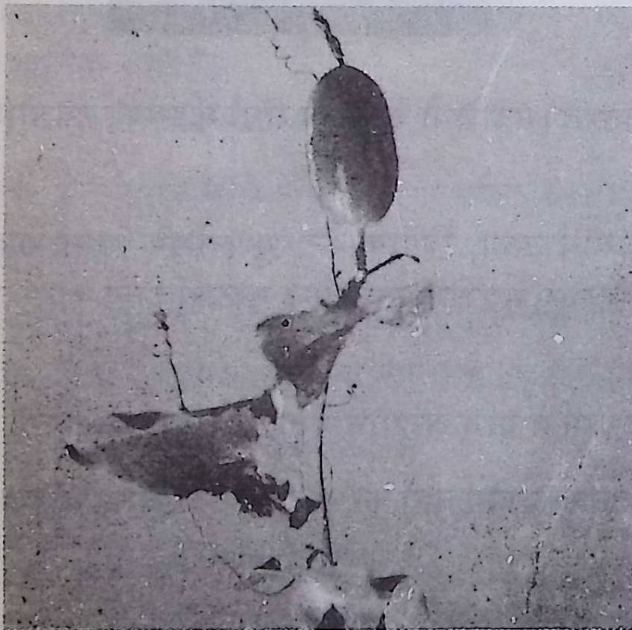
द्रव्य नाम :- संस्कृत - शिवलिंगी,

स्थानिक - पचगुरिया,
लैटिन - Bryonopsis laciniosa L.

स्वरूप :- इसकी आरोही लतायें होती हैं। पत्तियाँ मूल में हृदयवत् खण्डित २ से ४ इंच लम्बी, सवृन्त होती हैं। पुष्प छोटे पीताभ, फल-चिकना गोल, पकने पर सफेद धारियों वाला लालवर्ण का होता है। बीज शिवलिंग सदृश दिखाई देते हैं। छोटानागपुर, रांची, संथालपरगना आदि क्षेत्रों में झाड़ियों के सहारे इसकी बेल फैली रहती है।

स्थानिक प्रयोग :- पंचाग एवं बीजों का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है प्रयोज्य अंग-बीज।

आयुर्वेदीय उपयोग :- रस-कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, मधुर-विपाक, गुण- ज्वरघ्न, गर्भस्त्रावहर, रसायन, प्रजास्थापन, रोगोपयोग-गर्भस्त्राव, शोथ, पुत्रदा, प्रदर, प्रमेह एवं दाह में उपयोगी।



द्रव्य नाम :- संस्कृत - बिम्बी,
स्थानिक - कुन्दरू, कुन्दरी,
लैटिन :- Coccinia indica W of A.

स्वरूप :- इसकी आरोही लतायें पाई जाती है। काण्ड पांच कोणों वाला, पत्तियाँ लट्वाकार या वृताकार एवं खण्डित होती हैं। पुष्प गुच्छों में श्वेत वर्ण के, फल-चिकने, मांसल, बेलनाकार पकने पर लालरंग के होते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग कच्चे फल एवं पत्र का शाक में उपयोग करते हैं। मूल चूर्ण का उपयोग मूत्रविकार एवं प्रमेह में करते हैं। यह वन्य एवं कृषिभेद से दो प्रकार का होता है।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- तिक्त, सारक, कफ पित्तनाशक, पत्र एवं मूल स्वरस प्रमेह एवं मधुमेह में उपयोगी है।

यथा - वनबिम्वी सरातिक्ता, कफपित्त विनाशिनी।
तत्पत्र स्वरसः शस्तः, प्रमेहहतो विशेषतः। "प्रिय. नि."

संस्कृत साहित्य में बिम्बी :- संस्कृत साहित्य में बिम्बी, बिम्बिका, तुण्डी ओष्ठफला के नाम से इसका उल्लेख मिलता है। नायिका की अधरोष्ठ की लालिमा की उपमा पक्वबिम्बी फल सदृश है। महाकवि कालिदास ने यक्ष द्वारा मेघ अपनी भार्या के परिचयात्मक सौन्दर्य वर्णन के प्रसंग में

पक्वविम्बाधरोष्ठी "पद का प्रयोग किया है। भारवी आदि कवियों ने भी इस फल की रक्तिमा को ताम्र के समान व्यक्त की है। श्री हर्ष ने सन्ध्या वर्णन के प्रसगं में एवं चन्द्रमण्डल की रक्तिमा पक्व बिम्बी फल से की है। बाल्मिकीय रामायण के सुन्दरकाण्ड में सीता के ओष्ठों को बिम्बोष्ठी एवं बिम्बफलोपमोष्ठं" कहा है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - इन्द्रायणभेद, विषलम्मि,
स्थानिक - इलाड़ी, डिम्बु,
लैटिन - Curumis trigonus Roxb.

स्वरूप :- इसकी लता प्रसरणशील और स्पर्श में कर्कश होती है। पत्तियाँ पाणिवत्, खण्डित, खर स्पर्श और पर्ण खण्ड अग्र-पर अधिक चोड़े अथवा खण्डित होते हैं। पुष्प-पीले, फल-दीर्घ वृताभ, व्यास में डेढ़ इंच चिकने, धारिदार, श्वेत एवं पाण्डुर वर्ण के होते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- मूल एवं फल का उपयोग इन्द्रायण की तरह किया जाता है। इसमें विषैला प्रभाव अधिक देखने को मिलता है। इस प्रजाति में शाकीय एवं फलवर्ग की उपयोगी वनस्पतियाँ पाई जाती हैं जिसकी अधिकतर खेती की जाती है वे निम्न प्रकार से हैं।

द्रव्य नाम :- खर्बुज (खखूजा) Cucumis melo L.

यह बलूचिस्तान और पश्चिमी अफ्रीका का मूल निवासी पौधा है। मूसलमानों के काल में १२वीं-१३वीं शदी में इसका भारत में प्रचार हुआ। मदनपाल और भावप्रकाश निघण्टु में इसका उल्लेख है। अब भारत में इसकी खेती की जाती है।

द्रव्य नाम :- चिर्मिट (फूटककड़ी) Cucumis momrdica Roxb.
(ककड़ी) Cucumis utilissimus Roxb.

गुण :- बीज :- पित्तशामक, वात- कफवर्धक, शीतवीर्य, मधुर, संग्राही, मूत्रल, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरीनाशक।

द्रव्य नाम :- त्रपुष (खीरा) - Cucumis sativus L.
गुण - मूत्रल, मधुरशीत, पित्तशामक, वातवर्धक।

द्रव्य नाम :- कालिन्द दशांगुलम् (तरबूज) - Citrulus vulagris Sch.

यह अफ्रीका का मूल निवासी पौधा है। सुश्रुत संहिता में कलिन्द एवं कालिन्द के नाम सूत्रस्थान अध्यया ९ एवं ४६ में उल्लेख है। कैम्य्यदेव एवं भाव प्रकाश निघण्टु में इसका उल्लेख मिलता है। संहिता ग्रन्थों मे कर्कारूक, त्रपुष, कर्कटी आदि नामों से उल्लेख मिलता है। फलशाकों में कर्कोटक, कारवेल्लक, कुलक, पटोल, सुषवी आदि का उल्लेख है।

द्रव्य नाम :- पीतकुष्माण्ड (कोहड़ा) काशी फल,
लैटिन - Cucurbita maxima Duch.

इसका उपयोग मध्ययुग में रोमन और योरोप में अधिक होता था। सम्भवतः यह अमेरिका की मूलनिवासी लता है। शालिग्राम निघण्टुकार ने पीतकुष्माण्ड से इसका उल्लेख किया है। शाकों में विशेष उपयोग किया जाता है। बीज- वल्य, मधुर-मूत्रल होते हैं।

द्रव्य नाम :- कुंहड़ा - Cucurblita pepo Dc.

शाकों में इसका उपयोग किया जाता है।

संस्कृत - कोशातकी (तोरई) - Luffa acutangula Roxb.
घियातोरई - Luffa aegvptiaca Mill.

गुण :- पित्त - कफहर, शिरोविरेचक, मधुर, त्रिदोषहर।

तिण्डिश (टिंडा) Citrullus Sp.

अलावु (लौकी) - Lagenaria vulagaris Sering
कारवेल्लक, करैला - Momordica charantia L.
पटोल - परवल - Trichosanthus dioca Roxb.
चचिण्डा (कैला) - T. Cucumerina Var. anguina.

आदि कतिपय उपयोगी शाकीय वनस्पतियाँ रांची, छोटानागपुर एवं संथालपरगना क्षेत्रों मे खेती की जाती है।
कड़वीतुम्बी (अलावु) वात-पित्तशामक, तिक्तरस, शीतवीर्य, रेचक, तीक्ष्ण एवं विषनाशक है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - देवदाली, जिमूत
स्थानिक - बंदाल,
लैटिन - Luffa echinata Roxb.

स्वरूप :- इसकी प्रसरणशील लतायें होती हैं। पत्तियाँ लट्वाकार हृदयवत्, दन्तुर एवं दोनों तलों पर रोमश होती हैं। पुष्प-श्वेत, मञ्जरियों में, फल, दीर्घ-वृत्ताभ, कुण्ठित, शंक्काकार, कंटक सदृश ढका हुआ रहता है। इसकी अन्य प्रजाति भी इस क्षेत्र में पाई जाती है। जिसे Luffa graveolens Roxb. कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- पंचाग का उपयोग क्वाथ विधि से ज्वरों में करते हैं। उदरकृमि में भी ग्रामीण लोग चूर्ण का उपयोग करते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- तिक्त, कटुरस, वीर्य, ऊष्ण, विपाक-कटु, गुण-रेचक, वामक, त्रिदोषहर, शिरोविरेचक, रोगोपयोग-ज्वर, कामला, पाण्डु, अर्श, आमदोष एवं उदरकृमिनाशक है।

नोट :- इसकी अन्य प्रजाति भी इस क्षेत्र में पाई जाती है जिसे घामार्गव (महाजालिनी) Luffa acylindrica Roem. कहते हैं। यह तिक्त, ऊष्ण-वीर्य, कटुविपाकी, रेचक, वामक, गुल्म एवं शोथहर है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - कर्कोटी, वन्ध्याकर्कोटकी,
स्थानिक - खेखसा,
लैटिन - Momordica dioica Roxb.

स्वरूप :- खेखसा की दुर्गन्धयुक्त, आरोही लतायें होती हैं। पत्तियाँ त्रिखण्ड, लहरदार, लट्वाकार, दन्तुरधारवाली होती हैं। नर और मादा पुष्पों की लतायें अलग-अलग होती हैं। कन्द बहुवर्षायु होता है। जिसे बन्ध्याकर्कोटकी कहते हैं।

स्थानिक उपयोग :- पत्र एवं फल को आदिवासी लोग शाक बनाकर खाते हैं। कन्द का प्रयोग चिकित्सा में किया जाता है। संहिताग्रन्थों में कर्कोट एवं कर्कोटक नाम से उल्लेख मिलता है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - वन्य कुन्दरी,
स्थानिक - चेंगोर, अट, तुरा,
लैटिन - Melothria heterophylla Cong.

स्वरूप - इसकी लतायें प्रसरणशील एवं आरोही होती हैं। काण्ड-चिकना, कोनदार, पत्तियाँ भिन्न-भिन्न आकार की, वाणवत् दन्तुर एवं ५ इंच तक लम्बी होती हैं। पुष्प श्वेत वर्ण का, फल-दीर्घवृताभ, रक्त वर्ण का होता है। इसकी लतायें छोटानागपुर, संथालपरगना के पथरीली जगहों, नदी-नालों के आसपास पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग पके हुये फलो को खाते हैं। एवं कच्चे फल का शाक में उपयोग किया जाता है। मूल का उपयोग दूध के साथ धातुक्षीणता में करते हैं। पंचागचूर्ण का उपयोग प्रमेहनाशक है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - घण्टाली
स्थानिक - विलारी,
लैटिन - Mukia maderaspatana Kurz.

स्वरूप :- इसकी छोटी-छोटी खर स्पर्शआरोही लतायें होती हैं। पत्तियाँ कर्कश, खण्डवाली, दन्तुर, प्रायः हृदयवत् होती हैं। पुष्प छोटे-छोटे पीत वर्ण के, फल-मटर के बराबर, धारीदार, लाल, रोमश

एवं गुच्छों में पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- पंचाग का दीपन, मृदु विरेचन एवं मूत्रजनन के रूप में आदिवासी लोग प्रयोग करते हैं। दन्तशल्ल में क्वाथ का उपयोग किया जाता है।



द्रव्य नाम :- संस्कृत - महाकाल, विशाला,
स्थानिक - काउबूटकी,
लैटिन - Trichosanthes palmata Roxb.

स्वरूप :- इसकी विशाल आरोही लतायें होती हैं। काण्ड पर उभरी रेखायें, पत्तियाँ खण्डित, दन्तुर, रोमश एवं सवृन्त होती हैं। पुष्प-श्वेत वर्ण के, फल-पकने पर लालवर्ण के दीर्घ, वृताभ एवं चपटे बीज वाले होते हैं। सिंगभूमि, रांची, पलामू, संथालपरगना में इसकी बेल घाटियों में पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग :- फल मज्जा की क्रिया इन्द्रायण की तरह है वामक होती हैं। ग्रामीण लोग मूल और फल का उपयोग मवेशियों के उदरकृमि एवं अफारा मे प्रयोग करते हैं। मूल शोथहर एवं ज्वरघ्न है।

आयुर्वेदीय उपयोग :- संहिताग्रन्थों में विशाला (महाकाल) के नाम से इस वनस्पति का उल्लेख मिलता है। इसे लाल इन्द्रायण भी कहते हैं। गुणों में यह फल वामक, श्लेष्मनिस्सारक, मूल-ज्वरघ्न, श्वयथूहर एवं गर्भस्त्रावकर है।

गुण :– शक्रसुरा स विशाला, तीक्ष्णेष्णा तीव्ररेचनी।
क्रूरकोष्ठोदरे भद्रा, दुतंगर्भाय-कर्षणी।। "प्रिय नि."

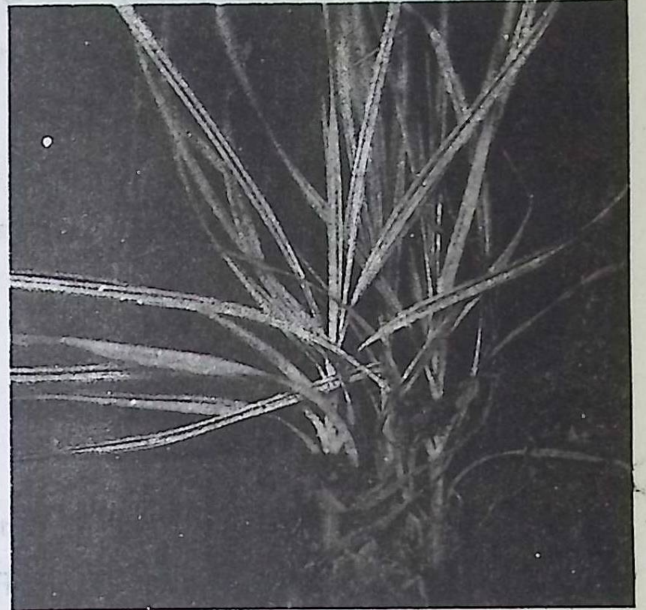
द्रव्य नाम :- संस्कृत - वन्यपटोल,
स्थानिक - वीरकैंता
लैटिन - Trichosanthes cucumerina L.

स्वरूप :- इसकी मृदु आरोही वर्षाकालीन लता होती है। पर्ण-खण्डित कोनदार, दन्तुर एवं सवृन्त होते हैं पुष्प-श्वेतवर्ण के , फल-सफेदधारियों से युक्त चोंचदार एवं पकने पर रक्तवर्ण के होते हैं।

स्थानिक उपयोग :- पंचाग का उपयोग ज्वरघ्न, शोथहर एवं उदरविकार में क्वाथ के रूप में ग्रामीण

करते हैं। यह तिक्त पटोल के स्थान पर प्रयोग किया जाता है। सम्भवतः यह संहितोक्त कुलक एवं वन्यपटोली नामक वनस्पति है।

मुस्तककुल (CYPERACERE)



द्रव्य नाम :- संस्कृत - मुस्तक,
स्थानिक - गुन्द्रा, नागरमोथा,
लैटिन · Cyperus rotundus L.

स्वरूप :- यह खेतों में पाये जाने वाला बहुवर्षायु भौमिक कन्द वाला द्रव्य है। जड़ों में छोटे-छोटे काले कन्द निकलते हैं। तोड़ने पर ये श्वेत वर्ण एवं सुगन्धित होते हैं। प्रायः इस क्षेत्र में सर्वत्र पाया जाताहै । सूवर इन कन्दों को अधिक खाता है। इसकी अन्य किस्में जलाशयों के आस-पास काफी समूह रूप में मिलती हैं। जिसे नागरमोथा, साईप्रस-पैंगोराई कहते हैं। बाजार में सबसे अधिक यही प्रजाति नागरमोथा के नाम से मिलती है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग मूल को ग्राही एवं उदर विकारों में चूर्ण के रूप में प्रयोग करते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- रस-तिक्त, कटु, कषाय, वीर्य-शीत, विपाक, कटु, गुण-दीपन, पाचन, शीतल, कफ-पित्तशामक, रोगोपयोग-ज्वरातिसार, रक्तपित्तशामक, आमपाचन एवं वमन में उपयोगी। योगः मुस्तादिचूर्ण, चूर्ण की मात्रा - १ से ४ माशा।

द्रव्य नाम - स्थानिक -हाथीपाँव,
लैटिन - Fimbristylis.

स्वरूप :- यह हाथी के पंजे सदृश आकार में पैदा होने वाली घास है। इस घास में मूल काण्ड मोटा, कठोर होता है। मूल भाग से पत्र निकलते हैं। रांची, संथालपरगना में कहीं-कहीं नमदार स्थानों पर यह देखने को मिलता है।

स्थानिक उपयोग :- आदिवासी लोग इसके पका हुआ तैल चर्मरोगों में बहुत उपयोगी मानते हैं। इन लोगों का विश्वास हैं कि कैन्सर में भी यह उपयोगी हो सकता है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - अपविष,
स्थानिक - निर्विश,
लैटिन - Kyllinga triceps Rottb.

स्वरूप :- इसका पौधा नागरमोथा सद्यश होता है। मूल स्तभ्भ के ऊपर से मोटे आधार वाले अनेक काण्ड गुच्छों के रूप में निकलते हैं। काण्ड के अग्रभाग पर प्रायः पुष्पव्यूह निकलते हैं। ये पुष्प कोण सद्यश होते हैं।

स्थानिक उपयोग :- आदिवासी लोग मूल फाण्ट का उपयोग ज्वर, प्रमेह एवं मधुमेह जन्यतृषा में देते हैं। बड़ी मात्रा में प्रयोग करने से यह वामक होता है। इससे साधित तिलतैल का उपयोग चर्मरोगों में किया जाता है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - कशेरूक,
स्थानिक - कसेरू,
लैटिन - Scirpus kysoor Roxb.

स्वरूप :- इसके पौधे तालाबों में पाये जाते हैं। काण्ड ३ पहल वाले ४ से ६ फीट तक ऊँचे एवं पत्तियाँ भी काफी लम्बी होती हैं। इसके नीचे मूल में छोटे-छोटे काले कन्द होते हैं जिन्हें कसेरू कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी मूलकन्दों का प्रयोग शीतल एवं वल्य के रूप में करते हैं।

टिप्पणी :- संहिताग्रन्थों में कशेरू एवं राजकशेरू के नाम से उल्लेख मिलता है। राजकशेरू से Scirpus grossus का उपयोग किया जाना चाहिये। क्रोज्चादन नामक वनस्पति भी कशेरू की प्रजाति हो सकती हैं। सभ्भवतः S. articulatus L. हो सकती है।

शालकुल - (DIPTEROCARPACEAE)

द्रव्य नाम :- संस्कृत - शाल, सर्ज,
स्थानिक - सखुवा, सखुई,
लैटिन - Shorea robusta Gaert.

स्वरूप :- इसके विशाल वृक्ष होते हैं। इस क्षेत्र के जंगलो में सर्वत्र पाया जाता है। पत्र-अभिलट्वाकार, मसृण सवृन्त होते हैं। पुष्प मज्जरी में श्वेताभ एवं सुगन्धित होते हैं। फल-पंख सद्यश गुठलीदार होते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग इसके बीजों का संग्रह घरेलू उपयोग में करते हैं। शालसार का उपयोग चिकित्सा में किया जाता है।



आयुर्वेदीय उपयोग :- प्रयोज्यअंग-निर्यास, छाल, फल, रस-कषाय, मधुर, वीर्य-शीत, विपाक-कटु, गुण-ग्राही, रूक्ष, व्रणरोपक रोगोपयोग-प्रवाहिका-रक्तविकार, कुष्ठ, प्रमेह, पाण्डुरोग, व्रण, कर्ण रोग एवं योनिरोग में उपयोगी। निर्यास द्वारा तैयार किया मलहम त्वचा के रोगों में विशेष उपयोगी है।

टिप्पणी :- छाल का उपयोग अशोक छाल के प्रतिनिधि द्रव्य के रूप में किया जाता है। वाल्मिकीय रामायण में माल्यवान् पर्वत के प्रसंग में शाल का उल्लेख आया है। महाकवि कालिदास ने कतिपय स्थलों पर शाल का उल्लेख किया है।

वाराहीकुल (DIOSCOREACEAE)

वाराही की अनेक जातियाँ रांची, छोटानागपुर एवं संथालपरगना क्षेत्र मे पाई जाती हैं। पुष्प एकलिंगी और द्विलिंगी होता है। अर्थात् प्रत्येक प्रजाति में नर और नारी दो-दो प्रकार की लतायें होती हैं। विभिन्न जातियों के कन्दों का व्यवहार आदिवासी लोग खाद्य सामग्री में करते हैं। कुछ जातियों के कन्द खोदने पर बहुत गहरे होते हैं।



इनमें कुछ प्रजातियाँ विषैली होती हैं सम्भवतः निघण्टु ग्रन्थों में वर्णित कासालु, पिण्डालु, पानीयालु, फोण्डालु एवं मुखालु आदि कन्द इन्हीं प्रजातियो में से हो सकते हैं। उपलब्ध कन्दों का सामान्य विवरण निम्न प्रकार से दिया गया है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - वाराहीकन्द,
स्थानिक - गेंठी
लैटिन - Dioscorea bulbifera Linn.

स्वरूप :- इसकी लतायें वर्षाकाल में अधिक फैलती हैं। पत्र-ताम्बूलाकार अभिलट्वाकार, पुष्प द्विलिंगिक, श्वेताभ मज्जरी में। कन्द गोल

एव वाह्य भागों पर बालों के सदृश तन्तु दिखाई देते हैं। कन्द काटने पर मसृण, पीताभ श्वेत। इन्हीं कन्दों का चिकित्सा में वाराहीकन्द के नाम से उपयोग किया जाता है।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- रस-कटु, तिक्त, हृद्य वल्य, रसायन, कृमिघ्न, कुष्ठघ्न।

यथा – वाराहकन्दो वीरश्च, ब्राह्मकन्दः सुकन्दकः।
वाराही तिक्त कटुका, विषपित्त कफापहा।
कुष्ठ मेह क्रिमिहरा, वृस्यावल्या रसायनी।। "राज निघण्टु"

द्रव्य नाम :- संस्कृत - रक्तालुक,
स्थानिक - रतालू, तुआरसांगा, खामालु,
लैटिन - Dioscorea alata Linn.

सुश्रुत संहिता सूत्र स्थान अध्याय ४६ में इसका उल्लेख है जो कि आलुक के प्रजातियों में से हो सकता है। आलुक नामक द्रव्य का उल्लेख चरक संहिता सूत्रस्थान अध्याय २५, २७ एवं सुश्रुत संहिता उत्तर तंत्र अध्याय ४२ तथा अष्ठागंहृदय सूत्रस्थान अध्याय ६ में वर्णित है। आदिवासी लोग इन कन्दों का खाद्य सामग्री में उपयोग करते हैं।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - तरूट,
स्थानिक - तुंगम-सांग
लैटिन - Dioscorea belophylla Voight.

ग्रामीण आदिवासी इसके कन्दों का उपयोग घरेलू खाद्य सामग्री में करते हैं।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - खनियाँ, कांटालु
लैटिन - Dioscorea pentaphylla L.

इसके लम्वे कन्द श्वेताभ वर्ण के होते हैं। डल्हण के अनुसार सम्भवतः यह विदारी के प्रकारों में से हो सकता है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - शंखालुक,
स्थानिक - वैचादी,
लैटिन - Dioscorea daemona Roxb.
स्थानिक - वायांग D. glabara Roxb.
तुंगमसांगा - D.wallichil H.F.
वेरीकांन्दा, गिस्कासांगा - D. Hkamiltonii Hook. f.
कोसालु, कुकईसांगा D. anguina Roxb.

आदि प्रजातियाँ छोटानागपुर - संथालपरगना क्षेत्र में पाई जाती हैं।

आदिवासी इसके सविष एवं निर्विष कन्दों को खाद्य सामग्री में शोघन कर उपयोग करते हैं एवं कुछ प्रजातियों का उपयोग परिवार नियोजन में किया जाता है।

आयुर्वेदीय सन्दर्भ :-

कासालु -

कासालुरूग्र कण्डूति वातश्लेष्मामयापहः।
अरोचक हरः स्वादुः पथ्योदीपन कारकः।। रा. नि.

पानियालु -

पाणियालु त्रिदोषघ्नः सन्तपर्णकरः परः।। रा. नि.

पिण्डालु -

पिण्डालु र्मधुर शीतो, मृत्रकृच्छामयापहः।
दाहशोष प्रमेहघ्नो, बृष्य सन्जर्पणोगुरूः।। रा. नि.

फोण्डालु -

फोण्डालु श्लेष्म वातघ्नः कटूष्णोदीपनश्च सः।।
पर्याय – (लोहितालु, रक्तपत्र, मृदुच्छदः)। रा. नि.

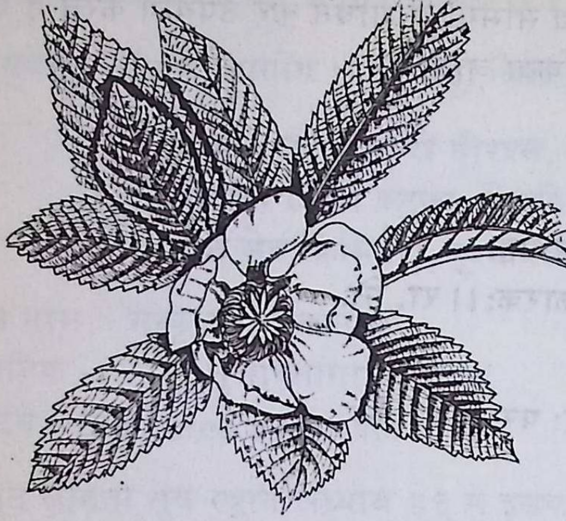
मखालु -

पर्याय– दीर्घकन्द, सुकन्द, स्थूलकन्द, स्वादुकन्द।
मूखालुकः स्थान्मधुरः शिशिर पित्त नाशनः।
रूचिकृद् वातकृच्छैव, दाह शोष तृषापहः।। रा. नि.

इस प्रकार कतिपय उपयोगी प्रजातियाँ इस कुल की स्वंय जात किस्में जंगलों में पाई जाती है। प्राचीन कालीन आलुकवल्य, वाजीकर एवं रसायन गुणो वाले कन्द इन क्षेत्रों में पाये जाते हैं। इनपर गहन शोध कार्य होना चाहिये। कोर्टीजान नामक मुख्य एल्कलाईड इन्हीं प्रजातियों में से पाया जाता है। हिमालय क्षेत्र में भी उपयोगी प्रजातियाॅ। पाई जाती हैं। जिसमें गेंठी, तुरड़ आदि किस्मों की खेती की जाती है।

भव्यकुल (DILLENIACEAE)

द्रव्य नाम :- संस्कृत - भव्य,
स्थानिक - चाल्ता,
लैटिन - Dillenia indica L.



स्वरूप :- इसके मध्यम आकार के सुन्दर छायादार वृक्ष होते हैं। पत्तियाँ गहरी हरी, ८ से १० इंच लम्बी एवं दन्तुर होती हैं। पुष्प-एकांकी, श्वेत, फल-मांसल, गोल एवं स्वाद में खट्टा होता है। इसकी अन्य दो वन्य प्रजातियाँ इस क्षेत्र में पाई जाती है, जो इस प्रकार से है।

१) अगई Dellenia aurea Sm. एवं राई D. pentagyn कहते हैं। इन दोनो के फल स्वाद में अम्ल होते हैं।

स्थानिक उपयोग :- आदिवासी फलों का उपयोग खाद्यसामग्री में करते हैं।

टिप्पणी :- चरक, सुश्रुत एवं अष्ठांग हृदय में भव्य नामक फल का उल्लेख मिलता हैं चरक संहिता में शीतक नामक द्रव्य का भी उल्लेख आया है। चक्रपाणी टीकार ने अम्ललोट अर्थ किया है। सभ्भवतः यह भव्य हो सकता है। गुजराती लोग इसके फलों को दाल में अम्लता हेतु प्रयोग करते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग - गुण-कटु, अम्ल, ऊष्ण, कच्चा फल बात-कफघ्न, पक्वफल- मधुर, अम्ल, रोचक एवं शूलनाशक।

यथा - भव्यंअम्लं कटुष्णज्च, वालं वातकफापहम्।
पक्कं तु मधुराम्लं च, रूचिकृत्सामशूलहृत्।। रा.नि.

तिन्दुककुल - (EBENACEAE)

द्रव्य नाम :- संस्कृत - तिन्दुक,
स्थानिक - केन्द,
लैटिन - Diospyrus melaroxylon Roxb.

स्वरूप :- इसके मध्यम आकार के झाड़ीदार वृक्ष होते हैं। नवीन शाखयें धूसर अथवा मुरचई रंग की, और तूल रोमश होती है। पत्तियाँ अभिमुख, लट्वाकार, पुष्प-मज्जिरियों एवं पत्तियों के पास निकलते हैं। फल-गोल, अण्डाकार, चिकना होता है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग छाल का उपयोग अतिसार में करते हैं।

टिप्पणी :- निघण्टु ग्रन्थों में इसका उल्लेख फलवर्ग में हैं। अपक्व फल कषाय, संग्राही, वातकारक और पक्व फल मधुर, स्निग्ध, दुर्जर तथा श्लेष्मल होता है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - मर्कटतिन्दुक,
स्थानिक - केन्द्र, मकरकेन्द,
लैटिन - Diospyros embiyopteris Pers.

स्वरूप :- इसके सदाहरित वृक्ष होते हैं। शाखायें नीचे की ओर फैली रहती हैं। पत्तियाँ, चिकनी, चर्म सद्यश, आयताकार और चमकीली होती हैं। पुष्प-श्वेत, सुगन्धित, फल-गोल, रक्त किट्टावरण से ढका रहता है। फलमन्जा प्रायः बन्दरों को प्रिय होती है। इसी कारण इसको मर्कट तिन्दुक कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- बीज तैल तथा फल मज्जा का उपयोग पुराने आंव और अतिसार में किया जाता है। इसके अतिरिक्त निम्न प्रजातियाँ भी इस क्षेत्र में पाई जाती हैं।

१. पटवन - Diospyros cordifolia Roxb. Sy. D. montana.
२. तेन्दु - D.tomentosa Roxb.

इसके पके हुये फल खाये जाते हैं जो कि स्वाद में मधुर होते हैं। तेंदू पत्ता बीड़ी उद्योग में प्रमुख है। आदिवासी लोग तेन्दु के पत्तों का संग्रह बीड़ी पत्तों में करते हैं। वन विभाग द्वारा इसके व्यापार से अच्छा राजस्व अर्जित किया जाता है।

एरण्डकुल - (EUPHORBIACEAE)

द्रव्य नाम :- संस्कृत - हरित मज्जरी,
स्थानिक - कुप्पी,
लैटिन - Aacalypha indica Linn.

स्वरूप :- एक वर्षायु क्षुप जाति की तलोत्थ वनस्पति है। पत्तियाँ लम्बी, वृन्तवाली, आरावत्, दन्तुर एवं लट्वाकार होती हैं। पुष्प मञ्जिरियों एवं पत्र कोणो में निकलते हैं, जिन पर कोण पुष्पक पर्णतुल्य, हरे नतोदर (कुप्पीसद्यश) द्विलिंगिक होते हैं। इसके क्षुप चम्पारण, सिंगभूमि एवं संथालपरगना में सर्वत्र पाये जाते हैं।

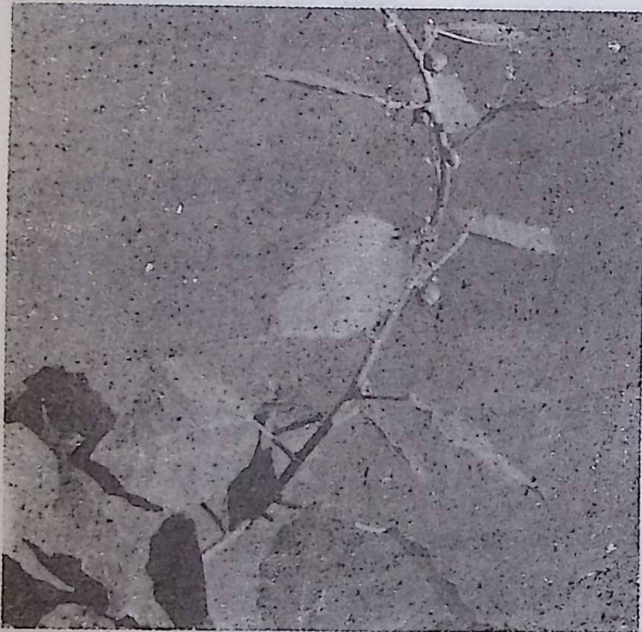
स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग आंव में इसकी भाजी बनाकर खाते हैं। पंचाग, कफघ्न, वामक, कृमिघ्न और त्वक्दोषहर माना जाता है।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - कोल-माठाअड़ा,

हिन्दी - अमरी,
लैटिन - Antidesma diandrum Roth.

स्वरूप :- इसके मध्यम आकार के गुल्म होते हैं। पत्तियाँ ३ इंच तक लम्बी, अग्रभाग एकाएक संकुचित एवं अधरतल चमकदार होते हैं। पत्तियां स्वाद में खट्टी होती हैं। कोल एवं संथाली में इसे अड़ा कहते हैं। अड़ा का अर्थ शाक होती है। छोटानागपुर एवं संथालपरगना में इसके पौधे प्रायः नदी-नालों के किनारे पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी मुलायम पत्तियाँ का शाक बनाकर खाते हैं। व्रणपूरण के लिये छाल का उपयोग किया जाता है। पके हुये फल खाये जाते हैं। ग्रामीण लोग इसके जड़ के साथ पुरानी इमली और राल मिलाकर फोड़े पर पुटलिश के रूप में लगाई जाती है।



द्रव्य नाम :- संस्कृत - दन्ती,
स्थानिक - ताम्बा,
लैटिन - Baliospermum montanum Muell.

स्वरूप :- दन्ती के बहुशाखीय गुल्म पाये जाते हैं। काण्ड के पत्तियों के आकार मे भिन्नता पाई जाती है। नीचे की पत्तियाँ प्रायः पाणिवत् खण्डित एवं ऊपर की ओर भालाकार होती हैं। पुष्प-हरिताभ, फल-तीन खण्डो वाला और बीज जायफल बीज सदृश होती है। छोटानागपुर एवं संथालपरगना में यह सर्वत्र पाया जाता है।

स्थानिक उपयोग :- पंचाग क्वाथ का उपयोग मवेशियों में होने वाले अफारा एवं पेट दर्द में किया जाता है। बीज और मूल शोथघ्न, ज्वरघ्न तथा रेचक माना जाता है।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- रस-कटु, मधुर, वीर्य-उष्ण, विपाक-कटु, गुण-दीपन, तीव्रविरेचक, रोगोपयोग-अर्श, गुल्म, उदररोग, उदरकृमि; पाण्डु, कामला एवं जलोदर में उपयोगी।
योग :- दन्त्यारिष्ठ (उदररोगों में) पत्र-श्वास रोग में हितकर यह जयपाल बीज के समान तीव्र रेचक है। आन्त्रपर इसका प्रभाव पड़ता है।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - काज, काजी, खाखा,
लैटिन - Bridelia retusa spreng.

स्वरूप :- इसके मध्यम आकार के वृक्ष होते हैं। पत्र-मसृण अभिलट्वाकार, आयताकार एवं पर्णपाती होते हैं। पुष्प-पत्रकोणीय-हरिताभ-फल-गोल मटर के दाने के सदृश पकने पर कृष्ण वर्ण के होते हैं। बाजार में व्यापारी लोग इसके बीजों को कंकोल के नाम से संग्रह करते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण लोग पत्ती का उपयोग मवेशियों में चारा के लिये करते हैं। आदिवासी लोग मूल छाल के क्वाथ का प्रयोग आमवात में करते हैं। काण्डत्वक् चूर्ण को संग्राही मानते हैं। गोंद का उपयोग बल्य के रूप में किया जाता है।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - लवली, हरीफल,
लैटिन - Cicca acida merill.

स्वरूप :- इसके छोटे गुल्म बागों में पाये जाते हैं। पत्तियाँ कमरख की पत्तियों की तरह होती हैं। फल-गोल एवं खट्टे होते हैं। छोटानागपुर में इसके गुल्म उद्यानों में लगाते हुये पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग फल को संग्राही गुणों वाला मानते हैं। पत्र एवं मूल का उपयोग विषघ्न के रूप में करते हैं। छाल में वामक गुण पाया जाता है।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - करला, पासु, सं. करगली,
लैटिन - Cleistanthus collinus Banth.

स्वरूप :- इसके वृक्ष प्रायः छोटे आकार के होते हैं। पत्तियाँ अभिलट्वाकार, अण्डाकार एवं वृताकार होती हैं। पुष्प गुच्छों में, फल-काष्ठीय, चमकीला, तीन पटल वाला होता है। रांची, सिंगभूमि के आद्र स्थानों में इसके गुल्म पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग फल और मूल को विषैला मानते हैं। छाल का उपयोग चर्मरोगों में किया जाता है। आभ्यन्तर प्रयोगों पर यह आन्त्र पर घातक प्रभाव डालता है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - नागदन्ती,
स्थानिक - पुत्तेर, पुतरी,
लैटिन - Croton oblongifolius Roxb.

स्वरूप :- इसके मध्यम आकार के वृक्ष चम्पारण, पुर्णियाँ, छोटानागपुर एवं संथालपरगना में सर्वत्र पाये जाते हैं। पत्तियाँ आयताकार, अण्डाकार, पुष्प-एकलिंगी, छोटे-छोटे मञ्जरियों में खिलते हैं। बीज-चिकने और भूरे रंग के होते हैं। इसकी अन्य प्रजातियाँ मिरडी Croton roxburghii एवं C. Caudatus इस क्षेत्र में पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण लोग इसकी जड़ के साथ जंगली करौंदा की जड़ मिलाकर पशुओं के

खुरपका एवं पुरानें व्रणों पर लेप तथा व्रण प्रक्षालन करते हैं। दांतों के दर्द एवं पायोरिया में इसके मूलचूर्ण का उपयोग करने से लाभ होता है। पायोरिया में पुतरी के जड़ की दांतोंन आदिवासी करते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- मूल-शोथघ्न ज्वरघ्न, रेचक एवं विषघ्न माना गया है। मिरडी CrotonRoxburghii के मूल एवं बीज का उपयोग सन्ततिनिरोध में आदिवासी महिलायें करती हैं। चरक, सुश्रुत एवं अष्ठांग हृदय में नाग दन्ती का उल्लेख चरक विमानस्थान अध्याय ८ सुश्रुत सूत्रस्थान अध्याय ३८ एवं अष्ठांग हृदय सूत्रस्थान अध्याय १५ में मिलता है।

यथा – नागदन्तीकटुस्तिक्ता, रूक्षा वात कफापहा।
मेघाकृद्विषदोषघ्नी, पाचनी शुभदायिनी।।
गुल्मशूलोदर ब्याधिः कण्ठदोष निकृन्तनी।। रा. नि.

द्रव्य नाम :- संस्कृत - सूर्यवर्ता
स्थानिक - पुजवातंगों,
लैटिन - Chrozophora prostrata Daok.

स्वरूप :- यह परिसृत बहुशाखीय काण्डवाला पौधा है। काण्ड एवं पर्ण रोमिल, खरस्पर्श, पत्र-अण्डाकार, अभिलट्वाकार, सवृन्त होते हैं। पुष्प-पत्रकोणीय, पीताभ हरित वर्ण के होते हैं। इसके पौध रेतली जमीन में गन्दें नालों के आस-पास पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण लोग बीजों को रेचक मानते हैं। पंचाग क्षार का प्रयोग कास में किया जाता है।



द्रव्य नाम :- संस्कृत - आमलकी,
स्थानिक - आंवला, ओरा, मिरल,
लैटिन - Emblica officinalis Gaertn

स्वरूप :- इसके मध्यम आकार के वृक्ष होते हैं। पुष्प छोटे, हरिताभ पीत, एकलिंगी, फल-पीत, मांसल, धारीदार। छोटानागपुर एवं संथालपरगना में इसके वृक्ष पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग आचार के रूप में फलों का उपयोग करते हैं। व्यापारिक रूप से इसका संग्रह किया जाता है।

आयुर्वेदीय उपयोग :- लवण रस छोड़कर शेष ६ रस आंवले के फल में पाये जाते हैं। वीर्य-शीत, विपाक-मधुर, गुण-लघु, दीपन, पाचन, वृष्य, रसायन रोगोपयोग-मूत्रकृच्छ्र, अम्लपित्त, प्रजनन सम्बन्धी अवयवीरोगों में अर्श एवं कास-श्वास मे उपयोगी रसायन में आमली रसायन श्रेष्ठ है।

योग :- च्यवनप्राश (स्मृति, कास वल्य), ब्राह्मरसायन (कान्तिवर्धक), धात्रीलौह (परिणामशूल), महातिक्तघृत (रक्तपित्तविकार), त्रिफलाचूर्ण (पाचन, अरूचि बिबन्ध)।

नोट :- अक्षिप्रक्षालन के लिये आंवले के चूर्ण को रातभर जल में भिगोकर प्रायः इस पानी के छींटे आंखों के लिये ज्योतिवर्धक है।

द्रब्य नाम :- संस्कृत - अधोगुडा, मूलकपर्णी,
स्थानिक - वनमूली,
लैटिन - Euphorbia acaulis Roxb.

स्वरूप :- यह मूली के समान मोटी, सफेद कन्दसद्यश जड़वाला छोटा काण्डहीन क्षुप है। भौमिक भाग से प्रतिवर्ष प्रायः अवृन्त मांसल, अभिप्रासवत् स्त्रुवासद्यश पत्र निकलते हैं। पुष्प-पीतवर्ण के छोटे समूह रूप में। इसके पौधे उत्तरी चम्पारण, पूर्णिमा, सिंगभूमि, संथालपरगना के बलूई मिट्टी में पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग मूल को तीव्ररेचक और विषैला मानते है।

टिप्पणी :- संहिताग्रन्थों में अधोगुडा, मूलकपर्णी, हस्तिदन्ती आदि उपयोगी द्रब्यों का उल्लेख मिलता है। इन द्रब्यों के नाम रूप परिचय के आधार पर उपरोक्त वनस्पति हस्तिदन्ती, मूलकपर्णी एवं अधोंगुडा में से है। डा. वलवन्त सिंह जी ने इसी तरह अपने विचार ग्लासरी आफ बेजिटेबिलड्रगस् इन वृद्धत्रयी में स्पष्ट किया है।

द्रब्य नाम :- संस्कृत सातला, सप्तला,
स्थानिक - तितली, सं. परवा,
लैटिन - Euphorbia dracunculoides Lam.



स्वरूप :- इसके मृदु एक वर्षायु क्षुप खेतों में पाये जाते हैं। शाखायें पीतदूध वाली, पत्तियाँ अभिमुख, अवृन्त, रेखाकार, प्रासवत् होती हैं। पुष्प-पीतवर्ण के, बीज कोषीय एवं तेलयुक्त होते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग बीज तैल को जलाने के काम में प्रयोग करते हैं। चर्मरोगों में

भी यह तेल उपयोगी मानते हैं।

टिप्पणी :- संहिताग्रन्थों में सपृला, सातला, आदि कतिपय नामों से इस वनस्पति का उल्लेख मिलता है। अधिकतर ग्रन्थकारों ने शिकाकाई Acacia concinna DC एवं अंगुलियाथोहर E. tirucalli को सातला लिखा है। लेखक के विचार से शास्त्रीय सातला E. pilosa Linn चोपालों एवं E. dracunculoides शास्त्रसंगत है। चोपालो नामक वनस्पति उभयतो भागहर है। इस वनस्पति में रेचक और वामक दोनों गुण पाये जाते हैं।

द्रब्य नाम :- संस्कृत - दुग्धिका,
स्थानिक - दुधी, कोल - पुसी - तोआ,
लैटिन - Euphorbia hirta Linn.

स्वरूप :- इसके २ फीट तक ऊँचे एकवर्षायु क्षुप पाये जातें हैं। काण्ड मृदु, रोमश, पत्र-अभिमुख, दन्तुर, अण्डाकार, आयताकार, प्रासवत्, एक इन्च तक लम्बे होते हैं। पुष्प समूह में हरिताभ वर्ण के दुग्धमय होते हैं। छोटानागपुर एवं संथालपरगना के शुष्क पथिरिली जगहों पर सर्वत्र इसके क्षुप पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- संथाल के आदिवासी जड़ का उपयोग वमन रोकने हेतु एवं पंचाग को स्तन्यवर्धक के रूप में प्रयोग करते हैं। स्वरसका उपयोग दमा में किया जाता है। बच्चों के उदरकृमि में प्रयोग करते हैं।

टिप्पणी :- इस क्षेत्र में अन्य निम्न प्रजाति पाई जाती है, जिसे छोटी दुधी, पुसीत्तोआर Euphorbia thymifolia कहते हैं। यह प्रसर जाति की शाकीय वनस्पति है। यह वनस्पति आद्रस्थानों पर सर्वत्र पाई जाती है। अन्य जाति का E. microphylla छोटी दुधी कहते हैं। सामान्यतया पहली जाति के पौधे ताम्रवर्ण के और दूसरी जाति के पौधे भी ताम्रवर्ण के होते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग मूल एवं पंचाग का उपयोग काली मिर्च के साथ अर्श में करते हैं। इन प्रंजातियों के मूल स्वरस को अनार्त्तव में उपयोगी माना जाता है।

द्रब्य नाम :- संस्कृत - स्नुही,
स्थानिक - सेहुंड, एटके, तिधारा, सिज,
लैटिन - Euphorbia nivulia Ham.

स्वरूप :- इस क्षेत्र में इसकी ३-४ जातियाँ पाई जाति हैं। इसके वृक्ष १.५ से ३० फीट ऊँचे शाखायें गोल, खण्डमय, चक्राकार क्रम में निकली हुई दुग्धमय एवं कण्टकी भूत, उपपत्रों से युक्त होती हैं। पुष्प छोटे पत्रकोणीय एवं हरिताभ पीत होते हैं। इसकी अन्य प्रजाति भी वन्य रूप में इस क्षेत्र में

पाई जाती है। जिसे Euphorbia neriifolia L. एटके कहते हैं। इस के भी मध्यम आकार के कण्टकीय गुल्म पाये जाते हैं। तीसरी प्रजाति की तिधारा सेहुंड E. antiquorum L. कहते हैं। पलामू, सिंगभूमि, रांची के पहाड़ी घाटियों में उपलब्ध है।



आयुर्वेदीय उपयोग :- आयुर्वेदीय ग्रन्थों में इसका उल्लेख महावृक्ष, वज्र वृक्ष आदि कतिपय नामों से मिलता है। यह रस में तिक्त, गुरू, उष्ण, वातनाशक, विरेचक, विषघ्न, कुष्ठ, गुल्म, वात, प्रमेह, दुष्टव्रण एवं अश्मरी नाशक है। भगन्दर एवं अर्श में क्षारकर्म हेतु इसके दुग्ध से क्षार सूत्र तैयार किया जाता है।

यथा – स्नुहीक्षीरं विषाध्मानं, गुल्मोदरहरं परम्।
स्नुहीरसेषुतिक्ता च, गुरूष्णाकफ–वातजित्।। "ध. नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - व्याघ्रैरण्ड,
स्थानिक - वघरण्डी,
लैटिन - Jatropha curcas Linn.

स्वरूप :- इसके गुल्म १० से २० फुट ऊँचा होता है। पत्तियाँ चिकनी ३ से ५ में खण्डित पुष्प छोटे पीताभ, गोल, गुच्छों में होते हैं। सूखे फल बहुत दिन तक पेड़ में लगे रहते हैं। यह अमेरिका का आदिवासी पौधा है। इसकी रक्तजाति को J. gossypifolia L. कहते हैं।
स्थानिक प्रयोग - अग्निदग्ध में पत्रस्वरस को नमक में मिलाकर प्रयोग करते हैं। मांसपेशियों के अकड़न में तैल का अभ्यङ्ग (मालिश) के रूप में करते हैं। बीज तैल एरण्डतैल की तरह रेचक और अधिक मात्रा में उपयोग करने पर विषेला है।

आयुर्वेदिक उपयोग - कुछ विद्वानों ने इसे द्रवन्ती माना है। काण्ड एवं मूल का उपयोग दन्तीमूल के स्थान पर कतिपय वैद्य करते हैं। यह अमेरिका का आदिवासी पौधा है।

द्रवन्ती मधूराशीता, रसवन्धकरी परा।
ज्वरघ्नी, कृमिहा, शूलशमनी च, रसायनी।। "ध. नि."



द्रव्यनाम :- संस्कृत - कम्पील्लक,
स्थानिक - रोरी, देवसिन्दुरा, कबीला,
लैटिन - Mallotus philippinensis Muell.

स्वरूप :- इसके मध्यम आकार के वृक्ष सर्वत्र पाये जाते हैं। पत्ती एकान्तर रक्ताभ, मुरचुई रंग की होती है। नर पुष्पों की मञ्जरियों और स्त्रीपुष्पों की छोटे, पुष्प श्वेताभ पीतवर्ण के होते हैं। फल-तीन खंण्डवाले, फल पकने पर सिन्दुर वर्ण के रज से ढके रहते हैं। बीज गोल चिकने और काले होते हैं। फलरज को कमीला कहते हैं। यह वृक्ष इस क्षेत्र में सर्वत्र पाया जाता है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग फलरज, देवसिन्दुरा का उपयोग चेचक में वाह्य रूप में करते हैं। उदरकृमि में भी इसके फलरज को गुड़ के साथ देते हैं। व्यापारिक दृष्टि से इसका संग्रह किया जाता है।

आयुर्वेदीय उपयोग :- रस-कटु, वीर्य-ऊष्ण, विपाक-कटु, गुण-रेचक व्रणशोधक, रोपक, पित्त-कफशामक, रोगोपयोग-उदरकृमि, गुल्म, कफोदर, व्रण, दद्रु एवं आन्त्र के विकारों में उपयोगी। वाहय प्रयोग तैल में मिलाकर दाद, खुजली, चकते, व्रण एवं अग्निदग्ध में बहुत उपयोगी है। २ से ४ माशा चूर्ण, दही, मधु या गुड़ के साथ देने से ३-४ दस्तों में कृमि बाहर निकल आते हैं।

प्रयोग :- कम्पील्लक चूर्ण २ से ३ माशा। अनुपान - दही, शहद, गुड़।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - भूम्यामलकी,
स्थानिक - भुईआँवला, हिंसील,
लैटिन - Phyllanthus urinaria Linn.

स्वरूप :- यह एकवर्षायु रक्ताभ काण्ड वाली शाकीय वनस्पति है। पत्तियाँ-लट्वाकार द्विपंक्ति में पुष्प छोटे, रक्ताभ, फल आँवले सद्यश गोल, नीचे एक कतार में निकले होते हैं। इसकी अन्य प्रजाति भी पाई जाती हैं। जिसे P. niruri कहते हैं। काण्ड और पुष्प हरितवर्ण के होते हैं। यह भी इस क्षेत्र में प्रायः सर्वत्र पाया जाता है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग पंचाग का उपयोग बच्चों के सूखे का रोग (वालशो... यकृतविकार, मलेरिया ज्वर आने से पहले काली मिर्च के साथ पीसकर इसकी गोली दिन में

या ३ बार गरम जल के साथ देते हैं। ग्रामीण महिलायें अत्यार्त्तव में भी इसके पंचाग का उपयोग करती हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- रस-कषाय, अम्ल, तिक्त, मधुर, वीर्य-शीत, विपाक-कटु, गुण-लघु, दीपन, पाचन, मूत्रजनन, स्त्रंसन कफशामक, यकृत, प्लीहा और वस्ति में उपयोगी। रोगीपयोग-कामला, कास, श्वास, मधुमेह, दाह एवं पाण्डु में उपयागी। कोंकण के निवासी कुचले के विष निवारण हेतु इसके पत्तों का विशेष उपयोग करते हैं।

द्रव्य नाम :- फ्रसंस्कृत - पुंत्रज्ञीव,
हिन्दी - जियापोता,
लैटिन - Putranjivia Roxburghii wall.

स्वरूप - इसके बहुशाखीय मध्यम ऊँचाई के वृक्ष पाये जाते हैं। पत्तियाँ चमकदार, प्रासवत या आयताकार, पुष्प-पीताभ रक्ताभ स्त्रीपुष्प-हरिताभ फलरोमश, हरिताभ एंव गुठलीदार होते हैं। सिंहभूमि, चम्पारण, पूर्णिया, रांची, संथालपरगना आदि क्षेत्रों में सर्वत्र इसके वृक्ष होते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- फ्रस्थानिक आदिवासी शिरःशूल में गुठलियों को घिसकर प्रयोग करते हैं। फल क्वाथ का उपयोग प्रतिश्याय एवं कास में करते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- फ्रशीतल, वृष्य, कफहर, चक्षुष्य, पित्तशामक दाह-तृष्णा निवारक।

यथा – पुत्रजीवों हिमोवृष्यः श्लेष्मदो गर्भजीवदः।
चक्षुष्यः पित्तशमनो, दाहतृष्णानिवारणः।। ध. नि.।।

द्रव्य नाम :- फ्रसंस्कृत - एरण्ड,
स्थानिक - अरण्डी,
लैटिन - Ricinus communis Linn.



स्वरूप :- इसके प्रसिद्ध पौध सर्वत्र पाये जाते हैं काण्ड-मृदु, पत्र-खण्डित पच्चांगुल सद्यश, पुष्प पीताभ हरित, फल-गुच्छों में बीज चिकने और चित्तीदार होते हैं। रक्त और श्वेत दो जातियाँ होती हैं।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण आदिवासी पत्र एवं बीज का उपयोग वातनाशक एवं उदरविकार में करते हैं। स्थानिक दाईयाँ बीज का उपयोग

परिवार नियोजन में करती हैं। विवन्ध में एरण्ड स्नेह का प्रयोग दूध के साथ करते हैं। वाह्य आघात पर एरण्ड पत्र का सेक करते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- प्रयोज्य अंग - मूल, त्वक्, पत्र और तैल। रस-मधुर, तिक्त, वीर्य-ऊष्ण, विपाक-मधुर, गुण-विरेचक, संतति निरोधक, वात-कफशामक, आन्त्र एवं वातसंस्थान पर प्रभाव कारी। रोगोपयोग-आमवात, शोथ, गुल्म, वातव्याधि, चर्मरोग, प्लीहोदर, कामला में उपयोगी। योग :- एरण्डपाक - (प्लीहोदर) में, एरण्डतैल - (विवन्ध) में।

द्रब्य नाम :- स्थानिक - पानीगंभार, विलूर,
लैटिन - Trewia nudiflora Linn.

स्वरूप :- मध्यम आकार के वृक्ष, रांची, पूर्णिया, चम्पारण आदि क्षेत्रों में पाये जाते हैं। पत्तियाँ लट्वाकर, हृदयवत् एवं सवृन्त होते हैं। नरपुष्पों की मञ्जरियाँ लम्बी एवं लटकी हुई होती हैं। फल-गोल गुठलीदार।

स्थानिक प्रयोग :- स्थानिक आदिवासी मूल का उपयोग आमवात और वातरक्त में करते हैं। इसके क्वाथ के प्रयोग से बिकृतपित्त बाहर निकलता है। स्थानिक व्यापारी छाल का संग्रह गंम्भारी छाल के स्थान पर करते हैं।

द्रब्य नाम :- संस्कृत - वृश्चिकाली,
स्थानिक - विछाटी, जियेन्दा, सेनगल,
लैटिन - Tragia involucrata Linn.

स्वरूप :- पौधे के मूल बहुवर्षायु, आरोहणशील, तीक्ष्णदंशक रोमों से युक्त काण्ड होते हैं। पत्तियां आयताकार, लट्वाकार, एवं तीक्ष्णदन्तुर, काण्ड के बदन को स्पर्श करनेपर बहुत जलन और खुजली होती है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी मूल का उपयोग स्वेदल और मूत्रल के रूप में करते हैं। मूल क्वाथ का उपयोग चर्मरोग में उपयोगी मानते हैं।

विशेष :- शास्त्रीय वृश्चिकाली के सन्दर्भ में मतभेद है। कुछ विद्वान Girardinia hetenophylla Dence. विच्छूबूटी एवं कुछवैद्य Pergularia extensa उत्तरण को वृश्चिकाली मानते हैं। लेखक के विचार से शास्त्रीय वृश्चिकाली Girardinia को स्वीकार करना उपयुक्त है। डल्हण ने कण्टकित मेषश्रंगतुगांकार फला पाठापत्राईषद्र रोमशा श्वेत पुष्पगुच्छा दक्षिणावर्तवल्ली मेषश्रृङ्गीभेद वृश्चिकामन्यो यह टीका की है। डल्हण के अनुसार Pergularia extensa में स्वरूप बोधकता विशेष है।

यथा – वृश्चिकाली कटुस्तिक्ता, सोष्ण हृद्वक्रशुद्धिकृत।
रक्तपित्त हरावल्या, बिबन्धारोचका पहा।। "नरहरि"

प्राचीनामलकुल - FLACOURTIACEAE

द्रव्य नाम :- संस्कृत - हपुषा,
हिन्दी - चीला (चिल्हक),
स्थानिक - रोरी (कों.) चोर्चो (सं.)
लैटिन - Caseria tomentosa Roxb.

स्वरूप :- बहुशाखीय मध्यम आकर के गुल्म पाये जाते हैं। पत्तियाँ आयताकार या अण्डाकार, मृदुरोमश होते हैं। पुष्प पत्रकोणीय, फल मांसल, गुठलीदार एवं पकने पर पीत वर्ण के होते हैं। इसके गुल्म इस क्षेत्र में प्रायः सर्वत्र सुलभ हैं।

स्थानिक प्रयोग :- फलचूर्ण को पानी में डालने से मछलियाँ मर जाती हैं। छाल का लेप शोथ तथा सर्पपिष में उपयोगी माना जाता है।

आयुर्वेदीय उपयोग :- भावमिश्र ने दो प्रकार के हपुषा का उल्लेख किया है, जिसमें अधिकतर विद्वानों ने हाऊवेर Juniperus Communis L. एवं J. macropoda को हपुषा माना है। टीकाकारों ने हपुषा विस्त्रगन्धा यह अर्थ किया है। ठा. वलवन्त सिंह ने शास्त्रीय हपुषा Caseria tomentosa कों स्वीकार किया है। एवं चिल्हक के Caseria esulenta Roxb. को स्वीकार किया है। यह गुणों में कटुतिक्त, उष्ण, गुरू, श्लेष्मविकारनाशक, पित्तोदर, अश्मरी, अर्श एवं गुल्म नाशक है।

यथा – हपुषादीपनी तिक्ता, मृदुष्णा तुवरागुरूः।
पित्तोदर समीरार्शो, ग्रहणीगुल्मशुलहृत्।। "भा. प्र. नि."

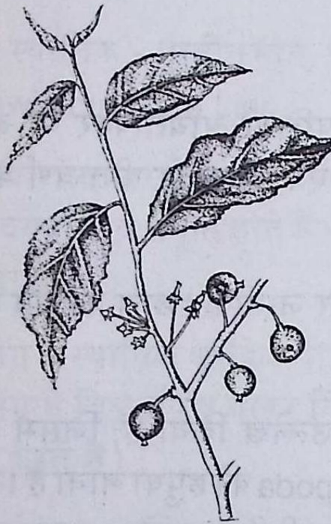
हपुषा कटुतिक्तोष्ण गुरूश्लेष्म वलासजित्।
प्रदरोदर विडवन्ध, शूलगुल्मार्शसां हरा।। "रा. नि."
रूप भेदो द्वयो रपि "भा. प्र."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - प्राचीनामलक,
स्थानिक - पनियाला, पनियारा,
लैटिन - Flacourtia Jangomas (Lour) Raeusch.

स्वरूप :- इसके छोटे व सीधे मध्यम आकार के वृक्ष होते हैं। काण्ड पर वहुविभक्त कांटे निकले रहते हैं। पत्तियाँ आयताकार, भालाकार, लम्बाग्र एवं दन्तुर होती हैं। चम्पारण एवं पूर्णिया में इसके वृक्ष प्रायः लगाये हुये पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग फलों का उपयोग प्रायः यकृतविकार में करते हैं। छाल मूत्रल एवं ज्वरघ्न के रूप में किया जाता है।

आयुर्वेदीय उपयोग :- संहिताग्रन्थों में प्राचीनामलक का उल्लेख चरकसंहिता सूत्रस्थान अध्याय २७ एवं संश्रुतसंहिता सूत्रस्थान अ. ४२ आया है।



द्रव्य नाम :- संस्कृत - विकंकत,
स्थानिक - ककैया, कांगू,
लैटिन - Flacourtia indica merr.

स्वरूप - यह मध्यम आकारका बहुशाखीय कण्टकित गुल्म है। पर्ण अभिलट्वाकार, सवृंन्त एवं मसृण होते हैं। पुष्प पत्रकोंणीय पीताभ हरित, फल-मांसल, स्वाद में मधुर एवं पकने पर नारंगींवर्ण के होते हैं। कहीं-कहीं इसके गुल्म पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग पके हुये फलों को खाते हैं। इसके फलों का रस पीलिया (कामला) एवं यकृत की गर्मी कां दूर करने में करते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- संहिताग्रन्थों में स्त्रुवा वृक्ष, स्वादुकण्टक आदि नामों से इस वनोषध का उल्लेख मिलता है। यह रस में अम्ल, मधुर, लघु, दीपन, कामला एवं पित्तनाशक है।

यथा – विकंकतोऽम्लों मधुरः पाकेऽतिमधुरो लघुः।
दीपनः कामलास्त्रघ्नः पाचनः पित्तनाशनः।। "रा.नि."

विशेष :- हवन याज्ञिक कार्य में यज्ञ में घी की आहुति देने हेतु इसके काष्ठ का स्त्रुवा बनाया जाता है।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - माड़ाशूल, सुलजरा,
लैटिन - Xylosma longifolium Clos.

स्वरूप :- इसका छोटा चिकना वृक्ष होता है। छोटे वृक्ष पर कांटे अधिक होते हैं। पत्तियाँ भालाकार लम्बाग्र, पुष्प छोटे हरिताभ और फल गोल तथा गांठ लाल रंग का होता है। इसके वृक्ष पलामू नेतरहाट, सिंहभूमि एवं संथालपरगना में पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी हो जाति के लोग विसूचिका (हैजा) में मूल को पीस कर पिलाते हैं।

पर्पटकुल - FUMARIACEAE



द्रव्य नाम :- संस्कृत - पर्पट,
स्थानिक - धमगजरा, शाहतरा,
लैटिन - Fumaria parviflora Lamk.

स्वरूप :- यह गेहूँ के खेतों में उगने वाली अनेक मृदुशाखाओं से युक्त स्वावलम्बी एकवर्षायु वनस्पति है। इसके पत्र गाजर की तरह दिखाई देते हैं। पुष्प गुलाबी रंग के होते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रमीण आदिवासी पंचाग क्वाथ का उपयोग विषमज्वर एवं सामान्य ज्वरों में करते हैं। इसके पंचाग चूर्ण २ से ३ माशा की मात्रा में दिन में ३ बार देने से रक्तविकार में लाभ होता है।

आयुर्वेदीय उपयोग :- रस-तिक्त, वीर्य-शीत, विपाक-कटु, गुण-संग्राही, सर, रक्तशोधक, दोष-कफ-पित्तशामक, रोगोपयोग-जीर्णज्वर, अतिसार एवं दाह, कृमि और ददु में उपयोगी।

योग :- पर्पटादिक्वाथ, पर्पटचूर्ण, मात्रा - २ से ६ माशा।

विशेष :- शाहतरा यूनानी औषधि है। इसकी एक किस्म ईरान से आती है। यह भारत में होने वाले पित्तपापड़ा से अधिक गुणकारी माना जाता है। अति मात्रा में प्रयोग करने से हृदय एवं यकृत पर हानिकारक प्रभाव डालता है।

चांगेरीकुल - GERANIACEAE

द्रव्यनाम :- संस्कृत - कर्मरंग,
हिंन्दी - कमरख,
लैटिन - Averrhoa carambola L.

स्वरूप - इसके बहुशाखीय मध्यम गुल्म लगाये हुये इस क्षेत्र में पाये जाते हैं। पत्तियाँ कम चौड़ी और फल धारीदार गोलाई लिये होते हैं। पकने पर ये फल मांसल एवं पीताभ वर्ण के होते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण लोग फलों का शरवत का उपयोग शीतल, रोचक, तृषानाशक एवं

ज्वरशमन के लिये करते हैं।

विशेष :- चरक, सुश्रुत एवं वाग्भट्ट में इसका उल्लेख नहीं है। मदनपाल एवं भावप्रकाश निघण्टु में इस का वर्णन मिलता है। १०वीं के लगभग इस द्रव्य का प्रचलन भारत में हुआ है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - लंज्ञालुभेद,
स्थानिा - लाजारी, लकजन,
लैटिन - Biophytum sensivitum DC.

स्वरूप :- इसके एक वर्षायु सुन्दर क्षुप नमदार स्थानों पर पाये जाते हैं। पुष्प दण्ड जमीन से सीधे ऊपर को निकलता है। पुष्पदण्ड प्रायः पत्तियों से लम्बे, धनरोमश एवं अनेक कोणपुष्पों से युक्त पीताभवर्ण के होते हैं। छोटानागपुर में सर्वत्र यह वनस्पति पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग पंचाग का उपयोग अर्श, कास एवं मूत्र रोगों में प्रयोग करते हैं।

विशेष :- ठा. वलवन्त सिंह ने श्रावणी, महाश्रावणी एवं मुण्डी से भिन्न द्रव्य अलम्बुषा स्वीकार किया है। इनके विचार से अलम्बुषा से Biophytum का उपयोग करना चाहिये। चरकसंहिता में अलम्बुषा का उल्लेख मिलता है चक्रपाणी टीकाकारों के अनुसार अलम्बुषा लंज्ञालुभेदः कहा है अतः लेखक के विचार से छुई-मुई की अन्य किस्म यह वनस्पति है। गुण भी लज्ञालु से मिलते-जुलते हैं।

अलम्बुषा लघुः स्वादुः कृमिपित्त कफापहाः।। "कै.नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - चांगेरी,
स्थानिक - तिनपतिया, अम्बुटी,
लैटिन - Oxalis carniculata L.

स्वरूप :- एक वर्षीय प्रसरी शाकीय वनस्पति है। पर्ण-त्रिपत्रक, हृदयवत् आयताकार, स्वाद में खटटे तथा पीले पुष्प वाले होते हैं। इस क्षेत्र के नमदार स्थानों पर यह वनस्पति सर्वत्र पाई जाती है। इसकी बड़ी प्रजाति भी पाई जाती है। जिसे Oxalis acetosella Linn. कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- पत्तियों का शाक बनाकर ग्रामीण खाते हैं। पंचाग शीतल ग्राही एवं उदरविकार नाशक।

आयुर्वेदिक उपयोग :- रस-अम्ल, कषाय, वीर्य-ऊष्ण, विपाक-कटु, दीपन, अतिसार, संग्रहणी, अर्श, उदरशूल, व्रण, त्वक्रोग, अग्निमांद्य एवं दाहनाशक।

योग :- चांगेरीघृत (प्रवाहिका)।

त्रायमाणकुल - GENTIANACEAE

द्रव्य नाम :- दानकुनी,
लैटिन - Canscora decussata Roem.

स्वरूप - यह शाकीय जाति की वनस्पति है। काण्ड ६ से १५ इंच ऊँचा, त्रिविभक्त एवं सपक्ष होते हैं। पत्तियाँ अवृन्त आमने-सामने आयताकार-प्रासवत, पुष्प श्वेतवर्ण के होते हैं। छोटानागपुर संथालपरगना के नमदार स्थानों पर सर्वत्र इसके क्षुप पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग पंचाग क्वाथ का उपयोग ज्वरघ्न दीपन एवं रेचन के लिये प्रयोग करते हैं। उन्माद में स्वरस का प्रयोग करते हैं। गुल्म एवं आनाह में मूल चूर्ण का उपयोग करते हैं।

विशेष - वंगीयवैद्य Canscora diffusa के पंचाग का उपयोग शंखपुष्पी स्थान पर करते हैं। कुछ लेखकों ने इसका हिन्दी नाम शंखाहुली लिख दिया है। गुणधर्म कामलमेघ से मिलते-जुलते हैं।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - कुचुरी,
हिन्दी - तितरवन,
लैटिन - Exacum tetragonum Roxb.

स्वरूप - यह १ से ३ फीट ऊंचा चौकोन काण्ड वाला शाकीय पादप है। पत्तियां अवृन्त, चौड़ी प्रासवत् आमने-सामने एवं परस्पर संयुक्त होती है। संथालपरगना, पूर्णियाँ, छोटानागपुर रांची आदि क्षेत्रों में यह वनस्पति पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग :- स्थानिक - गिर्मि
लैटिन - Erythraea Roxburghii G. Don.

स्वरूप - यह शाकीय जाति की वनस्पति है। पत्र मूलोद्भव, अभिलट्वाकार, अण्डाकार एवं उपर के काण्ड पत्र छोटे होते हैं। पुष्प गुलावी रंग के पुष्प व्यूह में निकलते हैं। इसके क्षुप प्रायः खेतों में स्वयंजात पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग पंचाग क्वाथ एवं चूर्ण का उपयोग ज्वर एवं कुपचन में देते हैं. रक्तविकार में भी इसे उपयोगी मानते हैं। क्वाथ कटुपौष्टिक है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - किरात, चिरायता,
स्थानिक - को. मिरची,
लैटिन - Swertia angustifolia Ham

स्वरूप :- इसके स्वावलम्बी प्रसरणशील १ से २ फीट ऊंचे क्षुप होते हैं। काण्ड चतुष्कोण, पत्तियाँ आमने-सामने, रेखाकार, प्रासवत् एवं अवृन्त होते हैं। पुष्प श्वेत एवं नीलाभ वर्ण के होते हैं। नेतरहाट, छोटानागपुर एवं पूर्णियाँ के ऊंची पहाड़ियों पर इसके क्षुप पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- पंचागचूर्ण एवं क्वाथ का उपयोग ज्वर तथा रक्तविकार में करते हैं।

विशेष :- Swertia chirayata के अभाव में इसके पंचाग का उपयोग किया जाता है। इसके पंचाग में कड़वाहट कम पाई जाती है।

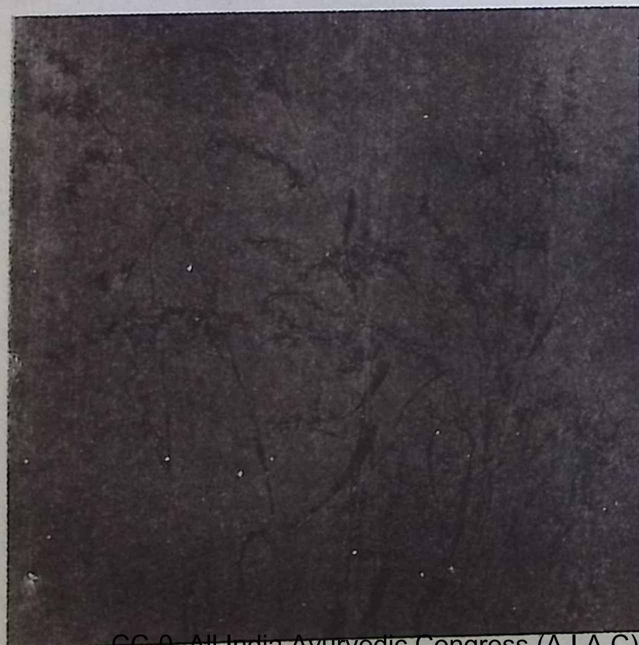
तृणकूल - GRAMINEAE

द्रब्य नाम :- संस्कृत - दूर्ब्वा,
स्थानिक - दूव,
लैटिन - Cynolon dactylon Pers

स्वरूप :- सदाहरित प्रसरीघास है। यह घास नमदार स्थानों में पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग :- पूजा में यह दूव धास पवित्र मानी जाती है। आदिवासी लोग अगुंलियो के बीच सड़ान होने पर इसका लेप करते हैं। दूव स्वरस का उपयोग नासागत रक्तस्स्राव में करते हैं। यह पित्तशामक एवं रक्तशोधक है।

आयुर्वेदीय उपयोग :- आयुर्वेद में तीन प्रकार के दूर्वा का उल्लेख मिलता है। श्वेतदूर्व्वा, नीलदूर्व्वा एवं गण्डदूर्व्वा तीनों गुणधर्म समान हैं। दूव-शीतल, कषाय, रक्तपित्त नाशक एवं रक्तप्रदर में उपयोगी है।



यथा - दूर्वा शीता कषाय च, रक्तपित्त कफापहा।
अनुपत्राकषाया च, शीतला श्लेष्म वातला।। "ध.नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - लामज्ञक,
स्थानिक - रोजाघास, मिरचई,
लैटिन - Cympopogan jwarancusa Schult.

स्वरूप - यह ३ से ५ फीट ऊँची घास है। इसकी जड़ें सुगन्ध युक्त होती हैं। पत्तियाँ चिपटी २ फीट तक लम्बी एवं पतली नोक वाली होती हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी मच्छरों को भगाने के लिये पंचाग का धूपन करते हैं। इसके पत्र में सुगन्धित तैल पाया जाता है।

यथा – लामज्जक भवेतिक्तं हिमंचात्यन्तमिष्यते।
पित्तप्रशान्ति जननं, विषं रक्त विनाशकम्।। ध.नि.।।

द्रव्यनाम - संस्कृत - सुगन्धतृण,
स्थानिक - रतहर सुगन्ध,
लैटिन - Cymbopogan martini stapf.

स्वरूप :- यह ३ से ४ फीट ऊँचा और मधुरगन्ध तृण जाति का घास है। काण्डचिकने प्रायः रक्ताभ होते हैं। इसकी पत्तियों को मसलकर सुगन्ध आती है।

स्थानिक प्रयोग :- इसके पत्तों में सुगन्धित तैल पाया जाता है। हवन सामग्री में उपयोग किया जाता है।

इसकी किस्मों की खेती की जाती है। जिसे रोजा घास कहते हैं। इसके गुण भी लामज्जक सधश हैं। इसका उपयोग सावुन उधोग में भी किया जाता है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - गवेधुक,
स्थानिक :- गर्गरी को. होडिड, सं. जरगदी,
लैटिन - Coix lechryma jobi L.

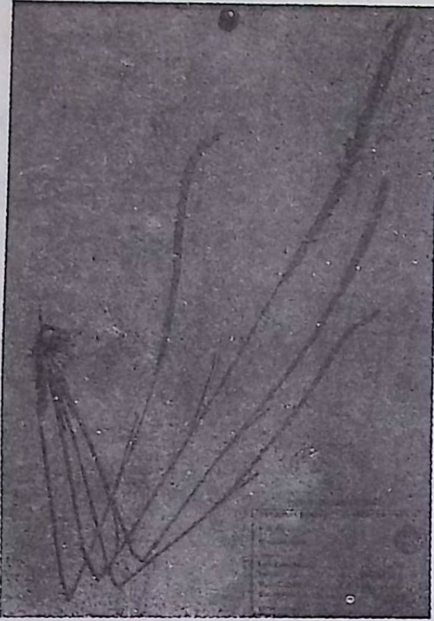
स्वरूप :- इसके काण्ड के साथ मूलोद्भव लम्बी पत्तियाँ होती हैं। पत्तियां रेखाकार, किनारे तीक्ष्ण और कठोर होता है। पुष्पदण्ड लम्बे-चपटे, तीन पहल वाले पत्रकोण में एक साथ कई निकले रहते हैं। इस क्षेत्र में जलाशयों के समीप एवं नालों के आसपास यह सर्वत्र पाया जाता है। इसकी अन्य बड़ी जाति इस क्षेत्र में पाई जाती हैं। जिसे C. gigantea कहते हैं। फल अण्डाकार एवं गोल होता है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी बीजों को शीतल और मूत्रल मानते हैं। इसके बीजों का मांड का पानी पेशाब की जलन में प्रयोग करते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- चरकसंहिता सूत्र अध्याय २, सुश्रुतसंहिता सूत्रस्थान अ.४६, अष्ठाङ्गहृदय सूत्रस्थान अ. ६ में गवेधुक का उल्लेख आया है। कटुरस, कृशता लाने वाला, तथा कफनाशक है। क्वाथ का उपयोग मूत्रकृच्छ्र एवं मूत्रल के रूप में किया जाता है।

विशेष :- बीजों से निर्मित आटे की रोटी खाने से मेदोवृद्धि में लाभ होता है। इसके प्रयोग करने

से चर्बी घट जाती है। यह शोध का विषय है।



द्रव्य नाम :- संस्कृत - कुश, दर्भ,
हिन्दी - कुश,
लैटिन - Desmostachya bipinnata Stapf.

स्वरूप :- यह तृण जाति की वनस्पति है। मूल स्तम्भ सीधा खड़ा एवं गहराई तक होता है। पत्तियाँ १५ इंच तक लम्बी, तीक्ष्ण एवं सूक्ष्म रामों के कारण तेज धार से होता है। मूल बहुवर्षायु एवं घास के मैदानों में पाया जाता है।

स्थानिक उपयोग :- आदिवासी घरेलू पूजा के काम में इसका उपयोग करते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- कुश, काश, शर, दाव एवं इक्षु इसके पांचों मूल को तृणपञ्चामूल कहते हैं। यह पित्तज्वर, तृषा, रक्तविकार, अम्लपित्त मूत्रल रक्तपित्त एवं प्रमेह नाशक है। राजनिघन्टुकार ने श्वेतदर्भ भेद कहा है। जो कि श्वेत प्रकार भेद से जाना जाता है। यह भी शीतल, पिपासाहर, अश्मरी एवं प्रदर में उपयोगी है।

यथा – दर्भयुग्मं पवित्रं स्यान्मूत्र कृच्छ्रघ्नशीतलम्।
रक्तपितं प्रशमनं, केवलं पित्तनाशनम्।। "ध.नि."

संस्कृत साहित्य में कुश :- रघुवंश नामक महाकाव्य में राजारघु ऋषियों को पूछते हैं कि मृगशावक ऋषियों के प्रिय कुशतृणों की रक्षा करते हुये घास चरते होगें। मन की एकाग्रता हेतु कुशासन का उल्लेख काव्यों में मिलता है। जिस वन में हवन की सामग्री एवं कुश आसन के लिये सुलभ हों कानन धन्य है। वाल्मिकीय रामायण के अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड में हबि के उपयोग, शय्या के लिये, पर्णशाला के प्रसंग में पंचवटी के प्रसंग में लक्ष्मण और इन्द्रजीत के युद्ध में, श्री राम के हाथों में कुश धारण करना तथा मार्जन, कर्मकाण्ड में पितरों की सदगति हेतु कुश का उल्लेख मिलता है।

यथा –शरेक्षुदर्भ कासानां नलस्यं मूलमेव च।
सौश्रुतन्चरकं चैव तृणास्व्यं पञ्चमूलकम्।। "सुश्रुत."

तृणानां पञ्चमूलन्तु, पित्तज्वर तृषापहम्।
रक्तदोषाम्लपित्तंच, स्त्रीरोगरक्तपित्तकम्।। "सु.शा."

विशेष :- चरक एवं सुश्रुत ने कुश एवं दर्भ का एक साथ उल्लेख किया है। डल्हण ने दोनों में स्पष्ट भेद बताया है।

विशेष :- कुशः ह्स्वदर्भः मृदुसूचिपत्र, दर्भ स्थूल दीर्घाः।। डल्हण।।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - मधूलिका, नर्तक,
स्थानिक - रांगी, मंडवा, नांचणी,
लैटिन - Eleusine carocana Gaest.

स्वरूप :- यह तृण जाति का पौधा है। इसकी प्रायः शुष्क जमीन में खेती की जाती है। काण्ड-मृदु से २फीट से ३ फीट तक ऊँचा, पत्र-अवृन्त एवं मृदु होते हैं। बीज गुच्छों में हाथ की अंगुलियों सदृश पांच वालियों में होते हैं। इसी कारण इसे मर्कट-हस्ततृण भी कहते हैं। अगस्त, सितम्बर में इसकी खेती तैयार हो जाती है। मोटे अनाजों में इस धान्य की गणना की गई है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी इसकी रोटी बनाकर खाते हैं। इसके बीजों से किण्वीकरण कर मादक पेय तैयार करते हैं। इसी कारण इसे मधूली, मधूलिका कहते हैं। सिक्किम, भूटान में इसके बीजों से छंग (मादक पेय) तैयार की जाती है।

आयुर्वेदीय उपयोग :- यह कषाय तिक्त मधुर, बलकारक, शीतल, पित्तनाशक एवं पित्तदोषहर है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - श्यामाक, त्रिबीज,
स्थानिक - सांवा, झंगोरा,
लैटिन - Echinochloa frumentacea link (syn panicum frumentaceum Roxb.)

स्वरूप :- यह तृण जाति का पौधा ३ से ५ फीट तक ऊंचा होता है। काण्ड मृदु तलोत्थ, पत्र परस्पर एकान्तर कम में पुष्प वाली में काण्ड के अग्रभाग में मिलते हैं। बीज वाली में भूरे रंग के होते हैं। शुष्क जमीन में जुलाई, अगस्त में इसकी खेती की जाती है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग इसे क्षुद्रधान्यो के रूप में प्रयोग करते हैं। सावां के नाम से इसका उपयोग खाद्यसामग्री में किया जाता है।

आयुर्वेदीय उपयोग :- संहिताग्रन्थों में श्यामाक एवं अम्भश्यामाक के नाम से इसका उल्लेख मिलता है। अभ्मश्यामाक को वनस्पतिशास्त्र के आधार पर Echinochloa crusgalli कहते हैं। यह प्रजाति गुणों में रूक्ष, वातजनक, कफपित्त को दूर करने वाला एवं मलावरोधक माना जाता है।

यथा – श्यामको मधुर स्निग्धः, कषायो लघुशीतलः।
वातकृत् कफपित्तघ्नः, संग्राही विषदोषनुत्।। "घ.नि."

द्रव्य नाम :- शालिधान्य, तण्डुल,
स्थानिक - धान, वाडलु,
लैटिन - Oryzia sativa L.

स्वरूप - इसकी खेती इस क्षेत्र में की जाती है। इसकी तीन किस्में इस क्षेत्र में पाई जाती हैं। नीवार धान्य भी इस क्षेत्र में कहीं-कहीं पाया जाता है।

विशेष :- संहिताग्रन्थों में शालि, साठी एवं ब्रीही तीन प्रकार के धान्यों का उल्लेख है। शालिधान्य हेमन्त ऋतु में ब्रिही एवं षष्ठी धान्य ग्रीष्म ऋतु में तैयार होता है। प्रकार भेद से कई प्रजातियाँ इन धान्यों की पाई जाती हैं। इस प्रकार आहारोपयोगी वर्गों में शूकधान्य, शमीधान्य, कुधान्य (क्षुद्रधान्य) शमीवर्ग, शूक्वर्ग एवं फलवती भेद से खाद्य सामग्रीयों का विस्तृत उल्लेख मिलता है। अनुसन्धायकों के अध्ययन एवं शोधकार्य हेतु उनका उल्लेख यहाँ पर दिया जा रहा है।

शालि धान्य के प्रकार :- रक्तशालि; महाशालि, सुगन्ध, प्रसव, वृन्दारक, मुष्ठिक, कृष्णशालिः श्वेतशालि, अरण्यधान्य जलजधान्य। ब्रीही-षष्ठी, गौरशालि, मूण्डशालि,

यथा - शालिधान्य ब्रीहीधान्यं शूकधान्यं तृतीयकम्।
शिम्बीधान्यं, क्षुद्रधान्यं मितियुक्तं धान्य पच्चकम्।।
शालयो रक्तशाल्याद्या, ब्रीहीयः षष्ठिकादयः।
यवादिकं शूकधान्यं मुद्राद्यं शिम्बिधान्यकम्।।
कंग्वादिकं क्षुद्रधान्यं च तत्स्मृतम्।। "ध.नि."

गुण :- धान्यं सर्व नवं स्वादु, गुरूश्लेष्मकरं स्मृतम्।
तत्तुवर्षोषितं पथ्यं यतो लघुतरं हित्तम्।। "ध.नि."

लालशालि के गुण :- मधुर, लघु, स्निग्ध रूचिकर, दीपन, पथ्य एवं पित्त दाहनाशक।

महाशालि के गुण :- मधुर, पित्तशामक, ज्वर, जीर्णज्वर, दाहनाशक, शिशुओं के लिये हितकर।

सूक्ष्मशालि के गुण :- मधुर, लघु, दीपन, पाचन, पित्तदाहनाशक, कुछ वातकारक।

कृष्णशालि :- त्रिदोषघ्न, मधुर, वलवर्धक, कान्तिकर।

वाल्मीकीय रामायण के उत्तरकाण्ड, अरण्यकाण्ड के रामाश्वमेध के एवं पंचवटी के प्रसंग में तण्डुल का उल्लेख है। लाजा ब्रीही धाम्य विशेषः राज्यभिषेक हेतु।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - यव, अक्षत, शितशूक,
स्थानिक - शूक, जौ,

लैटिन - Hordeum vulqare L.

स्वरूप :- इसका उल्लेख शूक धान्य वर्ग में है। शूक विना पानी वाली भूमि में इसकी खेती ग्रामीण लोग करते हैं। शितशूक को जौ कहते हैं। हिमालय के ऊँचे क्षेत्रों में इसकी दो किस्में पाई जाती हैं।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण लोग इसकी रोटी वनाकर खाते हैं। यव भूनकर सतवा भी वनाते हैं।
आयुर्वेदीय उपयोग :- रूक्ष, शीतल, लेखन, मृदु, वीर्यवर्धक, प्रमेहहर, त्वग्दोषहर, मलावरोधक, कफनाशक,पित्त एवं श्वास-कासनाशक है।

यथा - रूक्षः शीतो गुरूस्वादुः कषायो मधुरो यवः।
वृष्योग्राही कफघ्नश्च, स्यापित्तश्वास कासनुत्।।"ध.नि."

वाल्मीकीय रामायण में अरण्यकाण्ड के पंचवटी के प्रसंग में यव का उल्लेख है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - कोद्रव, कोदूरष,
स्थानिक - कोदो,
लैटिन - Paspalum scrobiculatum L.

स्वरूप :- यह तृण जाती की वनस्पति है। मंडवा की तरह इसके पौध होते हैं। आदिवासी लोग शुष्क भूमि में इसकी खेती करते हैं। अन्य प्रजाति भी पायी जाती है। जिसे वनकोद्रव कहते हैं।

ग्रमीण प्रयोग :- आदिवासी इसकी रोटी वनाकर खाते हैं। मंडवा की तरह इसके बीजों में मादकता पाई जाती है। किण्वीकरण करके स्थानिक मद्य तैयार करते हैं।

विशेष :- संहिताग्रन्थों कोरदूष, मदनकोद्रव आदिनाम इस द्रव्य के मिलते हैं। यह क्षुद्रधान्य वर्ग का है जो कि वातकारक, मलरोधक, शीतल एवं पित्त-कफ नाशक है। सुश्रत ने इसे विषनाशक माना है।

यथा - को द्रवोमधुर स्तिक्तः व्रणिनां पथ्य कारकः।
कफ पित्त हरो रूक्षोः, मोह कृत् वातलोगुरूः।।"ध.नि."

द्रव्यनाम :- संस्कृत - वर्जरी, नीलकणा,
स्थानिक - बजरी, बाजरा,
लैटिन - Pennisetum typhoideum Rich.

स्वरूप :- यह तृण की वनस्पति है। इसकी विनापानी के शुष्क जमीन में खेती की जाती है। क्षुद्रधान्य (मोटे अनाज) में वाजरा आता है।

गुण :- यह हृदय के लिये हितकारी, वल्य, कान्तिकर, रूक्ष, पित्त को कुपित करने वाला, स्त्रियों के काम को वढाने वाला, देर से पचने वाला एवं पुष्ठि को कम करने वाला है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - चीनाक,
स्थानिक - चीणा, वारी,
लैटिन - Panicum miliare Lam.

स्वरूप - यह तृण जाती का क्षुद्रधान्य है। आदिवासी क्षेत्र में इसकी खेती की जाती है। इसकी अन्य प्रजाति भी पाई जाती है। जिसे Panicum miliaceum Linn. कौंणी कहते हैं। संस्कृत में इसे प्रियंगु, कंगनिका कहते हैं वर्ण भेद से यह काली, सफेद, लाल एवं पीली चार प्रकार की होती है। इनमें पीली जाति की सवसे श्रेष्ठ मानी जाती है।

गुण :- भग्नसंन्धान-कारक, वातकारक, पुष्ठिकारक, रूक्ष, कफनाशक, कफ-पित्तशामक, घोड़ों के लिये उपयोगी माना जाता है। मुख्यतया ग्रामीण दाईयाँ गर्भ गिराने के लिये काम में प्रयोग करती हैं।

यथा – प्रियगुं मधुरों रूच्यः कषायः स्वादुशीतलः।
वातकृत् पित्तदाहघ्नो, रूक्षोभग्नास्थिवन्धकृत्।।"ध.नि."

विशेष :- इसकी अन्य प्रजाति को वरक, स्थूलकंगु कहते हैं। सम्भवतः यह चीणाक है।

यथा – वरकः स्थूलकंगूश्च, रूक्षः स्थूलप्रियंगुकः।
वरको मधुरोरूक्ष, कषायोवात पित्तकृत्।।"रा.नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - कंगुभेद,
स्थानिक - टांगुन,
लैटिन - Setaria italica Beauv syn (syn. panicum italicum Linn.)

स्वरूप :- यह भी प्रियंगुधान्य सद्यश तृण जाति का धान्यविशेषः है। संहिताकारों ने षष्ठिक धान्य वर्ग में भी इसका उल्लेख किया है। कंगुक कांता, आदिनाम इसके मिलते हैं। प्रियंगु नामक वनस्पति से Callicarpa एवं Aglaia prunus आदि की किस्मों का उल्लेख मिलता है। वेणुपत्रिका से अधिकतर विद्वानों ने Seteia की प्रजातियों का माना है। जो कि तृण जाति के वन्यधान्य है। इन धान्यों के पत्र वंशपत्र सद्यश होने के कारण वेणुपत्रिका नाम दिया गया है। यव के प्रकार भेदों मे वेणुबीज का उल्लेख आया है। अर्थात् इसके बीज वेणुबीज सद्यश होते हैं। कतिपय आदिवासी क्षेत्रों में वेणुबीज का उपयोग आटे के रूप में किया जाता है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - यावनाल, जूर्ण, इक्षुपत्रक,

स्थानिक - ज्वारी, जुनीला
लैटिन - Sorghum vulgare pers.

स्वरूप :- यह तृण जाति का धान्य है। शुष्क भूमि में इसकी खेती की जाती है। ज्वारी श्वेत एवं रक्त भेद से दो प्रकार की होती है। शारद यावनाल-कफ कारक, पिच्छिल, गुरू, शीतल, वल्य, मधुर एवं त्रिदाष नाशक है।

यथा – कफ पित्तहरावृष्या मृदवो गुरवो हिमाः।
रूक्षा विष्ठम्भिनश्चैव, न पश्यागुदरोगिणाम्।। "ध.नि."
धवलोयावनालस्तु, गोल्ये बल्यान्त्रिदोषजित्।
स रक्त यावनालो, हितो हितस्तुवर धान्यश्च।
शारदो यावनालस्तु, श्लेष्मदः पिच्छिल गुरूः।। "रा.नि."

द्रव्यनाम :- संस्कृत - गोधूम, यवन,
स्थानिक - गेंहूँ, गंदुभ,
लैटिन - Triticum aestivum Linn.

स्वरूप :- खाद्यानों में इस धान्य का सबसे अधिक महत्व है। आज कल कई किस्मों की खेती की जा रही है। इसकी महागोधूम, दीर्घगोधूम एवं मधूली तीन जातियाँ हैं। महागोधूम-पंजाव एवं पश्चिम देशों में पाया जाता है।

मधूली :- यह बड़ा गेहूँ की अपेक्षा छोटा होता है। इसको कहीं-कही नन्दी मुख भी कहते हैं।

गुण :- मधुर, भारी, विष्ठग्भ-कारक, वीर्यवर्धक, शीतल एवं त्रिदोष नाशक है।

यथा – गोधूम स्निग्ध मधुरो, वातघ्न पित्तदाहृत्।
गुरूः श्लेष्म भेदों बल्यो वीर्य – वर्द्धनः।। "रा.नि."

वाल्मिकीय रामायण के अरण्य काण्ड के पंचवटी प्रसंग में गोधूम का उल्लेख है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - नीवार, मुनिधान्य,
स्थानिक - वनधान्य,
लैटिन - Sateria Sp.

स्वरूप :- यह जंगली तृण जाति का क्षुद्रधान्य है। आदिवासी लोग इसे खाद्य सामग्री में उपयोग करते हैं। ऋषि मुनियों का यह प्रिय आहार है। शीतल मलरोधक एवं पित्तशामक है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - मक्का, मकाय,

स्थानिक - मकई,
लैटिन - Zea mayas L.

स्वरूप :- इसकी खेती इस क्षेत्र में की जाती है। खाद्य सामग्री में इसका अधिक उपयोग है। इसकी कई किस्में तैयार की जा रही हैं।

गुण :- तृप्तिकारक, कफ-पित्तनाशक, वातल, विष्ठम्भ कारक, कच्ची मक्का पुष्टिकर एवं रूचिकर है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - इक्षु, गुड़काष्ठ,
स्थानिक - ईख, गन्ना,
लैटिन - Saccharum officinarum Linn.

स्वरूप :- इसकी इस क्षेत्र में कहीं-कहीं खेती की जाति है। स्वरूप भेद से यह श्वेतइक्षु, कृष्णइक्षु एवं रक्त-इक्षु तीन प्रकार का माना जाता है।

गुण :- सफेद ईख श्रमनाशक, वृष्य, रक्तपित्त को शान्त करने वाला, दाहनाशक एवं कफ कारक होता है। काला ईख सफेद ईख सद्यश वीर्यवर्धक एवं दाहनिवारक है। लाल ईख शीतल, पाक में मधुर, वीर्यवर्धक, वलकारक एवं कान्ति जनक है। वाल्मीकीय रामायण अयोध्याकाण्ड के भारद्वाज आश्रम में इक्षु का उल्लेख है। शास्त्रकारों ने निम्न प्रकारों का उल्लेख किया है। १. पौड्रक, २. भीरूक, ३. वंशक, ४. शतपोरक, ५. कान्तार, ६. तापसेक्षु, ७. सूचिपत्र, ८. दीर्घपत्र, ९. नैपाल, १०. को शकृत।



ईख के मूल एवं मध्य भाग में मधुर रस, ग्रन्थि एवं अग्रभाग में लवण रस होता है। दांतों से चूसी हुई ईख शीतल रक्तपित्त निवारक एवं हृदय के लिये हितकारी है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - वंश, वेणु, यवफल,
स्थानिक - वांश,
लैटिन - Bembusa bambos druce syn.

स्वरूप :- इसके मध्यम झाड़ीनुमा गुल्म होते हैं। आदिवासीयों का यह बहुत ही उपयोगी पादप है। वाशों का इनके जीवन में बहुत उपयोग होता है। यह दो प्रकार का पाया जाता है। एक छेद वाला एवं बिना छेद का। गांठों से वंश लोचन

प्राप्त किया जाता है।

गुण :- कफ, रक्त, विकार, सूजन, प्रमेह एवं दाहनाशक है। अंकुर-चरपरा, रूक्ष, सारक, कफकारक, स्वादिष्ठ, दाहजनक होता है। वांस के चावल मधुर, पुष्ठिकारक, वल वर्धक, विष एवं प्रमेहनाशक है। वाल्मिकीय रामायण में अयोध्याकाण्ड, किष्कन्धाकाण्ड, सुन्दर काण्ड के चित्रकूट के प्रसंग में माल्यवान् पर्वत पर लंका के अरिष्ठ गिरि पर वांश का उल्लेख है। इसी तरह सेतु निर्माणार्थ वंश का वर्णन मिलता है।

यथा – वंशौ त्वम्लौ कषायौ च, किञ्चित्तिक्तौ च शीतलौ।
मूत्रकृच्छ्रं प्रमेहार्शः, पित्त दाहास्त्रः नाशनः।।
वंशाग्रं पित्तास्त्रदाह कृच्छ्रघ्नं, रूचिकृत्पर्व निर्गुणम्।। "रा.नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - नल,
हिन्दी - नरसल, नरकट,
लैटिन - Phragmites maxima Blatter & Mc Conn.

स्वरूप :- तृण जाति का गुल्म है। काण्ड बहुशाखीय, खुले नालों एवं सड़कों के आसपास पाया जाता है। यह दो प्रकार का होता है। एक को नालों और दूसरे को महानाल कहते हैं। इसे भिन्न देवनल भी राजनिघन्टुकारों ने लिखा है।

गुण :- शीतल, रूचिकारक, अग्निदीपन, मूत्रल, वस्तिरोग-मूत्रल एवं योनिशूल में मूल उपयोगी माना जाता है।

विशेष :- महानल Fragmites Kirka यह भी वन्यजाति है। इसका नाल नरसल से मोटा है। रसकर्मोमें इसका उपयोग किया जाता है।

यथा – नलः शीतकषायश्च, मधुरो रूचिकारकः।
रक्तपित्तप्रशनों दीपनों वीर्य वृद्धिदः।। "रा.नि."

महानल नलस्यादधिको वीर्य शस्यते रस कर्मणि।।

देवनल :– देवनलोऽतिमधुरो, वृष्य ईषत्कषायकः।
नलस्यादधिको वीर्ये शस्यते रसकर्मणी।। "रा.नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत -मुञ्ज, वीरण,
स्थानिक - सरपत, रामसार,
लैटिन - Saccharum munja roxbe.

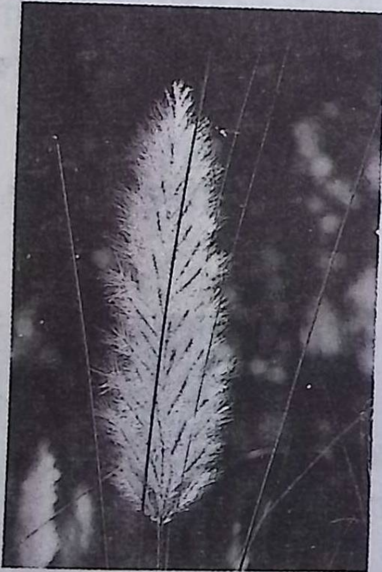
स्वरूप :- यह तृण जाति का बहुशाखीय काण्ड है। यह जलाशय एवं रेतीली ज़मीन में अधिक पाया जाता है। यह दो प्रकार का होता है। मुन्ज और भद्रमुन्ज।

गुण :- कषाय, मधुर, शीतल, दाह, तृषा, विसर्प, भूतनाशक, मूत्ररोग एवं नेत्र रोगों में उपयोगी है। पूजा एवं कर्मकाण्ड में मुन्ज का प्रयोग किया जाता है।

यथा – मुञ्जस्तु मधुरः शीत, कफ पित्तज दोषजित्।
ग्रहरक्षासु दीक्षासु, पावनो भूतनाशनः।। "रा.नि."
मुञ्जः क्षुरः स्थूलदर्भो, वाणाह्नो ब्रह्ममेखलः।।

विशेष :- संहिताग्रन्थों में सर, वल्वज, दूषिका आदि पर्यायों से इस तृण का उल्लेख है। वाल्मिकीय रामायण में शर (सरकण्डा) का उल्लेख आयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्य, पंचवटी एवं हनुमान जी के लंका से लोटते समय मार्ग के प्रसंग में है।

द्रव्य नाम :-संस्कृत - काश, चामरपुष्पक, नादेय,



स्थानिक - कांस, कांशा,

लैटिन - Saccharum spontaneum L.

स्वरूप :-यह वर्षा कालीन नदी-नालों, जलाशयों के समीप पैदा होने वाला तृण जाति का काण्ड है। ग्रामीण लोग छप्पर बनाने केकाम में इसका उपयोग करते हैं। इसके दो भेद पाये जाते हैं। जिसे निरज, (शिशिरी) कहते हैं।

गुण :- तृप्तिकारक, शीतल, बलकारक, मधुर, दाह, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी एवं पित्त रोग नाशक है।

यथा – काशः स्वादु रसे तिक्तो,
विपाको वीर्यतः हिमः।
तर्पणों वल कृत्वृष्यः श्रम शोष भया पहः।।
काशद्वयं च पित्तास्त्र कृच्छ्रजिन्मधुरं हिमम्।। "रा.नि."

वाल्मिकीय रामायण में आयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, सुन्दरकाण्ड के प्रसंग पंचवटी में लंका लोटते समय राह में एवं हवन में प्रयोगार्थ शर, कांस का उल्लेख है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - एरका, गुन्द्र,

स्थानिक - गोंदपटर,
लैटिन - Typha elephantina Roxb.

स्वरूप :- यह जलीय स्थानों में पैदा होने वाला तृण जाति का काण्ड है। प्रायः सर्वत्र पाया जाता है।

गुण :- कषाय, मधुर, शीतल, रक्तपित्तनाशक, दूध को बढाने वाला शुक्र, रज एवं मूत्र को शुद्ध करने वाला और मूत्रकृच्छ्र में उपयोगी है।

द्रव्य नाम :- स्थनिक - गाड़ा-जोनोर, फुलवारी बुसनियाँ,
लैटिन - Thysamolaena agrostis Nees.

स्वरूप :- ५ से १० फीट ऊँची घास होती है। पुष्प-ब्यूह में बड़ा होता है। नदी नालों के किनारे यह पाया जाता है।

स्थानिक प्रयोग :- इसके मूल का उपयोग अन्य औषध द्रव्यों के साथ क्वाथ तैयार कर प्रसूता को पिलाते हैं।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - कुकुरू, कुतरी, कांगुन,
लैटिन - Seteria gluca Beav.

स्वरूप :- कुतरी घास ३ फीट ऊँची और चिकने काण्ड वाली होती है। चौमासों में खेतों के आस-पास छोटानागपुर में यह घास पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग सर्प विष एवं वृश्चिक-दंश में इसका मूल का उपयोग करते हैं।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - उशीर, वीरण,
स्थानिक - खश, खिरोम,
लैटिन - Vetiveria zizaniodes Stopf.

स्वरूप :- खश का पौधा द्रढ, गुच्छवद्ध होता है। मूल सुगन्धित तैलीय होता है। यह अधिकतर खु हुये दल-दल वाले स्थानों में पैदा होता है। प्रायः यह वर्ष भर पाया जाता है।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण लोग इसकी चटाई बनाते हैं। मूल का उपयोग शीतल, मूत्रल एवं ज्वर में करते हैं।

गुण :- दुर्गन्धनाशक, दाह एवं रक्तपित्तनाशक है। पैत्तिक ज्वर एवं मूत्रल मे रूप में उपयोग होत है। रक्त-शोधक है।



**यथा – उशीरं शीतलं तिक्तं, दाहश्रमहरंपरम्।
पित्तज्वरार्तिशमनं, जलसौगन्ध्यदायकम्।।
"रा.नि."**

योग :- उशीरासव।

विशेष :- वाल्मिकीय रामायण के आयोध्या काण्ड अरण्य काण्ड, युद्धकाण्ड में नाव बनाने एवं रावण के शव की चिता जलाने के प्रसंग में उल्लेख है। इसके अतिरिक्त अन्य कतिपय उपयोगी घासें तृण कुल में पाई जाती हैं। पहिचान के अभाव से अभी कतिपय जातियों का निर्णय नहीं हो सका है। अन्य उपयोगी तृणों का उल्लेख आयुर्वेद में मिलता है। वे इस प्रकार हैं।

वल्वज :- वलईघास, इसकी रस्सीयाँ बनाई जाती हैं।

उखलतृण :- यह तृण पशुओं के लिये हितकारी है।

गोमूत्रिका :- यह तृण मवेशियों में दूध बढाने वाला है।

शिल्पिकतृण :- यह मवेशियों के लिये मधुर, शीतल और वलवर्धक है।

निश्रेणिका :- यह तृण निरस और पशुओं के लिये अहितकर है। इसे भावड़ घास भी कहते हैं।

जड़ीतृण :- यह रूचिकारक एवं पशुओं में दूध बढाने वाला है।

मुञ्जतृण :- यह मधुर गायों का दूध बढाने वाला है।

वंशपत्रीतृण :- पशुओं के लिये वलवर्धक, रूचिवर्धक है।

मन्याकतृण :- गायों के प्रिय दूग्धवर्धक है।

पल्लीवाहक तृण :- यह पशुओं को कमजोर करता है।

लवणतृण :- खारा, अम्ल, कषैला एवं दूध नाशक है।

पर्णधान्य :- तिक्त, सारक, तत्काल शस्त्र के घाव को भरता है।

गुण्डतृण :-वृतगुण्ड, चणिकातृण एवं शूलीतृण आदि तृणों का उल्लेख शास्त्रों में वर्णित है। पशु चारा विभाग इनमें शोध करें।

तुलसीकुल - LABIATAE

द्रव्य नाम :- स्थानिक - पांजरा,
हिन्दी - कर्पुरवल्ली,
लैटिन - Anisochilus carnosus wall.

स्वरूप - इसके मृदुरोमश क्षुप २ से ३ फीट ऊँचे होते हैं। पत्तियाँ मोटी मांसल लट्वाकार, सवृन्त गोलदन्तुर होती हैं पुष्प मञ्जरी में जामुनी रंग के। पलामू, पूर्णियां, सिंगभूमि आदि स्थानों के चट्टानी जगहों पर पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी पत्तियों का उपयोग स्वेद-जनक एवं कफघ्न के रूप में प्रयोग करते हैं। इसका पत्र ग्राही एवं पाचक होता है।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - पथरचूर, पत्ताअजवाइन,
लैटिन - Coleus amboinicus Lour.

स्वरूप :- इसके मनोहर सुगन्धित क्षुप होते हैं। पत्तियाँ सवृन्त वृताकार रोमश, गोल, दन्तुर एवं मांसल होती हैं। पुष्प-बहुत छोटे हलके नीले रंग एवं जामुनी रंग के होते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- पंचाग का उपयोग अपचन, उदरशूल एवं कास-श्वास में किया जाता है। यह सुगन्धित और वायुनाशक होता है।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - भैंसा,
लैटिन - Colebrookea oppositifolia Sm.

स्वरूप :- इसके १०-१२ फीट ऊँचे तूल रोम सद्यश गुल्म होते हैं। पत्तियाँ बड़ी श्वेताभ, रोमश और गोल दन्तुर होती हैं। पुष्प छोटे सफेद, मञ्जरियों में निकले रहते हैं। पूर्णिया, छोटानागपुर, सिंगभूमि, पलामू, हजारीबाग आदि स्थानों के पथरीले नालों में पाया जाता है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग मूल का उपयोग ज्वर एवं उन्माद में करते हैं। पत्तियों का उपयोग व्रण एवं अग्निदग्ध वाले व्रणों में वाह्यलेप के रूप में करते हैं।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - गंगातुलसी
लैटिन - Hyptis suaveolens

स्वरूप :- यह शाखीय सुगन्धित वनस्पति है। सिंगभूमि, मानभूमि एवं संथालपरगना में पाया जातः

है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी वृण (घाव) पर पत्तों का लेप करते हैं। चर्मरोगों में पंचाग का प्रयोग करते हैं।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - जंगली लवेन्डर,
लैटिन - Lavandlula burmani Benth.

स्वरूप :- इसके क्षुप २ से ३ फीट ऊँचे होते हैं। पत्तियाँ खण्डित, रेखाकार और अवृन्त होती हैं पुष्प बैगनी रंग के एवं सुगन्धित होते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग पत्र स्वरस का नस्य सर्पदश में करते हैं।



द्रव्य नाम :- संस्कृत - द्रोणपुष्पी,
स्थानिक - गुमा, संथाली, अड़ा,
लैटिन - Leucas Cephalotes Spreng.

स्वरूप :- गुमा के चौपहल क्षुप होते हैं। पत्तियाँ अण्डाकार, प्रासवत्, आरावत एवं दन्तुर होती हैं। पुष्प गुच्छों में हरित श्वेत वर्ण के होते हैं। इसकी कई चिकित्सोपयोगी प्रजातियाँ हैं। इस क्षेत्र में पाई जाती हैं। जिनमें Leucas mollossima wal (गूमा) एवं L. procumbens वनगुमा कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग पत्तियों का उपयोग शाक के लिए करते हैं। पंचाग का उपयोग मलेरिया एवं सामान्य ज्वरों में क्वाथ के रूप में करते हैं। त्वचा के विकारों एवं सर्वविष में उपयोगी मानते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- कटु, उष्ण, वात-कफघ्न, ज्वरघ्न, अग्निमांद्यहर है। निघण्टुकारों ने महाद्रोणा का भी उल्लेख किया है।

यथा – द्रोणपुष्पी कटुः सौष्णाः रूच्यावातकफापहा।
अग्निमांद्यहराचैव, वश्या वाताप हारिणी।। "ध.नि."

विशेष :- द्रोण एवं महाद्रोण के सन्दर्भ में संहिताकारों में मतभेद हैं। कुछ टीकाकार करम्भ,

महाकरम्भ मानते हैं। कुछ विद्वानों के मत में महाद्रोण Anisomelas malabrica R. Br. नामक वनस्पति है। वाल्मीकीय रामायण के उत्तरकाण्ड एवं युद्धकाण्ड में द्रोण नामक दिव्यौषधि क्षीरसागर में उपलब्ध होने वाली है। मूर्च्छित वानरों की चेतना लाने हेतु उल्लेख मिलता है।

द्रव्यनाम :- स्थानिक - गठिबन दरेघोंपों
लैटिन - Leonotis nepetaefolia R. Br.

स्वरूप :- इसके ४ से ६ फीट तक ऊँचे क्षुप होते हैं। काण्ड चौकोर, नालीदार और रोमश, पत्तियाँ लटवाकार, गोल, दन्तुर एवं प्रासवत् होती हैं। पुष्प लाल रंग के गुच्छों में इसके पादप गॉवों के आसपास प्रायः पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- पत्र एवं स्वरस का उपयोग मलेरिया में किया जाता है। यह कटुपौष्ठिक एवं ज्वरघ्न माना जाता है। भस्म का प्रयोग चर्मरोगों में बाह्य लेप के रूप में किया जाता है।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - बिल्लीलोटन,
लैटिन - Nepeta hinclostana (Roth) Haines.

स्वरूप :- इसके तीव्र गन्ध वाले क्षुप ६ इंच से २ फीट तक ऊँचे होते हैं। पत्तियाँ छोटी आरावत्, गोल दन्तुर एवं सवृन्त होती हैं। पुष्प नीले जामुनी रंग के होते हैं। प्रायः नम स्थानों पर इसके क्षुप पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण लोग पञ्चाङ्ग क्वाथ का प्रयोग गले एवं मुखगुहा के विकारों में कुल्ले करते हैं।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - तुलसी, सुरसा,
हिन्दी - तुलसी,
लैटिन - Ocimum sanctum Linn.

स्वरूप :- इसकी कई प्रजातियाँ इस क्षेत्र में पाई जाती हैं। इसके तलोत्थ गुल्म होते हैं। जो निम्न हैं -

१. Ocimum basilicum Linn. वर्वरी, लोचा, २. Ocimum gratissimum Linn. रामतुलसी

स्थानिक प्रयोग :- पत्र स्वरस-उष्ण, रूक्ष, ज्वरघ्न, शीतहर, कफघ्न, उत्तेजक और वातहर होता है। इसके पौध लगाने से मच्छर नहीं होते हैं। वर्वरी तुलसी कर स्वरस तीक्ष्ण, ऊष्ण, रूक्ष, उत्तेजक, कृमिघ्न, शीतल और मूत्रल होता है। तीसरी प्रजाति की तुलसी पूतिहर, व्रणरोपण एवं वेदनास्थापक मानी जाती है।

विशेष :- संहिताग्रन्थों में अर्जक, कुठेर, वर्वरी, फणीम्झक आदि द्रव्य तुलसी की प्रजातियों एवं इस कुल में मिलने वाली वनस्पतियाँ है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - देवमञ्जरी, अर्जक,
स्थानिक - अजगुर
लैटिन - Orthosiphon pallidus Royle.

स्वरूप :- यह तुलसी जाति का क्षुप है। इसमें गन्ध बहुत कम होती है। पत्तियाँ लट्वाकार, अण्डाकार एवं गोल दन्तुर होते हैं। पुष्प मञ्जरयो में जामुनी रंग के। सिंगभूमि, पूर्णियाँ एवं पलामू में इसके क्षुप पाये जाते हैं। इसकी अन्य प्रजाति को Orthosiphon grandiflorus कहते हैं। जिसे मूत्रीतुलसी कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- हवन सामग्री में पंचाग का उपयोग किया जाता है। इसके धूपन करने से मच्छर भाग जाते हैं। मूत्रीतुलसी का फाण्ट वृक और मूत्राशय के रोगों में उपयोगी है।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - समुद्रशोष,
लैटिन - Salvia plebeja Br.

स्वरूप :- यह १ से २ फीट ऊँचा चौपहल वाला काण्ड क्षुप है। पत्तियाँ लट्वाकार, प्रासवत् एवं गोल दन्तुर होती हैं। पुष्प मञ्जरियों में श्वेताभ वर्ण के हाते हैं। चम्पारण, पुर्णियां, रांची, सिंगभूमि के नदी-नालों के समीप इसके क्षुप पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- बीज स्नेहन, ऊष्ण और पौष्ठिक माने जाते हैं। बीज का फाण्ड बाजीकर और वीर्य स्तम्भन में उपयोगी वताया गया है। छोटे बीजों को पानी में भिगोने पर लुवाव छोड़ता है।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - गठिवन, दरेधोपों,
लैटिन - Leonifes nepetaefolia Br.

स्वरूप :- इसके ४ से ६ फीट तक ऊँचें क्षुप पाये जाते हैं। काण्ड चौकोर, नालीदार और रोमश, पत्तियाँ लट्वाकार, गोल, दन्तुर एवं प्रासवत् होती हैं। पुष्प-लालरंग के गुच्छों में निकलते हैं। इसके पादप गांवों के आस-पास प्रायः पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- पत्र एवं स्वरस का उपयोग मलेरिया में किया जाता है। यह कटुपौष्टिक एवं ज्वरघ्न माना जाता है। भस्म का उपयोग चर्मरोगों में वाह्य लेप के रूप में किया जाता है।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - बिल्लीलोटन,
लैटिन - Nepeta indostana Comb.

स्वरूप :- इसके तीव्र गन्ध वाले क्षुप ६ इंच से २ फीट तक ऊँचे काण्ड होते हैं। पत्तियाँ छोटी, आरावत् गोलदन्तुर एवं सवृन्त होती हैं। पुष्प नीले जामुनी रंग के होते हैं। प्रायः नम स्थानों पर इसके क्षुप पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण लोग पंचाग क्वाथ का प्रयोग गले एवं मुखगुहा के विकार में कुल्ले धारण करते हैं।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - ईश्वरजटा,
लैटिन - Pogostemon plectranthoides Desef.

स्वरूप :- इसके ४ से ६ फीट ऊँचें गुल्म होते हैं काण्ड-चौपहल, रोमिल, पत्तियाँ, लट्वाकार, कभी प्रासवत् दन्तुर होती हैं। पुष्प श्वेत एवं पाण्डु वर्ण के मञ्जरियों में होते हैं। चम्पारण, सिंगभूमि, संथालपरगना आदि स्थानों के छायादार स्थानों एवं नदी-नालों के किनारों पर इसके पौधे पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोगः- ग्रामीण लोग मूल का उपयोग मूत्रल एवं गर्भाशय रक्तस्ताव में उपयोगी मानते हैं। पत्र का उपयोग व्रण एवं घाव के भरने में उपयागी मानते हैं।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - पूतिहा,
स्थानिक - पुदीना,
लैटिन - Mentha arvensis Linn.

स्वरूप :- इसकी खेती की जाती है। सुगन्धित बहुवर्षायु मूल वाला प्रसरी पादप है। पत्र-हरित, सुगन्धित सवृन्त होते हैं। पत्र का उपयोग ग्रामीण चटनी के रूप में करते हैं। यह दीपन-पाचन, वमिहर, उदरशूलनाशक, मूत्रल एवं ओर्तवजनन, संग्राही माना जाता है।

यथा – पूतिहाकटु रूष्णा च, रोचनोदीपन स्तथा।
हन्तिवातकफ शूलं, वमिआध्मानकृमिंस्तथा।।

शिम्बीकुल - (LEGUMINOSAE)

द्रव्य नाम :- संस्कृत - गुञ्जा,
स्थानिक - करजनि,
लैटिन - Abrus precatorius Linn.

स्वरूप :- इसकी चक्रारोही लतायें होती हैं। पत्तियाँ इमली पत्रसद्यश, पुष्प-गुच्छों में सफेद एवं गुलाबी रंग के होते हैं। फलियाँ कोषीय, बीज चमकीले लाल रंग के काले धब्बे लिये होते हैं। इस

क्षेत्र में कांटेदार झाड़ियों पर इसकी लतायें चढ़ी रहती हैं। बीज भेद सफेद और लाल होता है।

स्थानिक प्रयोग :- पत्र स्वरस का उपयोग सफेद दाग (श्वेत कुष्ठ) को दूर करने में ग्रामीण उपयोगी मानते हैं। कुछ लोग सफेद गुञ्जा बीज का उपयोग गर्भनिरोध में करते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- मूल का स्वाद मुलेठी के समान मधुर होता है। बीज-विषाक्त होता है। उपविषों में इसका उल्लेख आया है। यह वातव्याधि, उरूस्तम्भ, व्रण तथा कुष्ठ में उपयोगी है।

योग :- गुञ्जातैल,

द्रव्य नाम :- स्थानिक - वन कुल्थी, गायसनी, सं.वीरहोड़ें,
लैटिन - Atylosia scarabaeoides Benth.

स्वरूप :- इसके अनेक शाखाओं वाले मृदु क्षुप पाये जाते हैं। पत्तियाँ त्रिपत्रक, पुष्प छोटे, पीताभ, फली ५ बीजों वाली रोमश एवं एक इंच लम्बी पाई जाती हैं इस क्षेत्र के घास के मैदानों में सर्वत्र यह वनस्पति पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी पंचाग का उपयोग अतिसार में करते हैं। शोथ दूर करने के लिये इसके वाष्प का उपयोग करते हैं।

नोट :- लोकोपयोगी कृषि जन्य वनस्पतियों का उल्लेख यँहा पर विस्तृत रूप से दिया गया है। आहारोपयोगी सामग्री में इनका उपयोग किया जाता है। इसके गुण धर्मो की जानकारी आवश्यक है।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - मूँगफली,
लैटिन - Arachis hypogea Linn.

स्वरूप :- मूलतः यह दक्षिण अमेरिका का आदिवासी पौधा है। वहाँ से भारत में १६वीं शदी के वाद इसका आगमन हुआ है। निघन्टुग्रन्थों में इसका उल्लेख नहीं है। मूंगफली गरीबों का वादाम कहा जाता है। इसकी खेती कहीं-कहीं इस क्षेत्र में की जाती है। तैल घी सामग्री में मूंगफली का तैल मुख्य है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - आठकी,
स्थानिक - अरहर,
लैटिन - Cajanas Indicus Spreng.

स्वरूप :- एक वर्षायु ३ से ५ फीट ऊँचा का ड वाला पौधा है। इसकी खेती की जाती है। काण्ड मृदु, पत्र-लट्वाकार, क्रमानुसार, पुष्प पीत वर्ण के, फली चपटी अनेक बीजों वाली होती हैं।

स्थानिक प्रयोग :- दालों में इसके बीजों का उपयोग किया जाता है।

आयुर्वेदीय उपयोग :- लघुं, कषाय, स्वादु, कटुपाकी, कफ, पित्तघ्न, कुछ वातकारक, मेदोनाशक।

यथा– आठकी कफ पित्तघ्नी, किंचित्मारूत कोपनी।
कषाया स्वादु संग्राही, कटुपाका हिमालघुः।।
मेदः श्लेष्मास्त्र पित्तेषु, हितालेपोपसेकयोः।। "रा.नि."

द्रव्य नाम :- स्थानिक - ग्वारफली, गुआलिन,
लैटिन - Cyamopsis tetragonoloba Taub.

स्वरूप :- इसकी खेती की जाती है। एक वर्षायु शाकीय वनस्पति है। फली का शाकों में उपयोग किया जाता है। बीज का भी ग्रामीण लोग उपयोग करते हैं फली, सारक, वातकारक एवं बीज मधुमेह नाशक है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - मसूरिका,
स्थानिक - मसूर, मलकामसूर,
लैटिन - Lens esculenta Moen.

स्वरूप :- एक वर्षायु परिसृत शाकीय वनस्पति है। दालों में इसका महत्व है। इसकी भी इस क्षेत्र में खेती की जाती है।

गुण :- मधुर, शीतल, संग्राही, कफपित्त नाशक, लघु, वातकारक, मूत्रकच्छ्रनाशक।

यथा– मसूरो मधुरः शीतः संग्राही कफपित्तहाः।
वातामय करश्चैव, मूत्रकृच्छ्रहरो–लघुः।। "रा.नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - खेसारी,
लैटिन - Lathyrus sativus Linn.

स्वरूप :- यह भी शाकीय एक वर्षायु वनस्पति है। शुष्क भूमि में इसकी खेती की जाती है। ग्रामीण बीजों को दाल के लिये उपयोग करते हैं।

गुण :- शीतल, ग्राही, कफपित्तहर, रूक्ष एवं वातकारक है।

यथा– कलायः कुरते वातं, पित्तदाह कफापहः।
रूचिः पुष्ठिप्रदः शीतः, कषायाश्चामदोषकृत।। "रा.नि."

निघण्टुकारों ने सतीन और हरेणुक इसके प्रर्याय माने हैं। लेखक के विचार से भिन्न द्रव्य है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - कुलत्थ,
स्थानिक - कुल्थी,
लैटिन - Dolichos biflorus Linn.

स्वरूप :- एक वर्षायु परिसृत शाकीय वनस्पति है। शुष्क जमीन में इसकी प्रायः खेती की जाती है। काण्ड-मृदु, रोमश पुष्प-हरित-पीताभ, फली-पतली, चपटी, अनेक बीजों वाली होती है।

स्थानिक उपयोग :- इसके बीजों की दाल बनाकर ग्रामीण खाते हैं। दाल ऊष्ण संग्राहक होती है।

गुण :- कषाय, ऊष्ण, कटुविपाक, कफ-वातघ्न, पीनसहर, अश्मरी, गुल्मनाशक।

यथा– ऊष्ण कुलित्थो रसतः कषायः कटुविपकि कफमारूतघ्नः।
शुक्राश्मरी गुल्म निषूदनश्च, संग्राहक पीनसकास्सहन्ता।। "रा.नि."

विशेष :- वन्यकुलत्थ Atylosia scarabaeoides नेत्रामय रोग नाशक है। कुछ विद्वान् Dolichos falcatus को वन्य कुलत्थ मानते हैं। कुछ के विचारों में चाकसू जंगली कुलत्थ है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - चणक, हरिमन्थ,
स्थानिक - चणा, चना, बूट,
लैटिन - Cicer arietinum Linn.

स्वरूप :- इसकी प्रायः खेती की जाती है। एक वर्षायु शाकीय वनस्पति है। नवीन पत्तियों का शाक शीत ऋतु में खाया जाता है। बीज का उपयोग कच्चे चने, भुने चने, दाल, वेशन में किया जाता है।

गुण :- मधुर, रूक्ष, शीतल, वातल, वल्य, रोचक, आध्मानकर, कालाचना - कच्चा, शीतल, रूचिकर, दाह, तृषाहर। परिपक्व-चना-शीतल, मधुर, कास, अतिसारनाशक, रसायन। सफेदचना-वातल, रोचक, पित्तनाशक, गुरू। भूना हुआ चना- रोचक, वातनाशक, रक्तदोष करने वाला है। चने का यूष-मधुर, कषाय, पीनसनाशक, दीपन।

चणको मधुरो रूक्षो, मेहाजित्वातपित्त कृत्।
दीप्तिवर्णक़रो वल्यो, रूच्याश्चाऽध्मानकारकम्।। "ध.नि."

आमश्चणः शीतलं रूच्यकारी संतर्पणो दाह तृषापहारी।
कृष्णस्तु–चणकः शीतो, मधुरः कास पित्त जित्।।
पित्तातिसार कासघ्नो, बल्यश्चैव–रसायनः।
चणो गौरस्तु मधुरो, वल कृद्रोचन परः।।

श्वेतोवातकरो रूच्यः, पित्तघ्न शिरिरोगुरूः।
सु भृष्ठ चणकोरूच्यो, वातघ्नो रक्तदोषकृत्।।
चणस्य यूषं मधुरं कषायं, कफाहं वात विकार हेतु।
चणोदकं चन्द्रमरीचि शीतं, पीतं युगे पित्त रूजापहारिः।
पुष्ठि प्रदं नैजपुणं च पाके, सन्तर्पण मज्जल माधुरीकम्।। "रा.नि."

विशेष :- यह मूलतः काकेकस पर्वत के दक्षिण और फारस के उत्तर भू-भाग का आदिवासी पौधा है। ग्रीस में इसका प्रचार बहुत था। ग्रीस में इसे एरिवेन्थस कहते हैं। संस्कृत का हरिमन्थ शब्द सम्भवतः ग्रीक ए़रिवेन्थस का रूपान्तर है। चरक के काल में यह भारत में पूर्णतः प्रचलित था। बाल्मीकीय रामायण के उत्तरकाण्ड में रामाश्वमेघ के प्रयोगार्थ चणक का उल्लेख मिलता है। अश्वायुर्वेद में चणक घोड़ो के आहार के लिये निर्दिष्ठ है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - निष्पाव, वल्ल,
स्थानिक - सेमफली,
लैटिन - Dolichos lablab Linn.

स्वरूप :- इसकी आरोही लता होती है। प्रायः इसकी खेती की जाती है। शिम्बी (फली) कच्ची का शाकर्थ प्रायः उपयोग होता है। बीजों का दालों में प्रयोग होता है। यह दो प्रकार की होती है। श्वेत एवं कृष्ण, वन्य किस्म भी पाई जाती है।

गुण :- वातल, विदाही, गुरू, शुक्रनाशक, स्तन्यकर।

यथा - निष्पापोऽनिल पित्तास्त्र, मूत्रस्तन्यकरः सरः।
विदाह्युष्णों गुरूः, शोष शोफ कृच्छुक्र नाशनः।। "ध.नि."

विशेष :- संहिताग्रन्थों में निष्पाब, वल्ल, शिम्बी आदि पर्यायों का उल्लेख आया है। शिम्बी, शब्द फली का वोधक है। निष्पावसूप पित्तनाशक मूलत्र, स्तन्य, वातवर्धक है।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - सोयाबीन, भट्ट
लैटिन - Glycine max Mer.

स्वरूप :- यह भी कुलत्थ की तरह होता है। कहीं-कहीं इसकी खेती की जाती हैं बीज श्वेत एवं कृष्ण भेद से दो प्रकार का होता है। पहाड़ो में इसकी अधिक खेती की जाती है। सोयाबीन का दूध तैयार किया जाता है। दालों में कम उपयोग होता है।

विशेष :- यह कोचीन, चीन एवं जापान क़ा आदिवासी पौधा है। प्राचीनकाल में इसकी खेती चीन और जापान में होती रही है। पौष्ठिक आहार में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। निघण्टुग्रन्थों में स्पष्ट

निर्देश नहीं है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - मुकुष्ठक (वनमुन्द)
स्थानिक - मोठ, मोथी,
लैटिन - Phaseolus aconitifolius Jacq.

स्वरूप :- मूंग सद्यश इसके पौध होते हैं। ग्रामीण लोग शुष्क भूमि में इसकी खेती करते हैं। इसकी दालमोठ के नाम से उपयोग में लाई जाती है।

गुण :- दाल - लघु, वातल, ग्राही, ज्वर-दाहहर एवं रूचिकर।

यथा–मुकुष्ठो वातलोग्राही, कफ पित्त हरो लघुः।। "ध.नि."

मुकुष्ठकः कषायस्यान्मधुरो, रक्त पित्तजित्।
ज्वरदाहहरा पथ्यो, रूचिकृत्सर्व दोषहृत्।। "रा.नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - माष,
स्थानिक - उड़द, उड़दी,
लैटिन - Phaseolus radiatus Linn.

स्वरूप :- इसकी अधिकतर खेती की जाती है। दालो में उड़दी का अधिक प्रयोग होता है। अगस्त, सितम्बर में यह दाल तैयार होतीं है।

गुण :- श्लेष्मकारी, वल्य, ऊष्णवीर्य, रक्तपित्त प्रकोपक, गुरू,
स्निग्ध, रोचक, माषसूप-स्निग्ध, वृष्य, वातघ्न, रूचिकारक।

यथा– माषः स्निग्धो बहुमलकरः, शोषणश्लेष्मकारी।
वीर्योष्णों झटति कुरते, रक्त पित्तप्रकोपम्।।
हन्याद्वातं गुरूवलकरो रोचनो भक्ष्य माणः।
स्वादुर्नित्यं श्रम सुखतां, सेवनीयोनराणाम्।। "रा.नि."

स्निग्धोष्णों मधुरो वृष्यो, भेदोमांस वल प्रदः।
वातानुवृंहणो वल्यो, माषो वन्हुवलो गुरूः।। "ध्र.नि."

माषसूप :– माषसूपश्च कुल्माषः, स्निग्धो वृर्ष्योनिलापहः।
उष्ण सन्तर्पण वल्यः, सुस्वादुरूचिकारकः।। "यो.स."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - मुद्ग,

स्थानिक - मूंग,
लैटिन - Phaseolus mungo Linn.

स्वरूप :- उडद की दाल की तरह मूंग की सर्वत्र खेती की जाती है। इसका भी प्रसरी शाकीय पौधा होता है। अगस्त, सितम्बर में इसकी खेती की जाती हैं। हरित एवं कृष्ण भेद से दो प्रकार की होती है।

गुण :- मूंग - रूक्ष, ग्राही, शीतल, कफपित्तहर, दीपन, पथ्य एवं पुष्टिकर।

मुद्गोरूक्षो लघुः ग्राही, कफ पित्त हरो हिमः।
स्वादुरल्पोऽनिलोनेत्र्यो, वन्योयेतद्गुणोस्मृतः।
कृष्णमुद्गस्तु वरकः, राजमुद्गस्तु खंडकः।। "ध.नि."

कृष्णमुग्दः त्रिदोषघ्नोः मधुरो वातनाशः।
लघुश्च दीपनः पथ्यो, वलबीर्यागंपुष्छिदः।। "ध.नि.

हरी मूंग के गुण - हरिन्मुंग्दकषायश्च, मधुरः कफ पित्त हृत्।
रक्तमूत्रामयघ्नश्च, शीतलो लघुः दीपनः।। "रा.नि."

मुग्दयूष के गुण - पित्तस्वरार्तिशमनं लघुमुग्दयूष सन्तापहारि तदरोचक नाशनम्।
रक्तप्रंसादनमिदं युयदि सैन्धवेन युक्तं, तदाभवति रूजापहारिः।। "रा.नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - त्रिपुटक, सतीन,
स्थानिक - मटर,
लैटिन - Pisum arvense L.
वड़ी मटर (सतीन) - Pisum sativum Linn.

स्वरूप :- इसकी भी खेती की जाती है। मटर के नाम से इसका शाक बनाया जाता है। कच्ची मटर का अधिक प्रयोग होता है। संहिताकारों ने त्रिपुटक सतीन, कलाय आदि कतिपय नामों से उल्लेख किया है। गुणों में यह कलाय (खेसारी) के सदृश है। शीतल, ग्राही, वातकर, रूक्ष खाने में स्वादिष्ट।

यथा - वर्तुल शीतलोग्राही, कफपित्त हरो लघुः।
विपाके मधुरो रूक्षो, वातलोभक्षण प्रियः।। "रा.नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - मेथिका,
स्थानिक - मेथी,
लैटिन - Trigonella foenum - graecum L.

स्वरूप :- एक वर्षायु क्षुप है। इसकी खेती की जाती है। पत्र शाकों में मेथी शाक उपादेय है। मधुमेह के रोगियों के लिए विशेष पथ्य शाक है। बीज सुगन्धित वातनाशक, शूलघ्न, पाचक होता है। कटीशूल में ग्रामीण मेथी के लडडू बनाकर खाते हैं। संहिताग्रन्थों में उपकुञ्चिका, कुञ्चिका के प्रकार भेदों में मेथी का उल्लेख है। मेथी स्पष्ट रूप से संहिता ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं है।

गुण :– मेथिका दीपनी हृद्याः वद्धविट् कृमि शुक्रनुत्।
गुल्मशूलानिलहरा, श्लेष्मणी नाशिनी पुरा।। "योतरंगिणी"

द्रव्य नाम :- संस्कृत - राजमाष, अलसान्द्र,
स्थानिक - राजमा,
लैटिन - Vigna cylindrica Skee.

स्वरूप :- इसकी आरोही लता होती है। इसकी फली को बीन कहते हैं। कच्ची फलियों का शाक बनाकर खाते हैं।

गुण :- कफ - पित्तहर, वातल, वलकारक, शुक्रनाशक।

राजमाषः सरो वृष्यः कफ पित्तास्त्रशुक्रनुत्।
सुस्वादु शीतलोः रूक्षः कषायो विषदो गुरूः।। "रा.नि."

द्रव्य नाम :- स्थानिक - लोबिया, लोभिया,
लैटिन - Vigna catiang Walp.

स्वरूप :- यह परिसृत जाति की शाकीय वनस्पति है। इसे भी राजमाष कहते हैं। इसकी भी खेती की जाती है। दालों में बीजों का उपयोग किया जाता है। कच्ची फलियों की शब्जी बनाकर खाई जाती है। सम्भवतः यह Dolichos की प्रजातियों में भी हो सकती है जिसे लोबियाफली कहते हैं।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - काकाण्डोला,
स्थानिक :- माखनसेम, को. तिहुन,
लैटिन - Canavalia ensiformis DC.

स्वरूप :- इसकी बड़ी आरोही लतायें होती है। पर्ण-चिकना, लट्वाकार, पुष्प बड़े सफेद, गुलाबी रंग के, बीज कौंच के बीज सद्यश होते हैं। ग्रामीण लोग बीज और फली खाते हैं। इसकी अन्य प्रजाति पाई जाती है जिसे Canavalia virosa W. & A. काठसेम कहते हैं इसके बीज विषैले होते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी कच्ची फलियों की शब्जी बनाकर खाते हैं। इसे विषैला मानते हैं जंगली सेंम के बीज को सर्पदंश की दवा के स्थान पर चीरा देकर चिपका देते है। जब तक विष

बीज में नहीं आयेगा बीज उसी स्थान पर चिपका रहता है। बाद में बीज स्वयं गिर जाता है। दंश स्थान पर चीता मूल एवं इक्वीसिटम को मिलाकर लेप करते हैं।

विशेष :- संहिताग्रन्थों में काकाण्ड, काकाण्डक एवं काकाण्डोला आदि नामों का उल्लेख मिलता है। जो कि विषघ्न के रूप में प्रयोग किया जाता है। आदिवासी लोग भी इसके बीज को सर्पदंश में प्रयोग करते हैं। सम्भवतः इसके आत्मगुप्ता (कौंच) सद्यश बीज होने के कारण इसे टीकाकारों ने आत्मगुप्ता अर्थ किया है। अतः शास्त्रीय काकाण्डोला जंगली सेम हो सकती है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - पलाश, किंशुक,
स्थानिक - को-मोरूद, सं-मुरूप, हिं.ठाक,
लैटिन :- Butea frondasa Roxb.



स्वरूप :- इसके मध्यम ऊँचाई के वृक्ष पलामू, हजारीबाग, रांची आदि स्थानो में सर्वत्र पाये जाते हैं। इस प्रजाति में लता जाति के दो किस्में ढ़ाक की पाई जाती है। लालफूल वाली जाति को कोल भाषी मारूद, संथाली में नारीमुरूप Butea sperba Roxb. एवं सफेद फूल वाली जाति को कोल में बन्दु एवं संथाली में सिहट - रामवोरला कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी पुष्प, बीज और गोदं का चिकित्सा में प्रयोग करते हैं। पुष्पों का उपयोग मूत्रजनन एवं ज्वरघ्न के रूप में प्रयोग करते हैं। इसके पुष्पों से रंग भी तैयार करते हैं। बीज चूर्ण को कृमिघ्न एवं गर्भनिरोध में प्रयोग करते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- रस-तिक्त, कटु, कषाय, वीर्य-उष्ण, विपाक-कटु, गुण-विरेचक, संकोचक, मूत्रल, कामोदीपक, रोगोपयोग, मूत्रावरोध, मूत्रकृच्छ्र, आन्त्रकृमि, अतिसार, रक्तस्त्राव, अर्श, उदरकृमि, त्वक्रोग में उपयोगी, गर्भस्त्राव में बीजों का उपयोग कतिपय योगो के साथ किया जाता है।

प्रयोज्य अंग :- पत्र, पुष्प, बीज निर्यास, सार,
योग - पलाशपुष्पासव (मूत्रदाह एवं मूत्रकृच्छ्र में)

विशेष :- श्वेतपुष्प जाति वाले पलाश का उपयोग प्रधानतः पारद एवं हरताल भस्म बनाने के काम में उपयोगी माना जाता है। रक्त, पीत्त श्वेत, नील चार भेद निघण्टुग्रन्थो मे वर्णित है। "रक्तः

पीतः। सितो नीलः कुसुमैस्तु विभज्यते"

संस्कृत साहित्य में पलाश :- बाल्मिकीय रामायण के अयोध्याकाण्ड के ऋषिकुमार वध के प्रसंग में, "पलासैरिव पुष्पितैः" उपमा के प्रसंग में हवनकर्म के समिधा के प्रंसगं में पलाश का उल्लेख है।

क्षांरश्रेष्ठः कृमिघ्नश्च, संग्राही दीपन सरः।
प्लीह गुल्म ग्रहण्यर्शो वातश्लेष्म विनाशनः।।
बीजं सु कटुकं स्निग्धमुष्णं कृमिवलासजित्।
तस्य पुष्प चसोष्णं, च, कण्डूकुष्ठार्तिनाशनम्।। रा.नि.

द्रव्य नाम :- संस्कृत - यवासा, दुरालभा,
हिन्दी - जवासा
लैटिन - Alhagi pseudalhagi Desv.

स्वरूप :- इसके छोटे-छोटे कांटेदार गुल्म होते हैं। पत्तियाँ आयताकार, रोमश, कांटों से आवृत, पुष्प लाल मञ्जरियों में खिलते हैं। रेतली एवं शुष्क भूमि पर इसके गुल्म पाये जाते हैं। धमासा की दो किस्में पाई जाती हैं।

गुण :- शीतल, तिक्त, दाहनाशक, विषमज्वर, छर्दि एवं श्वास कास नाशक।

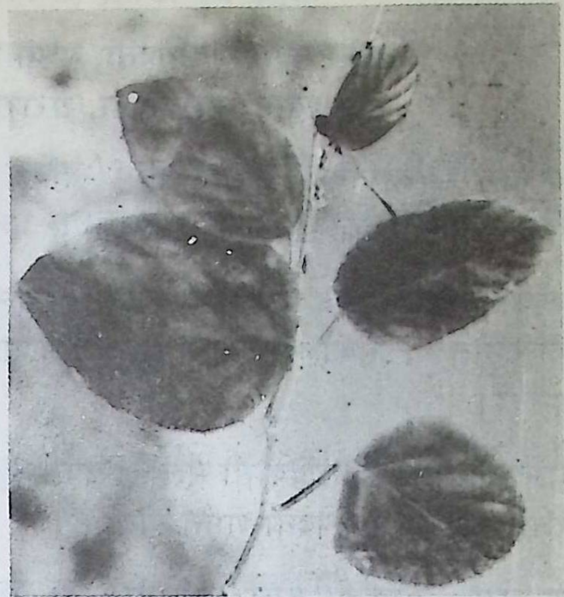
दुरालभा स्वादु शीता, तिक्तादाह विनाशिनी।
विषमज्वर तृड्च्छर्दि, मेहमोह विनाशिनी।। "ध.नि."

अन्या क्षुद्र दुरालभा, मरूस्था मरू सम्भवा।
कषाया फणिहृञ्चैव, ग्राहिणी करमप्रिया।। "रा.नि."

विशेष :- संहिताग्रन्थों में दुःस्पर्षा, दुरालभा, धन्वयास, धन्वयवास आदि पर्यायों का उल्लेख मिलता है। निघण्टुकारों ने दो भेद माने हैं। धन्वयास (जवासा) से Fagoni cretica L. के पंचाग का प्रयोग किया जाता है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - शालपर्णी,
संथाली - वायफूल,
लैटिन - Desmodium gangeticum DC.

स्वरूप :- यह शाकीय जाति की एक वर्षायु क्षुप है। काण्ड कोणदार पत्तियाँ-प्रासवत्, शालपर्ण सदृश, आयताकार, तीक्ष्णाग्र, पुष्प-छोटे मञ्जरियों में गुलाबी रंग के होते हैं। इसकी अन्य प्रजाति भी इन क्षेत्रों में पाई जाती है। जिनमें Desmodium ploycarpum DC चोरामार कहते हैं।



स्थानिक प्रयोग :- मूल का प्रयोग ग्रामीण महिलायें गर्भनिरोध में करती हैं। मूलक्वाथ मूत्रल एवं वल्य मानते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- रस-मधुर, तिक्त, वीर्य-उष्ण, विपाक-मधुर, उष्ण- गुरू, वल्य, वृहण, रसायन, वातशामक, विषमज्वर, प्रमेह, अर्श, अतिसार, कृमिरोग, मूत्रदाह में उपयोगी।

योग :- दशमूल घटक दब्यों की प्रधान वनस्पति है।

यथा – शालपर्णी त्रिदोषघ्नी वल्या
बृष्या रसायनी।
हृद्रोगे शस्यते वैद्ये अंशुमत्यां श्रतंपयः।। " प्रिय. नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - शणपुष्पी
स्थानिक - संथाली- झुनका, जीरी,
लैटिन - Crotalaria juncea Linn.

स्वरूप :- इस प्रजाति में कई किस्में पाई जाती हैं। इनके काण्ड तलोत्थ एवं कुछ परिसृत होते हैं। शन की प्रायः खेती की जाती है। शेष निम्न जातियाँ वन्य रूप में पाई जाती हैं।

१. संथाली-झुनका - Crotalaria sp. इसके पंचाग का उपयोग वेदनाहर मानते हैं।
२. संथाली झुनझुनका - Crotalaria alata Datz. आदिवासी मूल का उपयोग दौर्वल्यहर मानते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- राज निघण्टुकार ने तीन किस्मों कि शण-पुष्पी का उल्लेख किया है। १. शण पुष्पी, २. सुक्ष्म पुष्पी (शणपुष्पी विशेष), ३. वृत-पर्णी (श्वेत पुष्पी) इसे महाशण पुष्पिका भी कहते हैं। सम्भवतः ये Crotalaira की जातियो में से हैं।

शणपुष्पी :- रस में तिक्त, कषाय, कफवातहर, ज्वरहर, अजीर्ण एवं रक्तदोष नाशक है। दूसरी जाति वामक एवं पारद आदि रसायन कार्यो में उपयोगी। तीसरी जाति की श्वेतपुष्पों वाली शण कषाय एवं रसायन कार्यो में उपयोगी मानी जाती हैं।

यथा – शणपुष्पी रसे तिक्ता, कषाया कफ वात जित्।
अजीर्ण ज्वर दोषघ्नी, वमनी रक्तदोष नुत्।।

सूक्ष्म पुष्पा क्षुद्रतिक्ता, वम्या रसनियामिका।
महा श्वेता कषायोष्णा, शरारसनियकमिका।। "रा.नि."

द्रव्य नाम :- स्थानिक - वीरव्रर
लैटिन - Flemingia semialata Roxb.

स्वरूप :- इसके ४ से ६ फीट तक स्वावलम्बी गुल्म होते हैं। पर्ण-त्रिपत्रक, प्रासवत्, अण्डाकार और नुकीले होते हैं। इसकी अन्य जाति इस क्षेत्र में पाई जाती है। जिसे Flemingia bracteata गलफूली कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी मूल का उपयोग अपस्मार में करते हैं। शोथ पर मूल क्वाथ के सेक करने पर शोथ एवं वेदना शान्त होती है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - नील, नीलिनी
स्थानिक - सिलीविची
लैटिन - Indigofera tinctoria Linn.

स्वरूप :- इसके गूल्म ४ से ५ फीट तक ऊँचे होते हैं। शाखायें दुर्बल एवं कोणदार, पत्तियाँ-असम, पक्षवत् पत्रक- अण्डाकार, लट्वाकार पुष्प मञ्जरियों में बैंगनी रंग के एवं फली-गुच्छों में होती है। नील की अन्य जातियाँ इस क्षेत्र में पाई जाती है। यथा-

1. Indigofera arrecta Hochst. 2. Indigofera sumatrana Gaertn. 3. Indigofera articulata Goun. ये तीनों जातियो के गुल्म वन्य रूप में पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी बीजों का उपयोग कृमिघ्न रूप में करते हैं। पत्तियों का स्वरस पागल कुत्ते के काटने पर करते हैं। व्रण एवं वाह्य अभिघात पर पत्तियों का लेप करते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- कटु, कषाय, लघु, वात एवं शोफनाशक, बालों को रंगने के लिये इसका उपयोग किया जाता है।

यथा - नील वृक्षस्तु कटुकः, कषायोष्णों लघुस्तथाः।
वातामय प्रशमनों, नानाश्वयथु नाशनः।। "रा.नि."

द्रव्य नाम :- स्थानिक - सं. जिरहुल, को. हुटर, उटर, जिरूल,
लैटिन - Indigofera pulchella Roxb.

स्वरूप :- इसके ४ से १० फीट ऊँचे गुल्म होते हैं। पुष्प गुलाबी रंग के पत्र कोणज सघन मञ्ज़रियों में खिलते हैं

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण लोग इसके मूल का उपयोग ज्वरघ्न एवं प्रसूता ज्वर में करते हैं। मूल स्वाद में कटु होता है। पुष्पों का शाक बनाकर खाते हैं। कास में मूल क्वाथ का उपयोग करते हैं। छाती पर वेदनाशामक के रूप में लेप किया जाता है।

नोट :- शास्त्रों में वर्णित सूक्ष्म पुष्पा (शण पुष्पी विशेषः) नामक वनस्पति जिरहुल हो सकती है। क्योंकि जिरहुल शब्द का अर्थ शणपुष्पी से मिलता-जुलता है। गुणों में भी कुछ साम्यता मिलती है।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - हनुमान बूटी, भूईनील,
लैटिन - Indigofera enneaphylla Linn.

स्वरूप :- इसके प्रसरी क्षुप होते हैं। पुष्प छोटे लाल रंग के गुच्छों में, फली रोमश एवं द्विबीजी होती है। लाल पुष्प बहुत सुन्दर लगते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- पंचाग का उपयोग आदिवासी मूत्रक्रच्छ्र एवं रक्तयुक्त मूत्र आने पर क्वाथ पिलाते हैं। यौन विकारों में भी इसके पंचाग का उपयोग किया जाता है। गुणों की दृष्टि से यह रक्तपित्तप्रशमन, मूत्रजनन, रक्तशोधक एवं कुष्ठनाशक है।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - गधफूल,
लैटिन - Indigofera cassioides Rotter.

स्वरूप :- छोटी गुल्म जाति की वनस्पति है। पुष्प गुलाबी रंग के होते हैं। आदिवासी लोग पंचाग का उपयोग सुख प्रसव हेतु करते हैं।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - तेजोमोला,
लैटिन - Indigofera linnaei Ali.

स्वरूप :- यह परिसृत गुल्म जाति की वनस्पति है। पुष्प गुलाबी रंग के होते हैं। आदिवासी मूल का उपयोग परिवार नियोजन में करते हैं।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - शिंशपा,
स्थानिक - सेतसार, कीरी, सं. महले,
लैटिन - Dalbergia sissoo Roxb.

स्वरूप :- इसके वृक्ष इस क्षेत्र में सर्वत्र पाये जाते हैं। इस जाति की निम्न किस्में इस क्षेत्र में पाई जाती हैं। यथा - १. शिंशपाभेद - Dalberia latifolia Roxb. २. नारीसिसम - D. volubilis Roxb.

स्वरूप :- इसके गुल्म होते हैं पुष्प हल्के नीले रक्त वर्ण के होते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- मुख यागले के व्रणों में इसके छाल के क्वाथ से कुल्ले करने पर मुखव्रण ठीक होते हैं। मूल छाल शीतल, स्नेहन एवं व्रणरोपक त्वचाविकार नाशक मानी जाती है।

आयुर्वेदीय उपयोग :- कटु, ऊष्ण, कण्डूघ्न, वस्तिरोग नाशक, पित्तदाह-प्रशमन, शोथ एवं अतिसार नाशक।

यथा – कटूष्णं कण्डुदोषघ्नं, बस्तिरोगविनाशम्।
शिंशपा युगलं वर्ण्यं, हिक्काशोफो विषर्जयेत्।।
पित्तदाह प्रशनं, बल्यं रूचिकरं परम्।। "ध.नि."

विशेष :- राजनिघण्टुकार ने दो किस्मों के सीसम का उल्लेख किया है। कपिलवर्ण वाले शीसम का वर्णन मिलता है। कपिलवर्ण वाला शीसम तिक्त, शीतल, वातपित्तनाशक, ज्वरघ्न एवं हिक्का, छर्दिनाशक बताया है।

यथा – कपिपला शिंशपा तिक्ता, शीतवीर्या श्रमापहा।
वातपित्त ज्वरघ्नो च, च्छर्दिहिक्काविनाशिनी।। "रा.नि."



द्रव्य नाम :- संस्कृत - अपराजिता,
स्थानिक - कोयल,
लैटिन - Clitoria ternatea Linn.

स्वरूप :- इसकी सुन्दर चक्ररोही लता उद्यानों में पाई जाती है। पुष्प योनिछत्र सदृश, नील एवं श्वेतवर्ण के होते हैं। फली लम्बी, चिपटी अनेकों बीज वाली होती है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी मूल रक्षोघ्न, भूतवाधाहर के रूप में करते हैं। पंचाग क्वाथ का प्रयोग मूत्ररोग एवं शोथ में प्रयोग करते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- रस - कषाय, तिक्त, वीर्य - शीत, विपाक - कटु, गुण - विषघ्न, कंण्ठय चक्षुष्य रोगपयोग - मस्तिष्करोग, कुष्ठ, अर्वुद, शोथ, जलोदर, यकृत - प्लीहा में उपयोगी।

यथा – गिरिकर्णी द्धयं तिक्त, कटु शीतं विषापहम्।
मेघ्यं कंण्ठयंश्च, चक्षुष्यं शूलघ्नंमामपाचनम्।। "प्रिय. नि."

द्रव्य नाम :- स्थानिक - दावी,
लैटिन - Alysicarpus Vaginalis DC.

स्वरूप :- मध्यम छोटे गुल्म होते हैं। इस क्षेत्र में कहीं-कहीं पाया जाता है मूल क्वाथ का उपयोग आदिवासी लोग परिवार नियोजन में करते हैं।



द्रव्य नाम :- संस्कृत - पारिमद्र,
स्थानिक - सं. मरार, पांगरा, फरहद,
लैटिन - Erythrina indica Link.

स्वरूप :- इसकी दो जातियाँ इस क्षेत्र में पाई जाती हैं। इसके मध्यम आकार के गुल्म होते हैं। पत्र-चौड़े, पुष्प रक्तवर्ण के चोंच सदृश। दूसरी जाति देवपरास Erythrina resupinata Roxb. कहते है। इसके भी बहुवर्षायु गुल्म होते हैं। नेतरहाट, छोटानागपुर, पारसनाथ, आदि स्थानों पर पाया जाता है।

स्थानिक प्रयोग :- देवपारस की छाल को अन्य द्रव्यों के साथ मिलाकर प्रसूता को दिया जाता है। पाण्डु एवं शोथ में मूल क्वाथ पिलाया जाता है कुछ ग्राम्रीण आर्तवजन मानते हैं।

आयुर्वेदी प्रयोग :- कटु, ऊष्ण, कफ-वात नाशक, कृमिघ्न, अरोचकनाशक, दीपन।

यथा– पारिभद्रः कटूष्णः स्यात् कफवात निकृन्तनः।
अरोचक हरः पथ्योः दीपनश्चापिकीर्तितः।। "रा.नि."

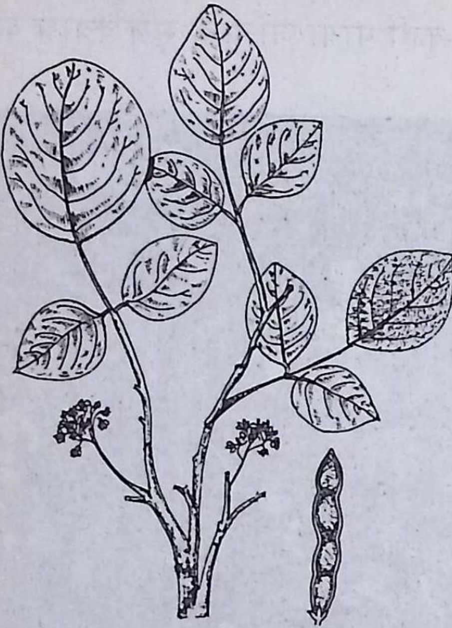
वाल्मीकीय रामायण के अरण्य काण्ड में पंपासर के पास के प्रसंग में उल्लेख पारिभद्र का आया है।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - वनमेथी,
लैटिन - Malilotus indica All.

स्वरूप :- इसकी दो जातियाँ इस क्षेत्र में पाई जाती हैं। एकवर्षायु क्षुप होते हैं। पत्र - दन्तुर, त्रिपत्रक, पुष्प-श्वेत-पीतवर्ण के होते हैं। दूसरी जाति को Melilotus alba Desr. कहते हैं। पूष्प श्वेत मज्जरी में। इस क्षेत्र में खेतों के आस-पास ये जातियाँ पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग पंचाग का उपयोग गुमचोट शोथ आदि में सेक एवं पौटलिश

के रूप में करते हैं।



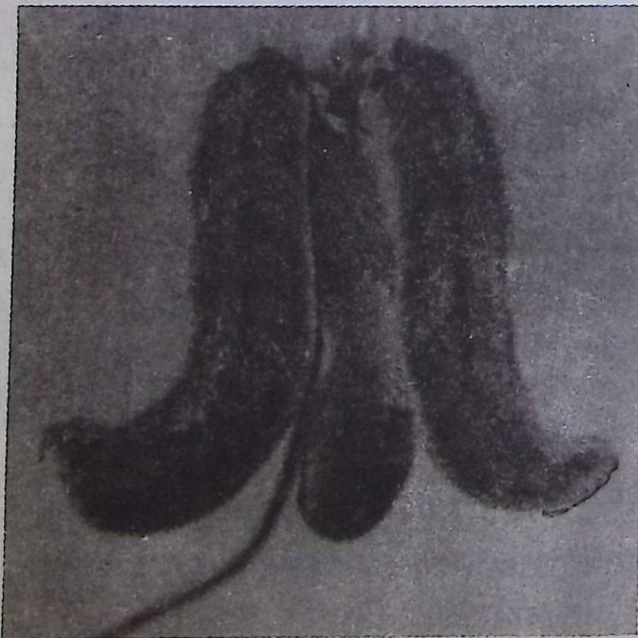
द्रव्य नाम :- संस्कृत - स्यन्दन, तिनिश,
स्थानिक - को.पंजन, सं. सानन,
लैटिन - Ougeinia dalbergiodes. Benth.

स्वरूप :- सांनन के मध्यम आकार के वृक्ष सर्वत्र पाये जाते हैं। पत्तियाँ- त्रिपत्रक, लट्वाकार, वृताकार, कुण्ठिताग्र एवं गोल दन्तुर होती हैं। पुष्प जामुनी गुलाबी रंग के गुच्छों में।

स्थानिक प्रयोग :- काष्ठ का उपयोग बैलगाड़ी के घुरों के बनाने में ग्रामीण करते हैं। क्वाथ का उपयोग रक्त शोधक माना जाता है।

आयुर्वेदीय उपयोग :- कषाय, ऊष्ण, कफघ्न, रक्तातिसार नाशक एवं वातघ्न।

यथा– तिनिशस्तु कषायोष्णों, कफरक्तातिसार जित्।
ग्राहको दाहजनको, वातामयहरः पर।। "रा.नि."



द्रव्य नाम :- संस्कृत - कपिकच्छुः,
स्थानिक - खुजनी, केंवाच,
लैटिन - Mucuna prurita Hook.

स्वरूप :- इसकी पतली आरोही लतायें होती हैं। पत्तियाँ, त्रिपत्रक, लट्वाकार, तिर्यगायताकार, पुष्प-नीलाभ रक्त, फली रोमश युक्त, रोम भूरे रंग के खुजली एवं जलन उत्पन्न करने वाले बीज संख्या में अनेक चमकीले होते हैं। इसकी अन्य किस्में भी यहाँ पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग :- मूल एवं बीज का उपयोग आदिवासी चिकित्सा में बल्य, रसायन के लिये करते हैं। कच्ची फलियों की शब्जी बनाकर खाते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- रस - मधुर, तिक्त, वीर्य - शीत, विपाक - मधुर।

गुण :- वानरी गुटिका, वाजीकरण में।

यथा – कपिकच्छु रसे तिक्ता, स्वादुशीताऽनिलापहाः।
वृष्या पित्तास्त्रहन्ति च दुष्ठव्रण विनाशिनी। "ध.नि."
गुरूष्णं स्निग्धमधुरं, कषायं चाऽत्मगुप्तजम्।
फलं वल्यंच, वृष्यं च वृंहण वात जित्परम्।। "रा.नि."
कपिकच्छुतैलम्

द्रव्य नाम :- हिन्दी - गौज,
स्थानिक - गोड़ार, को.-हेहल,
लैटिन - Millettia auriculata

स्वरूप :- इसकी विस्तृत आरोही लतायें होती हैं। पत्रक - नुकीले, लट्वाकार आयताकार, ३ से ८ इंच लम्बे होते हैं। पुष्प श्वेताभ रंग के इसकी दूसरी जाति भी पाई जाती है जिसे गज, गज्ज, Millettia racemasa Bent. कहते हैं। इस क्षेत्र में सर्वत्र ये किस्में पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी मूल एवं पत्र का उपयोग मछलियों को मारने के लिये करते हैं। मवेशियों के घाव पर पड़े कीड़ों को मारने के लिये प्रयोग करते हैं। कृमिनाशक मलहमों के निर्माण में इसका उपयोग किया जाता है।

नोट :- Millettia extensa Bakar. काराकश के मूल का उपयोग पशुओं की चिकित्सा में किया जाता है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - वाकुची, सोमराजी,
स्थानिक - वावची,
लैटिन :- Psoralea corylifolia DC.

स्वरूप :- इसके प्रायः २ फीट ऊँचे क्षुप होते हैं। पत्तियाँ अपत्रक, लट्वाकार, लहरदार, दन्तुर एवं सवृन्त होती हैं। पुष्प गुच्छों में जामुनी रंग के फली रोमश, बीज पकने पर काले रंग के होते हैं। खेतों में इसके पौध पाये जाते हैं। ग्रामीण लोग बहुत कम मात्रा में इसका उपयोग करते हैं। बीजों को विषैला मानते हैं।



आयुर्वेदीय उपयोग :- रस- कटु, तिक्त, विपाक - कटु, पंचाग-शीत, गुण, अग्निदीपन बल्य, रक्तपित्त, पामा कण्डू, त्वचा के रोग, श्वेत कुष्ठ एवं वातरक्त में उपयोगी है। त्वचा पर प्रभाव कारी है।

योग :- वृ. सोमराजी तैल (श्वेत कुष्ठ) श्वेत कुष्ठहरलेप (श्वेतकुष्ठ)

यथा – वाकुची शीतला तिक्ता, श्लेष्मकुष्ठ कृमीञ्जयेत्।
रसायनोपयुक्ता च, रूचि मेधाविनाशिनी।
वाकुची कटुका पाके, ग्राहि कुष्ठ व्रणापहा:।। "ध.नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - बीजक, विजयसार, असन,
स्थानिक - बीजा, पैसार, को.- मुरगा,
लैटिन - Pterocarpus marsupium Roxb.

स्वरूप :- इसके मध्यम आकार के वृक्षपाये जाते हैं। पत्तियाँ पक्षवत् पत्रक- आयताकार, अण्डाकार एवं अधरतल चमकीले होते हैं। पुष्प-सघन, सशाख, अग्र-मञ्जरियों में, फली- वृत्ताकार सपक्ष होती हैं। इसके वृक्ष नालों के किनारे एवं पहाड़ियों के ढलानो पर पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग इसके निर्यास का उपयोग अतिसार में करते हैं। काष्ठसार का उपयोग हिमकषाय उदर रोग एवं मूत्र रोग में करते हैं।

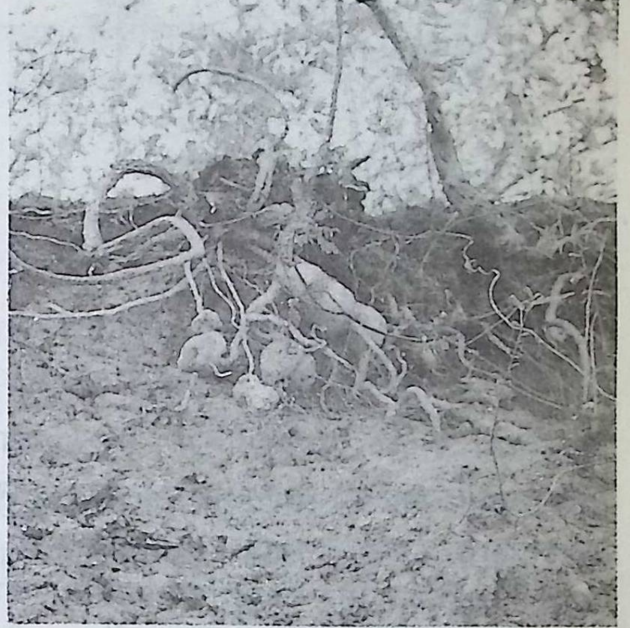
आयुर्वेदीय उपयोग :- यह कषाय, शीतवीर्य, रूक्ष, कफ, पित्तशामक, स्तम्भन एवं रसायन है। यह मधुमेह, कुष्ठ एवं रक्तविकार में विशेषकर लाभ करता है। मधुमेह के रोगियों को इसके काष्ठ के कपपया गिलास में रात्री को पानी भरकर सुबह पिलाने से लाभ होता है।

यथा – असन स्तुवरो शीतो रूक्षः पित्त कफापहः।
स्तम्भनों मेह कुष्ठास्त्र: विकारध्नो रसायनः।। "प्रिय.नि."

संस्कृत साहित्य में असन :- लोक व्यवहार में असन (बीजासार) इमारती लकड़ी तथा रक्तनिर्यास के लिये प्रसिद्ध हैं। प्रकृति प्रेमी सहृदय कवियो को इसके स्वर्णाभ पुष्पमञ्जरियों ने अधिक प्रभावित किया है। असन उत्तर-पश्चिम भारत के निचली सतहों अवध के जंगलों एवं मध्यप्रदेश के विन्ध्यस्थली में वन्यरूप से पाया जाता है। महाकवि भारवि ने केतकी एवं नीप (कंदम्ब) के पुष्पकाल समाप्त होने पर असन के पुष्पकाल का उल्लेख किया है। इन पुष्पों के मञ्जरियों पर भ्रमरों का आच्छादन एवं पुष्पों को प्रियदर्शन एवं मधुगंधी होना कवि ने अविलक्षित किया है। महाकवि कालिदास ने असन पुष्पों की छादन की क्षमता व्याघ्र के पीत चित्रित चर्म से बताकर इसके पुष्पों के रंग को भी स्पष्ट किया है। बाल्मीकीय रामायण में असन का उल्लेख अयोध्याकाण्ड के चित्रकूट

के प्रसंग में, सीता के लिये श्री राम के विलाप के प्रसंग में माल्यवान् पर्वत पर आदि कतिपय प्रसंगो में इस वृक्ष का वर्णन मिलता है।

विशेष :- कुछ विद्वान् लोग असन एवं बीजक एक दूसरे के पर्यायवाची एवं एक ही वृक्ष के बोधक होने, एक ही द्रव्य मानते हैं। परन्तु कतिपय स्थलों पर असन-बीजक का एक साथ उल्लेख मिलता है।



द्रव्य नाम :- संस्कृत - बिदारी
स्थानिक - पातालकोहड़ा,
लैटिन :- Pueraria tuberosa DC.

स्वरूप :- इसकी विशाल लत्तायें पाई जाती हैं। पत्रक तीन पत्रकों में एवं पार्श्व के पत्रक तिरछे, लट्वाकार होते हैं। पुष्प-नील-गुलाबी रंग के मञ्जरी में खिलते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग कन्द को उबालकर खाते हैं। मूल चूर्ण का उपयोग मूत्र तथा उदरविकारों में किया जाता है। आदिवासी लोग मछली को मारने में इसका उपयोग करते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- रस - मधुर, वीर्य - शीत, विपाक - मधुर, वात - पित्तघ्न स्तन्यजनन, मूत्रल - पौष्ठिक, रक्तपित्त, दाह - शुक्रदौर्वल्य एवं प्रजन - संस्थान में उपयोगी है। वल्य एवं दुग्ध वृद्धि के लिये इसका प्रयोग किया जाता है।

विशेष :- बाजार में Ipomoea dilitata के मूल कन्दों का भी बिदारीकन्द के नाम से संग्रह किया जाता है, जिसे क्षीरविदारी कहते हैं।

यथा - विदारी मधुरा स्निग्धा, शीता वृष्या रसायनी।
वृंहणीवलदा स्तन्यवर्धनी, वस्तिशोधनी।।
वातपित्तापहा दाहज्वरं, क्षम्र विनाशिनी।
तत्कन्दो युज्यते तद्धज्ञेया क्षीर विदारिका। "प्रिय न्निघण्टु"

द्रव्य नाम :- संस्कृत - करंञ्ज,
स्थानिक - कुरन्ज़ी, अहरकरन्ज,
लैटिन - Pongamia glabra Vent.



स्वरूप :- इसके मध्यम आकार के वृक्ष होते हैं। पत्तियाँ पक्षवत् पत्रक-चमकदार आयताकार या लट्वाकार होते हैं। पुष्प श्वेताभ वर्ण के, फली-एक बीज वाली चिकनी एवं कठोर होती हैं। प्रायः सड़को के आस-पास एवं नदी-नालों के किनारे इसके वृक्ष पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग बीज तैल का उपयोग जलाने के काम मे करते हैं। इसका तैल चर्मरोगों एवं सन्धिवात में प्रयोग करने से खून का गिरना बन्द हो जाता है। पत्तियों की पोटलिस घाव पर बांधते हैं। दुष्ठव्रणों का प्रक्षालन इसके मूल क्वाथ से करते हैं। व्रणशोथ में निर्गुण्डी पत्र के साथ मिलाकर बांधते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- रस - तिक्त, कषाय, वीर्य - उष्ण, विपाक - कटु, कृमिघ्न पित्त - कफशामक, त्वक्रोगनाशक, अर्श, जलोदर मूत्ररोग एवं अर्वुद में उपयोगी। इसके बीजों का तैल अच्छा कृमिघ्न और व्रणरोपक माना जाता है। खुजली के लिये यह बहुत उपयोगी है। यह दद्रु, पामा, विचर्चिका, सिर की खुजली, परिसर्प एवं त्वचा के रोगों में लाभदायक है। मधुमेह में इसके पुष्पों का फाण्ट पिलाते हैं। खालित्य में पुष्प पीसकर सिर पर लेप करते हैं।

योग :- करञ्जादि चूर्ण (उदर रोग) करञ्जादि तैल (त्वक्रोग) इसमें कफः निसारक गुणों के कारण श्वासनलिकाप्रदाह और कुकर कास में बहुत लाभप्रद है।

यथा – घृतकरञ्जः कटूष्णो वातहृत् व्रणनाशनः।
सत्वग्दोषशमनो विसर्पऽर्श विनाशनः।। "रा.नि."

विशेष :- निघण्टुकारों ने करञ्ज, लताकरञ्ज (कांटाकरञ्ज) उदकीर्य (करञ्ज विशेष) महाकरञ्ज (अंगारवल्लिका) एवं गुच्छकरञ्ज भेद से उल्लेख किया है। इनके नाम रूप परिचय का अध्ययन किया जा रहा है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - मुद्गपर्णी,
स्थानिक - मुंगानी,
लैटिन - Phaseolus trilolus Ait.

स्वरूप :- यह प्रसरी एवं मृदु रोमश जाति की वनस्पति है। पुष्प खण्डित गोल होते हैं। पुष्प - गुच्छों

में पीतवर्ण के एवं फली चिकनी एवं श्वेताभवर्ण की होती हैं। दूसरी किस्म को P. calcaratus Roxb. कहते है।

स्थानिक प्रयोग :- बीज खाये जाते हैं। चतुष्पर्णियों में मुद्गपर्णी का उल्लेख है।

आयुर्वेदीय औषध प्रयोग :- यह मधुर, शीतल, पित्त-दाहनाशक, कृमिघ्न।

यथा – मुंद्गपर्णी हिमास्वादुर्वातरक्त विनाशिनी।
पित्तदाह ज्वरान्हन्ति, कृमिघ्नि कफशुक्रनुत्।। "भा.नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - माषपर्णी,
स्थानिक - वन उदर,
लैटिन - Teramnus labialis Streng.

स्वरूप :- इसकी परिसृत आरोही मृदु लता होती है। मृदु काण्ड जमीन एवं पौधों पर अवृन्त होता है। पत्र-त्रिपत्रक मृदु, रोमश, पुष्प पीतवर्ण के फली-चपटी उड़द पत्र सद्यश। पंचाग का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- रस में तिक्त, शीतल, कफ-पित्तवर्धक, शुक्रल, दाह-ज्वरनाशक, वल्य, चतुष्पर्णियों में माषपर्णी का उल्लेख है। च्यवनप्राश आदि औषध निर्माण में इसका उपयोग किया जाता है।

यथा – माषपर्णी रसे तिक्ता, शीतला रक्तपित्त जित्।
कफ पित्त शुक्रकरी, हन्ति दाहज्वरा निलान्।। "ध.नि."

कुम्भीक कुल - (LECYTHIDACEAE)

द्रव्य नाम :- संस्कृत - हिज्जल, निचुल,
स्थानिक - समुद्रफल,
लैटिन - Barrigtonia acutangula Gaertn.

स्वरूप :- इसके मध्यम आकार के वृक्ष होते हैं। पर्ण-अभिलट्वाकार, अभिप्रासवत्, दन्तुर एवं वृन्त युक्त होते है। पुष्प-मज्जरियों में रक्ताभवर्ण के होते हैं। फल घेरे में चतुष्कोण एवं एक बीज वाला होता है। इसके वृक्ष नदियों के किनारे अथवा जलमग्न भागों में अधिक पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण लोग फलों का उपयोग कफघ्न एवं वामक के रूप में प्रयोग करते हैं।

आयुर्वेदीय औषध प्रयोग :- कटु, उष्ण, भूतनाशक, वातव्याधियों में उपयोगी।

यथा – हिज्जलः कटुष्णश्च, पवित्रो भूतनाशनः।
वातामयहरो नानाग्रह संचारदोषजित्।। "रा.नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - कुम्भीक, कुम्भीर,
स्थानिक - कुम्ब, असुन्द,
लैटिन - Careya arborea Roxb.

स्वरूप :- कुम्भी के छोटे एवं मध्यम ऊंचाई के वृक्ष पाये जाते हैं। पत्तियाँ-अभिलट्वाकार, आयताकार, गोलदन्तुर एवं टहनियों पर समूहवद्धक्रम में निकलती हैं। पुष्प श्वेतवर्ण के, फल - गोलाई लिये हुये रक्ताभ वर्ण के होते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग सूखी खांसी, प्रदर, शोथ एवं सर्पविष में फल और छाल का उपयोग करते हैं।

आयुर्वेदीय गुण :- कटु, कषाय, ऊष्ण, ग्राही, वातकफनाशक, शोथ एवं प्रदर में उपयोगी।

कुम्भीक कटुः कषायोष्णो, ग्राही वातकफपहः। "रा.नि."

अतली कुल - (LINACEAEE)

द्रव्य नाम :- स्थानिक - कोका,
लैटिन - Erythroxylum coca lamk.

स्वरूप :- यह विदेशी वृक्ष है। इसके पेड़, रांची, सिंगभूमि में सड़कों के आस-पास लगाये हुये पाये जाते हैं। इसकी पत्तियों से कोकेन नामक प्रसिद्ध मादक द्रव्य निकाला जाता है पत्र ग्राही एवं उत्तेजक माने जाते हैं।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - अतसी,
स्थानिक - तीसी,
लैटिन - Linum usitatissimum Linn.

स्वरूप :- एक वर्षायु वनस्पति है। इसकी खेती की जाती है। तना-एकाकी, गोल, चतुष्कोणीय, पुष्प-नीलाभवर्ण के, बीज-स्निग्ध एवं कपिशवर्ण के होते हैं।

उपयोग :- मधुर-तिक्त, वीर्य-उष्ण, विपाक-कटु, गुरू, स्निग्ध, विरेचक, वातहर, पित्तप्रकोपक, क्षय, कास, शोथ, त्वक्‌रोग, कर्णरोग एवं व्रण में उपयोगी, प्रदाही व्रणों पर इसकी पोटलिश लाभप्रद है। वाल्मीकीय रामायण के अयोध्या काण्ड मे श्री राम के वस्त्रों से सम्बन्धित प्रसंग में क्षौम (अलसी) का उल्लेख है।

रसोन कुल - (LILIACEAE)



द्रव्य नाम :- संस्कृत - शतावरी,
स्थानिक - केदारनारी, ओतरंग, गंगतरंग।
लैटिन - Asparagus racemosus Willd.

स्वरूप :- यह कांटेदार, बहुवर्षायु और आरोही वनस्पति है। पत्र-सूच्याकार, पतले, गुच्छों में, पुष्प-श्वेतवर्ण के, फल - मांसल-लाल, मूल-कन्दवत् और गुच्छों में होते हैं। इस क्षेत्र में सर्वत्र उपलब्ध है।

स्थानिक प्रयोग :-थारू एवं संथाल के आदिवासी अपनी चिकित्सा में मूल का उपयोग करते हैं। इसके मूल चूर्ण का वल्य के रूप में प्रयोग किया जाता है। संथाली लोग मूल को सरसों के तेल में पकाकर एवं इसे छान कर इसका उपयोग दुष्ठव्रणों में करते हैं। गलगण्ड एवं ज्वर में इसका श्रृत कषाय ५ तोला की मात्रा में दिन में दो बार पिलाते हैं। आकार भेद से लघुशतावरी, महाशतावरी दो प्रकार की होती हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- रस - मधुर, तिक्त, वीर्य - शीत, विपाक - मधुर, गुण - गुरू, बल्य, बृष्य, रसायन, स्निग्ध, मेध्य स्तन्यवर्धक, रोगोपयोग - रक्त विकार, गुल्म, अतिसार, शोथ, वातव्याधि, मूत्रविकार, अम्लपित्त, उदरशूल अपस्मार में उपयोगी है। इससे सिद्ध तैलों का वाह्य उपयोग शिरोरोग, चर्मरोग एवं वातव्याधि में करते हैं। बलवृद्धि के लिये दुग्ध एवं शर्करा के साथ शताबरी पेय देते है।

योग :- शतावरीपाक - (रक्तविकार में), शतावरीघृत - (रक्तविकार में),
फलघृत - (उन्माद-योनिरोग में), शतावरी चूर्ण - (अम्लपित्त-उदरशूल में)।

मात्रा :- २ से ३ तोला। अनुपात - दूध, शहद, शर्करा।

यथा – शतावरी हिमातिक्ता, रसे स्वादुः क्षयास्त्रजित्।
वातपित्त हरा वृष्या, रसायन वरास्मृताः।।
सहस्त्रवीर्या मेध्यातु, हृद्यावृष्या रसायनी।
शीतवीर्या निहन्त्यर्शो, ग्रहणीनय-नामयान्।।
तदंकुरं स्त्रिदोषघ्नः, लघुरर्शः क्षयापहः।
शतावरी हृद्यं वृष्यं मधुरं पित्त जिद्यिमम्।। "ध.नि."



द्रव्य नाम :- संस्कृत - श्वेतमूशली,
स्थानिक - गेरेंगअड़ा सफेदमूशली।
लैटिन - Chlorophytum arundinaceum Baker.

स्वरूप :- इसकी तीन जातियाँ संथाल एवं छोटानागपुर क्षेत्र में पाई जाती है। २. मूशली - C. Laxum Br. ३. मूशली - C. tuberosum Baker. ये जातियाँ घास वाले ढलानों पर पाई जाती है। इनका संग्रह श्वेतमूशली के नाम से व्यवहार किया जाता है। पौध ६ इंच तक ऊंचे, पुष्प - गुलाबी श्वेत वर्ण के मूल - कन्दिल गुच्छों में, इन्हीं कन्दों का उपयोग सफेद मूशली के नाम से किया जाता है।

स्थानिक :- मूल का व्यापारिक रूप से संग्रह किया जाता है। आदिवासी लोग मूल चूर्ण को बल्य एवं रसायन के लिये उपयोग करते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- रस - मधुर, वीर्य - शीत, विपाक - मधुर, पित्तशामक, बल्य, मधुमेह, अतिसार, प्रवाहिका में उपयोगी।

योग :- मूसलीपाक (दौर्बल्य हर)।

विशेष :- कतिपय ग्रन्थकार Asparagus adsoendeus को सफेद मूशली मानते हैं।

यथा - मुसली मधुराशीता, वृष्या पुष्ठिवलप्रदा।
पिच्छिलाकफदा पित्तदाह श्रम हरापरा।।
मुसली स्यात् द्विधा, श्वेताचापरसां जिका।
श्वेतास्वल्प गुणापेत्ता, अपरा च रसायनी।। "रा.नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - घृतकुमारी,
स्थानिक - घी कुंआर,
लैटिन - Aloe vera Linn.

स्वरूप :- यह बहुवर्षायु मूलोद्भव मसृण मांसल कण्टकित पत्र वाली वनस्पति है। उद्यानों में प्रायः इसके पौध पाये जाते हैं। पुष्प दण्ड पर खिलते हैं जो कि गुलाबी लाल रंग के होते हैं।



स्थानिक प्रयोग :- पत्र के मांसल गूदे का उपयोग आदिवासी त्वचा के विकार यकृतरोग एवं जोड़ो की वेदना (सन्धिावात) में करते हैं। कोल जाति के लोग शिरःशूल में गुदे का उपयोग करते हैं। संहिताग्रन्थों में कुमारी का उल्लेख नहीं मिलता है। शोठलकृत गदनिग्रह में कुमार्यासव का उल्लेख वर्णित है।समम्भवतः १०वीं शदी के लगभग भारत में इसका आयात हुआ, यह मूलतः अफ्रीका का आदिवासी पौधा है। कनारी देश विशेष से इसे कुमारी कहते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- मधुर, तिक्त, सारक, शीत, रसायन है।यह गुल्म, प्लीहावृद्धि, यकृतवृद्धि तथा रजोरोध को दूर करती है।

कुमारी मधुरा तिक्ता, सराशीता रसायनी।
गुल्म प्लीह यकृत वृद्धि, रजोरोधान् विनाशयेत्।। (प्रि.नि.)

योग :- कुमार्यासव, २ से ४ तोला।



द्रव्य नाम :- संस्कृत - पलाण्डु,
स्थानिक - प्याज, अंग्रेजी - Onion.
लैटिन - Allium sepa Linn

स्वरूप :- एकवर्षायु क्षुप जाति की वनस्पति है। पत्र - अभिमुख, सादे लम्बे मूलोद्भव, कन्द-कन्दिल, बहुसूत्री, पुष्प-सनाल-गुच्छों में श्वेतवर्ण के, बीज-गोल चपटे, कृष्णवर्ण के होते हैं। इस क्षेत्र में इसकी खेती की जाती है। श्वेत एवं रक्तवर्ण भेद से दो जातियाँ होती है।

स्थानिक :- ग्रामीण लोग शाकों में मूलकन्द एवं पत्रों का उपयोग करते हैं। बीजो को शहद के साथ पीस कर गंजेपन पर लेप करते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- कटु, मधुर, रस प्रधान, वीर्य-ऊष्ण, विपाक - मधुर गुरू-अग्निवर्धक, तीक्ष्ण,

मूत्रजनन, वातघ्न, कफ-पित्तकर, अर्श, गुदभ्रंश, कामला, कर्णरोग, ज्वर, अनिद्रा, आमातिसार एवं अनार्त्तव में उपयोगी। उष्ण प्रकृति वाले व्यक्तियों के लिये इसका अधिक सेवन अहितकर है। मुख्यतः यह स्मरण शक्ति के लिए हानिकारक है।

यथा – पलाण्डु कटुको वल्यः, कफ पित्तहरो गुरूः।
वृष्यश्च रोचनो स्निग्धों, वान्तिदोष विनाशनः।।
अन्यो राजपलाण्डुः स्यात् यवनेष्ठोवृषाह्वयः।
राजप्रियो महाकन्दो, दीर्घ पत्रश्च रोचकः।।
कफहृत् दीपनश्चैव, बहुनिन्द्रा करस्तथा।। "रा.नि."

विशेष :- पलाण्डुस्वरस, अरोचक जन्यछर्दि (उल्टी) एवं पतले दस्तों में पुदीना अर्क के साथ प्रयोग करने से बहुत लाभ करता है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - रसोन,
स्थानिक - लशुन,
अंग्रेजी - Garlie.
लैटिन - Allium sativum Linn.

स्वरूप :- यह एक प्रसिद्ध शाकीय एक वर्षायु कन्दिल प्रधान वनस्पति है। इसकी खेती इन क्षेत्र में की जाती है। पत्र-मूलोद्भव, काण्डज अवृन्त होते है। पुष्प गुच्छों में श्वेत वर्ण के होते हैं। ग्रामीण लोग शाकों में इसका उपयोग करते हैं। कली लहसुन Allium ascallonicum Linn. बागों में लगाया हुआ मिलता है। एक गांठ वाला लशुन कहलाता है।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- लशुन में प्रायः एक रस को छोड़ कर अन्य पांचों रस मिलते हैं। वीर्य -ऊष्ण, विपाक-मधुर, रस, पाचन, रसायन, वातशामक, अग्निमांद्य, अजीर्ण, उदराघ्मान, वातरोग विशूचिका, पक्षाघात एवं वातनाड़ी संस्थान में उपयोगी है। क्षय (टी.वी.) आदि प्राणघातक किटाणुओं को निष्क्रिय करने की इसमें प्रबल क्षमता है। रसोनक्षीरपाक, रसोनकल्प, वातवह संस्थान की बिमारियों में विशेष प्रभाव कर है। यह फुफ्फुस, त्वचा, यकृत और वृक आदि अवयवों की क्रियाओं का नियमन करता है।

योग :- रसोनवटी (विशूचिका-अग्निमांद्य), रसोनकल्प एवं लशुनाघघृत (अग्निमांद्य)।

यथा – रसोन उष्णः कटु पिच्छिलश्च,
स्निग्धोगुरूः स्वादु रसोऽअतिवल्यः।
वुस्यंश्च मेधा स्वरवर्ण चक्षुः,
भग्नास्थि सन्धानकर सुतीक्ष्णः।। "रा.नि."

तथा – हृद्रोगजीर्ण ज्वरं कुक्षिशूल, विवन्ध गुल्मा रूचिकृच्छ्र शोफान्।
दुर्नाम कुष्ठानिल सादजन्तु, कफामयाहन्ति महारसोनः।। "ध.नि."

विशेष :- औषध चिकित्सा में एक गांठवाला लशुन अधिक गुणों वाला माना जाता है। निघण्टुकार ने इसे रसोनोअन्यों महाकन्द कहा है। वनस्पतिशास्त्र के आधार पर यह Allium ascalonicoum Linn हैं।

यथा – रसोनोन्यो महाकन्दो गृञ्जनो दीर्घ पत्रकः।
पृथुपत्रस्थूलकन्दो, यवनेष्ठोबलेहितः।। "रा.नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - लाङ्गली, (कलिहारी), स्थानिक - झगड़ाही, विंगकी चुंग, लैटिन - Gloriosa superba Linn.



स्वरूप :- यह एक सुन्दर और आकर्षक पुष्पों वाली लता है। यह कांटेदार झाड़ियों पर चढ़ी हुई रहती है। कन्द बहुवर्षायु एवं काण्ड वर्षाकालीन एक वर्षायु होता है। तना मृदु, वेलनाकार एवं संकुचित होता है। पर्ण-अवृन्त, लहरदार, पुष्प चित्रित लाल रंग के होते हैं। मूल हलाकार श्वेत वर्ण के होते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग मूल को अन्य जड़ी-बूटियो के साथ सरसों के तैल में पकाकर वातव्याधि झिनझिनी (लकवा) में इसकी मालीश करते हैं। फाईलेरिया (हाथीपांव) एवं आमाशयिक व्रण में मूल का उपयोग करते हैं। इन लोगों का विश्वास है कि कलिहारी घर मे आ जाने से कलह होने लगता है। इसलिये इसे झगड़ाहीकान्दा कहते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- रस - कटु, तिक्त, वीर्य - ऊष्ण, विपाक - कटु, गुण - लघु, तीक्ष्ण, सारक, गर्भपातक, कफ-वातशामक, कुष्ठ, व्रणशोथ, कृमि, वस्तिशोथ एवं महास्त्रोतस् की व्याधियों में उपयोगी। आयुर्वेद में इसकी गणना सप्त उपविषों में की गई है। संस्कृत साहित्य में कतिपय स्थलों पर लाङ्गली का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। कवियों ने लाङ्गली पुष्पों को मधु भ्रमरों के लिये आकर्षण का केन्द्र चित्रित किया है। लाङ्गली पुष्पों पर काले भ्रमरों का अनुबन्ध होने से कवियो ने इसके गुणों का काव्यात्मक चित्रण किया है।

यथा – लाङ्गली कटुका तिक्ता, चोष्णवीर्या सरा तथा।
तीक्ष्णा च कृमिशूलघ्नी, पित्तला गर्भ पातिनी। "प्रिय.नि."

द्रव्य नाम :- स्थानिक - को. अटकीर,
लैटिन :- Smilax macrophylla Roxb.

स्वरूप :- यह विदेशी द्रव्य चोपनीची और उशवा जाति की लता है। काण्ड कांटेदार, पत्तियाँ चौड़ाई लिये हुये अण्डाकार या वृत्ताकार होती है। पुष्प - सवृन्त पीताभश्वेत वर्ण के फल-पकने पर रक्तवर्ण के होते हैं। रक्ताभवर्ण वाले जड़ों का गुच्छा जमीन पर फैला रहता है।

स्थानिक प्रयोग :- मूल का उपयोग आदिवासी लोग शीतल, मूत्रल, शोथघ्न, पीड़ानाशक और ज्वरघ्न के रूप में करते हैं। इसकी अन्य जाति Smilax proflifera Roxb. अतिकिर का भी स्थानिक लोग चिकित्सा में प्रयोग करते हैं। संथाल एवं मुण्डाजाति के लोग मूल का उपयोग कैन्सर, कामला, न्यूमोनियाँ एवं ज्वरों में करते हैं।

विशेष :- शास्त्रीय चोपचीनी (उशवा) Smilax china भारत में विदेशों से आयातित की जाती है। इसका उपयोग वातरोग फिरंगरोग, आमवात, सन्धिशोथ, अपस्मार, उन्माद एवं चातुर्थिक ज्वरों में किया जाता है। मूल दीपन, पौष्ठिक एवं मलमूत्र शोधक है।



द्रव्य नाम :- संस्कृत - कोलकन्द,
स्थानिक - कांदरी, वनपियाज,
लैटिन - Urginea indica Kuth.

स्वरूप :- यह प्याज सद्यश कन्द वाली जंगली वनस्पति है। पत्तियाँ मूलोद्भव रेखाकार, चपटी एवं तीक्ष्णाग्र होती हैं। पुष्प दण्ड मूल से निकलता है। पुष्पदल - चक्राकार, घण्टिकार, हरिताभ श्वेत वर्ण के होते हैं। सिंगभूमि, रांची, पलामू के जंगलों में काफी मात्रा में पाया जाता है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी मूल को विषैला मानते हैं। कपड़ों में माड़ी देने के लिये मूल चूर्ण का उपयोग किया जाता है। बड़ी मात्रा में प्रयोग करने पर यह रेचक और वामक होता है पत्र स्वरस का वाह्य प्रयोग करते हैं।

यथा – कोलकन्दो कटुचोष्णः कृमिदोष विनाशनः।
वान्तिविषच्छर्दितहरो, विषदोष निवारणः।। "रा.नि."

विशेष :- संहिता ग्रन्थों में कोलकन्द का उल्लेख उपलब्ध नहीं है। धन्वन्तरि निघण्टु, राजनिघण्टु में वर्णित कोल कन्द सम्भवतः जंगली प्याज नहीं हैं। निघण्टुकार के अनुसार यह वमन विष एवं छर्दिहर माना गया है। जंगली प्याज रेचक और वामक होता है।

कुचला कुल (LONAGIACEAE)
द्रव्य नाम :- संस्कृत - विषमुष्ठी, कारस्कर,
स्थानिक - कुचिला,
लैटिन - Strychnos Nuxvomica Linn.

स्वरूप :- मध्यम आकार के सदाहरित वृक्ष पाये जाते हैं। काण्ड त्वक् हरित एवं चमकीली, पर्ण - मसृण, अभिलट्वाकार, पुष्प - छोटे हरिताभ - श्वेत, फल - अण्डाकार, मांसल गुलाबी रंग के एवं चपटे एक बीज वाले होते हैं। सिंगभूमि एवं पलामू क्षेत्र में कहीं-कहीं इसके वृक्ष पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग कुचिला को विषैला मानते हैं। इसके शु. बीज चूर्ण का उपयोग वातिक नाड़ीशूल एवं उदरविकार में करते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- रस - तिक्त, वीर्य - उष्ण, विपाक - कटु, ग्राही, अग्निवर्धक, कफ - पित्तघ्न, वातल, वातव्याधि, आमवात, हृदयदौर्वल्य, ज्वर में उपयोगी।

योग :- अग्नितुण्डीवटी, (अग्निमांद्य) विषमुष्ठी वटी (ज्वर)।

यथा – कारस्करः कटूष्णश्च, तिक्तोदीपन पाचनः।
सरोवातामयध्वंसी, बल्यो वाजीकरस्मृतः।। "प्रिय.नि."

वातामयास्त्र कण्डूति कफामार्शी व्रणापहः।। "रा.नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - कतक - निर्मली
स्थानिक - निर्मली,
लैटिन - Strychnos potatorum Linn.

स्वरूप :- सदाहरित मध्यम आकार के वृक्ष होते हैं। पर्ण-मसृण, अण्डाकार, अवृन्त होते हैं। पुष्प हरिताभ पीतवर्ण के। फल - मांसल पकने पर कृष्णाभवर्ण के होते है। छोटानागपुर, मानभूमि में इसके वृक्ष पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- पके हुये फल का गूदा आदिवासी लोग खाते हैं। बीज चूर्ण से गन्दे पानी को साफ करते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- पानी के शोधन में बीजों का अधिक प्रयोग किया जांता है। कटु, तिक्त, ऊष्ण, चक्षुष्य, रूचिकर, शूलघ्न।

यथा – कतकः कटुतिक्तोष्णः चक्षुष्य कृमिदोषनुत्।
रूचिकृत् शूलदोषघ्नो, बीजमम्बु प्रसाधनः।। "रा.नि."

कर्पूर कुल - (LAURACEAE)

द्रव्य नाम :- संस्कृत - कर्पूर,
स्थानिक - कपूर,
लैटिन - Cinnamomum camphora Nees.

स्वरूप :- इस क्षेत्र में कपूर के मध्यम आकार के वृक्ष पाये जाते हैं। जो बागो में लगाये हुये होते हैं। पत्र-अण्डाकार, अभिलट्वाकार, मसृण-सुगन्धित, पुष्प-हरिताभ श्वेत।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- रस-मधुर, तिक्त, वीर्य-शीत, विपाक-कटु, गुण-सुगन्धित, स्वेदल, उत्तेजक, चक्षुष्य, लेखन, कफ पित्तहर, मुखदौर्गन्धनाशक, विसूचिका उदरशूल, प्रमेह, ज्वरातिसार में उपयोगी।

योग :- कर्पूरासव (विसूचिका) अर्ककपूर (विसूचिका) अमृतबिन्दु (अजीर्ण-अतिसार)।

यथा – कर्पूर शीतलोहृद्यो, चक्षुष्यो लेखनो लघुः।
सुरभिस्तिक्त कटुको, दाहदौर्गन्ध्यछर्दिहृत्।। "प्रिय नि."

द्रव्य नाम :- स्थानिक - अमरबेल
लैटिन - Cassytha filiformis Linn.

स्वरूप :- यह त्रिवृत कुल में वर्णित अमृतबेल सद्यश पराश्रयी एवं पत्रविहीन वनस्पति है। यह बेल वृक्षो एवं झाड़ियों पर चढ़ी रहती है। पुष्प - अवृन्त, श्वेत होते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग पंचाग का उपयोग वल्य, व्रणरोपण एवं केश्य के रूप में करते हैं।

विशेष :- सम्भवतः यह भी निघण्टु ग्रन्थों में वर्णित आकाश वल्ली हो सकती है। यह कटु, मधुर, पित्तनाशक, वल्य और रसायन है।

यथा – आकाशवल्ली कटुका, मधुरा पित्तनाशिनी।
बृष्यारसायनी वल्या, दिब्यौषधिपरस्मृताः।। "रा.नि."

द्रव्य नामः- संस्कृत - मेदासक,
स्थानिक - मेदालकड़ी, पाजो, परूहि,
लैटिन - Litsea chihenisis Lam.

स्वरूप :- मेदा का दो तीन जातियाँ संथालपरगना एवं छोटानागपुर में पाई जाती हैं। जिसे पोजो, परही एवं मेदालकड़ी कहते हैं। वृक्ष छोटे मध्यम ऊँचाई के होते हैं। पत्तियाँ मसलने पर सुगन्धित अण्डाकार, प्रासवत, चिकनी एवं सवृन्त होती हैं। पुष्प-पीताभ वर्ण के गुच्छों में खिलते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग छाल का लेप चोट एवं मोच में करते हैं। इसकी छोटी जाति जिसे Litsaea polyantha कहते हैं। इसके छाल का उपयोग आदिवासी मवेशियों की चोट एवं अस्थिभग्न होने पर वांधते हैं। मूलत्वक् और बीज तैल का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है। आधुनिक मतानुसार छाल का शोथघ्न एवं त्वचा को मुलायम करने वाली मानते हैं। यूनानी मत से कटीशूल, गृघ्रसी एवं कफ-वातजरोगों में उपयोग किया जाता है।

वांदाकुल - LORANTHACEAE

द्रव्य नाम :- संस्कृत - वन्दाक, वृक्षरूहा,
स्थानिक - वांदा,
लैटिन - Dendrophthoe falcata Etti, = Loranthus longiflorus.

स्वरूप :- यह अर्धपराश्रयी जाति का पौधा है। यह दूसरे वृक्षों के सहारे अपना भोजन ग्रहण करता है। यह वृक्षों की शाखाओं पर पैदा होता है। इसकी पत्तियाँ अनेकों आकार-प्रकार की होती हैं। पुष्प-रक्त एवं गुलावी रंग के होते हैं। इसकी पत्ती और फूल का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है।

स्थानिक प्रयोग :- इसकी २-३ जातियाँ इस क्षेत्र में पाई जाती हैं। ग्रामीण लोग पत्र एवं पुष्पों का उपयोग वातहर, रक्तविकारनाशक एवं व्रणरोपण के लिये करते हैं।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - वन्दाक, (द्वितीय)
स्थानिक - वांदा, कटकुटजंग
लैटिन - Viscum articulatum Bur

स्वरूप :- यह पत्र विहिन अर्धपराश्रयी वंदाक कुल की वनस्पति है। इसका पौधा महुआ आदि वृक्षों पर पाया जार्ता है। शाखायें चपटी, लम्बी, हरी एवं सन्धियों परसंकुचित होती हैं। पत्तियाँ शल्कपत्रों

के रूप में पाई जाती हैं। पुष्प-सूक्ष्म, गुच्छों में फल-गोल, चिकने और पीले होते हैं। इसकी अन्य जातियाँ भी इस क्षेत्र में पाई जाती हैं।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण लोग ज्वर, विषमज्वर, अस्थिभग्न एवं संधिपीडा में इसके पंचाग का फांट पीने को देते हैं। मासिक धर्म की अनियमितता में उपयोग करते हैं।
आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- तिक्त, शीत, कषाय, कफ,-पित्तहर, वृष्य एवं रसायन माना जाता हैं।

यथा – वन्दाक स्तिक्त शिशिरः, कफ पित्त श्रमापहः।
वश्यादि सिद्धिदो वृष्यः, कषायश्च रसायनः।।"ध.नि"

विशेष :- कुछ ग्रन्थकार Vanda की प्रजातियों को वन्दाक मानते हैं। वंगीय वैद्य इसे रास्ना केनाम से प्रयोग करते हैं।

दाडिमकुल - LYHRACEAE

द्रव्य नाम :- संस्कृत - मदयन्तिका,
स्थानिक - मेंहदी,
लैट्नि - Lawsonia enermis Linn.

स्वरूप :- इसके झाड़ीनुमा गुल्म होते हैं। उद्यानों एवं खेतों के बाडों पर इसके गुल्म लगाये हुये पाये जाते हैं। पत्र-आयताकार, मसृण, पुष्प-सुगन्धित, श्वेताभवर्ण के गुच्छों में खिलते हैं। फल -गोल बारीक बीज वाले होते हैं। यह फारस का आदिवासी पौधा है। अफ्रीका से भारत में इसका प्रसार हुआ। सुश्रुत में मदयन्तिका के नाम से पत्रों का उपयोग अंगराग में किया है। डल्हण ने मदयन्तिका इतिलोकेयस्यापिष्ठे नखानां रागं स्त्रियः उत्पादयन्ति।। ऐसा लिखा है। पत्र का उपयोग शिरःशूल में लेप के रूप में किया जाता है। पत्र क्वाथ का उपयोग मुख एवं गले के व्रणों पर कुल्ले एवं गण्डूष करने के लिये करते हैं। त्वक का उपयोग कुष्ठ, कामला एवं प्लीहा वृद्धि पर किया जाता है। यूनानी चिकित्सा में इसके पत्र, बीजों का उपयोग अधिक किया जाता है। रञ्जन (रंगने) के काम में अधिक उपयोग होता है। बीजों का उपयोग बल्य के रूप में किया जाता है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - अग्निपत्री,
स्थानिक - अगिया, दादमारी,
लैटिन - Ammaria baccifera Linn.

स्वरूप :- इसके स्वावलम्बी क्षुप २ फीट तक ऊँचे होते हैं। पत्तियाँ आमने-सामने अण्डाकार, प्रासवत्, दोनों सिरों पर क्रमशः कम चौड़ी। पुष्प-सूक्ष्म सवृन्त, हरिताभ, पत्र-कोणीय, गुच्छों में खिलते हैं। फल-रक्तवर्ण के होते हैं। पौध धान के खेतों में पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- ताजे पत्तियों को शरीर पर रगड़ने पर छाले पड़ते हैं। ग्रामीण इन पत्तियों को दाहजनक मानते हैं। ज्वर, प्लीहा वृद्धि एवं चर्मरोगों में इसका प्रयोग करते हैं। दाद-खुजली में यह उपयोगी है, इसलिये इसे दादमारी भी कहते हैं।

विशेष :- चरक एवं सुश्रुत संहिता में अग्निक शब्द का उल्लेख कतिपय स्थलों पर है। अग्निक नामक द्रव्य से चित्रक, भल्लातक, लाङ्गली, अजमोदा का प्रयोग सन्दर्भ स्थलों पर किया गया है। चित्रक एवं भल्लातक के पर्यायों में अगिया, अग्निपत्र Ammania baccifera का उपयोग किया जाना चाहिये।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - सिद्धक,
स्थानिक - काल, सेकरे, सिद्ध
लैटिन - Lagerstromia parviflora Roxb.

स्वरूप :- इसके मध्यम आकार के वृक्ष सर्वत्र पाये जाते हैं। पत्तियाँ-आयताकार, लट्वाकार, प्रासवत् नोकदार होती हैं। इसके पुष्प-नीलाभ गुलाबी रंग के गुच्छों में होते हैं। इसकी एक अन्य जाति भी इस क्षेत्र में पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग मूलत्वक् को अमलतास की छाल के साथ पीसकर ज्वरघ्न के रूप में उपयोग करते हैं।

विशेष :- संहिताग्रन्थों में तिनिश एवं धव के साथ इस सिद्धक नामक द्रव्य का उल्लेख आया है। कुछ टीकाकार तिनिश का पर्याय सिद्धक मानते हैं। लेखक के विचार से शास्त्रीय सिद्धक Lagerstroemia parviflora है।



द्रव्य नाम - संस्कृत - दाडिम,
स्थानिक - अनार,
लैटिन - Punica granatum Linn.

स्वरूप :- इसके बहुशाखीय झाड़ीदार गुल्म वागों में लगाये हुये पाये जाते हैं काण्ड-स्निग्ध, कण्टकित, पत्तियाँ मसृण, आयताकार, चमकीला, पुष्प रक्तवर्ण के प्यालाकार, फल-गोल, अनेक बीजों वाला होता है। खट्टे बीजों को अनारदाना कहते हैं। बेदाना मीठा होता है।

स्थानिक प्रयोग :- मीठे फल खाये जाते हैं। खट्टे

बीजों की चटनी बनाते हैं। पुष्प-फल, छाल का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- रस-अम्ल, मधुर, वीर्य-शीत, ऊष्ण, विपाक-मधुर, गुण-पाचक, संग्राही ज्वर, तृष्णा, दाह, आमातिसार, प्रदर, उदरकृमिनाशक एवं पाचन संस्थान के विकारों में उपयोगी।

योग :- दाडिमाष्ठक चूर्ण-अतिसार, दाडिमघृत-(अतिसार) दाडिमपुटपाक (अतिसार)।

यथा – स्निग्धोष्णं दाडिमं हृद्यं, कफ पित्तविरोधि च।
द्विबिधं तच्च विज्ञेयं, मधुरं चाम्लमेव च।। "ध.नि."

तत्र वातकफ हारि पित्ताम्लं, ताप हरिमधुरं पथ्यम्।
अम्ल कषायं मधुरं, वातघ्नं ग्राहि दीपनम्।। "रा.नि."



द्रव्य नाम :- संस्कृत - धातकी,
स्थानिक - धवई, कोल-ईचा, पुलि,
लैटिन - Woodfordiia frutioosa Kurz.

स्वरूप :- इसके बहुशाखीय गुल्म इस क्षेत्र में सर्वत्र पाये जाते हैं। पत्तियाँ अवृन्त रेखाकार, प्रासवत्, शाखाओ पर दो पंक्तियों में क्रमबद्ध रूप से रहती हैं। पुष्प-सुन्दर, गुच्छों में रक्तवर्ण के सम्पूर्ण काण्डज हाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- पत्र का लेप आदिवासी लोग आमवात एवं वातरक्त में करते हैं। पुष्पों का उपयोग बच्चों के अपचन में प्रयोग करते हैं। ग्रामीण महिलायें पुष्प चूर्ण का उपयोग रक्तप्रदर में शीत जल के साथ करते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- रस-कट्ठु, कषाय, वीर्य-शीत, विपाक-कट्ठु, गुण- मादक, संग्राहक, कट्ठु पौष्ठिक, पित्तनाशक, प्रवाहिका, अतिसार, रक्तप्रदर, विर्सप आदि रोगों में उपयोगी। आसव-अरिष्ठों में संधान क्रिया ठीक होने एवं उनका रंग सुन्दर बनाने के लिये इसके पुष्पों का उपयोग किया जाता है।

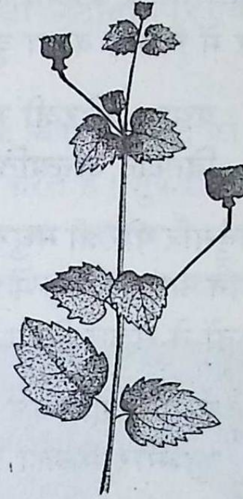
योग :- धातक्यादि चूर्ण (ज्वर)

यथा – धातकी कटु कोष्णा च, मद्कृद्विषनाशिनी।
अतिसार हरा गर्भस्थापनी, कृमिरक्तनुत्।। "ध.नि."

प्रवाहिकातिसारघ्नी, विसर्प व्रणनाशिनी।। "रा.नि."

कार्पासकुल - MALVACEAE

द्रव्य नाम :- संस्कृत - अतिबिला,
स्थानिक - मिरूबाहा, कंघी,
लैटिन - Abutilou indicum G. Don.



स्वरूप :- बहुशाखीय ३ से ४ फीट ऊँची वनस्पति है। काण्ड-मृदु, मसृण, पत्र-सवृन्त, अण्डाकार, आयताकार, पुष्प-पीतवर्ण के फल-कंघीसद्यश, मृदुरोमावरण, चिपचिपे, बीज कृष्णवर्ण के होते हैं। इसकी अन्य जाति भी इस क्षेत्र में पाई जाती है। जिसे Abutilon hirtum G. Don. कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग बीजों का उपयोग नामर्दी में करते हैं। मूल क्वाथ का उपयोग मूत्रल और दाह के रूप में करते हैं। प्रयोज्य अंश - पंचाग, बीज।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- रस-कटु, तिक्त, वीर्य-कटु, विपाक-कटु, गुण-बल्य, धातुपौष्ठिक, वातशामक, कृमि, दाह, तृष्णा, मूत्रकृच्छ्र, रक्तमूत्र, विद्रधी, व्रण एवं विसूचिका रोगों में उपयोगी। वलाचतुष्ठय में अतिवला भी एक वनस्पति है। योग - वला तैल (व्रण) में।

बलाचतुष्ठय :- गुणा :-

बला चातिवला चैव, महा बलाबला।
अन्य राजवलाचेति, बलायाः पंचकंमतम्।। "रा.नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - गोरक्षी, शीतफल,
स्थानिक - गोरखईमली,
लैटिन - Adansonia digitata Linn.

स्वरूप :- इसके मध्यम आकार के वृक्ष रांची क्षेत्र में पाये जाते हैं। छाल चिकनी काण्ड-बहुशाखीय,

पत्र-सेमलपत्र सद्यश, पाणिवत्, सपत्रक, अभिलट्वाकार, पुष्प-बड़े ककड़ी सद्यश होते हैं। यह अफ्रीका का आदिवासी पौधा है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग फलमज्जाा, पत्र और छाल का उपयोग स्थानिक चिकित्सा ज्वर में प्रयोग करते हैं।

बक्तव्य :- यद्यपि यह अफ्रीका की आदिवासी पौधा है। आयुर्वेद ग्रन्थों में गोरक्षी एवं शीतल के नाम से इसका वर्णन मिलता है। वैद्यक शब्द सिन्दु में गोरक्षी नामक द्रव्य गोपाली, पंचपर्णिका नामों से मालवा देश में मिलने वाला वृक्ष विशेष कहा है।

यथा – गोरक्षी मधुरा तिक्ता, शिशिरा दाहपित्तनुत्।
विस्फोट वान्त्यतिसार, ज्वरदोष विनाशिनी।। "रा.नि."

नरहरी के मतानुसार गोरक्षी मधुर, तिक्त, शीत, वमन, अतिसार एवं ज्वरनाशक वनस्पति है। सुश्रुत संहिता सूत्रस्थान अध्याय ४६ में शीतफल का उल्लेख मिलता है। इसे रावणम्लिका भी कहते हैं। इस ओर विद्वानों ने संकेत किया है।

यथा – शीतफलं रावनाम्का प्रसिद्धम्,
काश्मीराम्लिका इत्येके डल्हणः।।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - लताकस्तूरी, कटुक,
स्थानिक - मश्कदाना,
लैटिन - Hibiscus abalmoschus Linn.

स्वरूप :- यह रोमश एवं कंटक सद्यश रोमों से आवृत्त वनस्पति है। इसके काण्ड संथाल, छोटानागपुर में कहीं-कहीं स्वयंजात पाये जाते हैं। आजकल इसकी खेती की जा रही है। पुष्प पीत वर्ण के सुन्दर एवं फल-गोल, आयताकार, बीज-कृष्णवर्ण के चखने पर कस्तूरी जैसे गन्ध छोड़ते हैं इसी कारण लताकस्तूरी कहते हैं। यह लता जाती की वनस्पति नहीं है। सुन्दर पुष्प होने के कारण लता इस वनस्पति का उपमेय है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग बीज का उपयोग सर्पदंश एवं बल्य एवं बंहण के लिये करते हैं।

वक्तब्य :- संहिताग्रन्थों में स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है। सुश्रुतसंहिता में कटुक, कटुकाह्वय आदिनामों का उल्लेख हैं। जिसकी साम्यता लताकस्तूरीका से मिलती है। स्पृक्का, ज्योतिष्मती वल्लीलताकस्तूरिका च।।

आयुर्वेदीय प्रयोग :- रस-तिक्त, मधूर, वीर्य-शीत, विपाक-मधुर, वृष्य, वाजीकर, कफशामक,

वस्तिरोग, आन्त्ररोग, मुखरोग, आक्षेप, अपस्मार आदि में उपयोगी।

द्रव्य नामः- संस्कृत - पिचुक, बलराज,
स्थानिक - उसंगिद, भेड़ासांगा,
लैटिन - Hibiscus cancellatus Roxb.

स्वरूप :- यह कण्टक सद्यश रोमों वाली वनस्पति है। पत्तियाँ नीचे से ऊपर अनेक आकार - प्रकार में होती हैं। पुष्प-पीले, फल-गोल या आयताकार होते हैं। यह पौधा छोटानागपुर एवं संथालपरगना में सर्वत्र नमदार स्थानों पर पाया जाता है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी मूल को पौष्ठिक मानते हैं। इसके त्वक्हीन कन्द को घी में भून कर काली मिर्च के साथ मिलाकर सूखी खांसी में ज्वर में प्रयोग करते हैं। शुक्रदौर्वल्य एवं प्रमेह में उपयोगी माना जाता है। सुश्रुत संहिता में पिचुक नामक द्रव्य का उल्लेख है। जिसकी साम्यता बलराज नामक वनस्पति से मिलती है। डल्हण ने एक स्थान पर पिचुक करीटंतस्य फल एवं कार्पसफलं इत्येके अर्थ किया है।



द्रव्य नाम :- संस्कृत - भाण्डी,
स्थानिक - भिण्डी,
लैटिन - Hibiscus esculentus Linn.

स्वरूप :- इसकी इस क्षेत्र में खेती की जाती है। इसके पौधे ३ से ५ फीट ऊँचे रोमश, पुष्प-पीतवर्ण के फल-अंगुली सद्यश होते हैं। शाकों में विशेष उपयोग होता है। मूल का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है। डल्हण ने भाण्डी से भिण्डी इति लोके अर्थ किया है। इसका उल्लेख सुश्रुत संहिता चिकित्सा अध्याय ३१ में मिलता है। यह मूलतः अफ्रीका का आदिवासी पौधा है। सम्भवतः इसका प्रचार मध्यकाल में भारत में हुआ।

नोट :- इसकी अन्य जाति उद्यानों में लगाई हुई पाई जाती हैं। जिसे Hibiscus rosa-sienensis जपा कहते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- पुष्पों का उपयोग परिवार नियोजन में उपयोगी है। यह कटु, उष्ण, कृमिनाशक एवं मानसिक दोषहर है। सूर्य की उपासना में जपा पुष्प को उपयोगी माना जाता है।



यथा – जपातु कटुरूष्णा इन्द्रलुपृकनाशनम्।
विषच्छर्दि जन्तु जननी, सूर्याराधन साघनी।।
"रा.नि."

संस्कृत साहित्य में जपा (गुड़हल) वाल्मीकीय रामायण में गुड़हल का उल्लेख युद्धकाण्ड में सन्ध्या समय की तुलना से वालसूर्य की तुलना से की है। सूर्य की उपासना के लिये कतिपय स्थानों पर जपा का उल्लेख है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - बला,
स्थानिक - बरियाराा, खटेंटी
लैटिन - Sidia cordifolia Linn.

स्वरूप :- इस प्रजाति में इस क्षेत्र में करीब ६ किस्म की जातियाँ पाई जाती हैं। जिनका उपयोग वरियारा, बीजबन्द के नाम से किया जाता है। ये सभी वर्षायु किस्में वर्षाकाल में विशेष रूप से पाई जाती हैं। इनकी पत्तियाँ लट्वाकार, वृताकार एवं हृदयवत् होती हैं। पुष्प-पीत वर्ण के पाये जाते हैं। प्रायः वलाभेद एवं बलाचतुष्ठय से इनका चिकित्सा में उपयोग किया जाता है।

भूमिबला - Sidia veronicaefolia Lamk.
बलाभेद - Sidia spinosa Linn.
बलाभेद - Sidia acuta. Burm.
महाबला - Sidia rhombifolia Linn.

ये जातियाँ छोटानागापुर एवं संथालपरगना क्षेत्र में पाई जाती हैं।
स्थानिक प्रयोग आदिवासी लोग मूल एवं बीज का उपयोग, वातवेदना तथा बल्य के रूप में प्रयोग करते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- रस-मधुर, कषाय, वीर्य-शीत, विपाक-मधुर, गुण-शीतल, वृष्य, पित्त-वातशामक, रक्तप्रदर, शुक्रदोष एवं प्रमेह में उपयोगी।

यथा – बला चातिऽबला चैव, महाबलावला बला।
अन्याचबलाचेति, बलया पञ्चकं मतम्।।"ध.नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - बन्यकार्पासी, तुण्डिकेर,
स्थानिक - बनकपासी,
लैटिन - Thespesia lampas Dalz.

स्वरूप :- इसके गुल्मक ४ से ६ फीट तक ऊँचे हाते हैं। पत्र-पाणिवत् त्रिखण्डित, पुष्प-पीले या रक्तवर्ण के होते हैं। वन्य रूप में इस क्षेत्र में पाया जाता है। आदिवासी मूल एवं बीज का उपयोग पूयमेह में करते हैं। सश्रुंत संहिता उत्तर तंत्र अध्याय ४६ में तुण्डिकेर का उल्लेख है। इसकी अन्य जाति के वृक्ष सड़कों के आसपास लगाये हुये पाये जाते हैं। जिसे पारस-पीपल Thespesia populnea Corn कहते हैं। फल श्वेतवर्ण के एवं गोल होते हैं।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - महाबलाभेद,
स्थानिक - मिरहिलट
लैटिन - Urena lobata Linn.

स्वरूप :- इसके २ से ४ फीट तक ऊँचे क्षुप पाये जाते हैं। पत्र-अभिलट्वाकार, सवृन्त, पुष्प-गुलाबी रंग के, इस क्षेत्र में सर्वत्र पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- मूल एवं बीज का उपयोग आदिवासी हाथीपांव (फाइलेरिया) में करते हैं। इसके अतिरिक्त आमवात में मूल क्वाथ का आभ्यन्तरिक एवं वाह्य प्रयोग करते हैं।

चम्पककुल - MANGNOLIACEAE

स्वरूप :- संस्कृत - चम्पक, हेमपुष्पक,
स्थानिक - चम्पा,
लैटिन - Michelia champa Linn.



स्वरूप :- इसके क्षुप सिंहभूमि, नेतरहाट, पूर्णिया क्षेत्र में कहीं-कहीं पाये जाते हैं। टहनियाँ मुरचई रंग की पत्तियाँ तीक्ष्णाग्र, अभिलट्वाकार, पुष्प-पीताभवर्ण के सुगन्धित होते हैं। आदिवासी लोग सर्पविषघ्न, पित्तध्न एवं सुगन्धित रूप में प्रयोग करते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- कटु, तिक्त, शीतल दाहनाशक, हृद्य विषघ्न, कफपित्तनाशक, कुष्ठ, कण्डू व्रणहर।

यथा – चम्पक कथितः थीता वीर्येऽति कटुको रसेः।
हृद्यः सुगन्धिबिषहा, कफ पित्त विनाशनः।।"ध.नि."

कुष्ठ कण्डू व्रणहरो, गुणास्थ्यो राजचम्पकः।।

निघण्टुकारों ने चम्पक, राज चम्पक एवं नागचम्पक भेद से तीन किस्मों का उल्लेख किया है।

यथा – क्षुद्रादि चम्पक स्त्वन्यः संज्ञेयो नागचम्पकः।
फणिचम्पक नागाह्वः, चम्पक वनजशराः।। "रा.नि."

संस्कृत साहित्य में चम्पा :- संस्कृत साहित्य में चम्पक (चम्पा) का उल्लेख प्रियदर्शन एवं सुरभिसम्पन्न पुष्प वृक्षों में आया है। ऋतुराज बसन्त के मनमोहक एवं उद्दीपक समृद्धि में पुष्पों की कालिकावस्था दीपशिखा की भांति तथा प्रफुल्लावस्था में प्रियदर्शन के प्रसंग में कवियों एवं नानाविध आलंकारिक रूप में इसके पुष्पों का चित्रण किया है। गन्धायनमन में नाग (नागकेशर) उत्पन्न (कमल) पाटला पुष्पों के साथ चम्पक पुष्प का भी उल्लेख किया है। चम्पक का गिरिकाननों, वनस्थलियों, उपत्काओं में तथा उद्यानों, नगरों में आरोपित करने का उल्लेख है। वाल्मीकीय रामायण में चम्पा का उल्लेख अरण्यकाण्ड में सीता जी के रंग से उपमापरक के प्रसंग में पंचवटी में सुगन्धित पुष्पों के प्रसङ्ग में पंपासर के वनों एवं लंका की अशोक वाटिका आदि कतिपय स्थलों के प्रसंग में चम्पा का वर्णन मिलता है। यह मलय, जावा, मकासर आदि देशों का मूल वासी वृक्ष है। अति प्राचीन काल से यह वृक्ष भारत में आया है। भारतीय परम्परा एवं श्रृंगारी पुष्पों के रूप में इसके पुष्पों का उल्लेख बहुत प्राचीन काल से मिलता है। संस्कृत साहित्य के सभी ग्रन्थों में प्रायः इस वृक्ष का उल्लेख मिलता है।

माधवीकुल - MALPIGHIACEAE



द्रव्य नाम - संस्कृत - माधवी,
स्थानिक - संगकरला,
लैटिन - Hiptage mdablota Goertn.

स्वरूप :- इसकी विस्तृत काष्ठीय लतायें होती हैं। पत्तियाँ अण्डाकार, लट्वाकार-प्रासवत्, अभिमुख एवं चमकीले होती हैं। पुष्प-श्वेत, आकर्षक एवं सुगन्धित होते हैं। सिंगभूमि, हजारीवाग आदि स्थानों के नदी-नालों, उद्यानों में इसकी लतायें पाई जाती हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग जीर्ण-आमवात तथा दमा में प्रयोग करते हैं। पत्तियों का उपयोग कण्डू एवं दाहशामक के रूप में करते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- कटु, तिक्त, कषाय, व्रणरोपक, दाहशामक एवं सुगन्धित।

यथा – माधवी कटुका तिक्ता कषाया मदगन्धिका।
पित्तकास व्रणान् हन्ति, दाह शोक विनाशिनी।। "रा.नि."

संस्कृत साहित्य में माधवी लता :- संस्कृत साहित्य में माधवी लता का वर्णन अतिमुक्तक, वासन्ती आदि नामों से मिलता है। वनस्पतियों की प्राकृतिक शोभावर्धन के साथ भवनों के द्वार, बाग-वाटिकाओं एवं छाया-मण्डपों के लिये माधवी का उपयोग किया गाया है। मगधराज के क्रीडोद्यान में राजापुरू के मदनोद्यान में, गन्धमादन पर्वत पर एवं हिमालय की उपत्पकाओं में इस लता के मिलने के संकेत मिलते हैं। धवल पुष्पों पर मंडराते हुए गुंजार अथवा अवस्थान किये काले भौंरे का नानाविध काब्यात्मक चित्रण किया गया है। माधवी पुष्प को मनमोहक बतलाया है। बाल्मीकीय रामायण में माधवी नामक लता का उल्लेख किष्कन्धा काण्ड के पंपासर के बनों में एवं सह्यगिरी कानन के प्रसंग में आया है।

सुषनीकुल - MARSILEACEAE

द्रव्य नाम :- संस्कृत - सुनिषण्डक,
स्थानिक - सुषनि,
लैटिन - Marsilia minuta Cinn.

स्वरूप :- यह जलीय स्थानों में पैदा होने वाली चांगेरी सद्यश एकवर्षायु शाकीय वनस्पति है। पत्रक चतुष्फलक, अनियमित, इस क्षेत्र के नमदार एवं पानी वाले स्थानों पर सर्वत्र इसके क्षुप पाये जाते हैं।

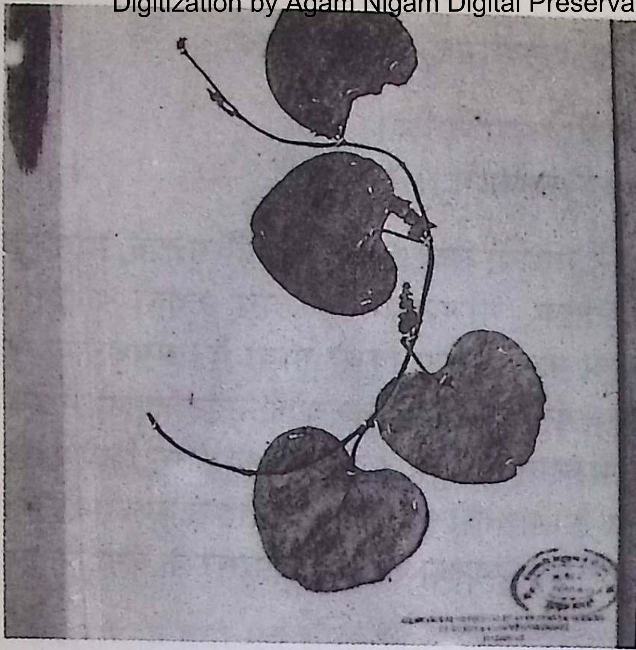
स्थानिक प्रयोग :- इसके शाग का प्रयोग आदिवासी करते हैं। इसके शाग सेवन से निद्रा अधिक आती है।

आयुर्वेदीय औषध प्रयोग :- यह मधुर, कषाय, ग्राही, मेध्य, शीत एवं वृष्य है। यह ज्वर, भ्रम तथा मानस रोगों को दूर करता है।

यथा – चतुष्पत्रः स्वतिक्श्च, सुनिषण्णक इत्यपि।
स्वादुः कषाय संग्राही, मेध्यस्तुसुनिषण्णक।
शीतो बृष्य ज्वर भ्रान्तिः, मनोदोषापहारकः।। "रा.नि."

गुडूचीकुल - MENISPERMACEAE

द्रव्य नाम :- संस्कृत - पाठा,



स्थानिक - (की.) पीटुसिंग, रानूरेड, (सं.) तेजोमाल,
लैटिन Cissampelos pareira Linn.

स्वरूप :- यह आरोही लता जाति की वनस्पति है। मूल स्तम्भ बहुवर्षायु पर्ण-लट्वाकार, वृताकार, पुष्प-श्वेताभ, फल-रक्त या नारंग वर्ण के होते हैं। मूल स्वाद में कड़वा होता है। इस क्षेत्र के नमदार स्थानों में सर्वत्र यह वनस्पति पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग :- मूल का प्रयोग आदिवासी लोग अतिसार एवं उदरशूल में करते हैं। स्थानिक लोग मूल का उपयोग मादकपेय के मशालों में किण्वीकरण में करते हैं। आयुर्वेदीय चिकित्सा में पंचाग का उपयोग होता है।

आयुर्वेदीक औषध उपयोग :- तिक्त-रस, गुरू, उष्ण, विषघ्न, कुष्ठघ्न, कण्डूघ्न, अतिसारनाशक, शूलघ्न, ज्वरघ्न, त्रिदोषशामक।

यथा – पाठा तिक्ता रसा बृष्या, विषघ्नी कुष्ठ कण्डुनूत्।
पाठा अतिसारशूलघ्नी, कफ पित्त ज्वरा–पहा।। "ध.नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत -पातालगरूड़ी, (छिलहिण्ट),
स्थानिक - जलजमनी,
लैटिन - Cocculus hirsutus Dielis.

स्वरूप :- इसकी लतायें पलामू, सिंगभूमि, संथालपरगना में सर्वत्र पाई जाती हैं। पर्ण-मृदु, श्वेताभ, रोमावरण से ढके हये और एक ही लता पर अनेक आकार-प्रकार के पत्र पाये जाते हैं। पत्तियाँ आयताकार लट्वाकार, पुष्प-एक लिंगी, सूक्ष्म और हरिताभवर्ण के होते हैं। इनकी पत्तियों को पानी में मसलने पर पानी जम जाता है। इसलिये इसे जल-जमनी कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- इसकी जड़ सर्पविष में बहुत उपयोगी ग्रामीण मानते हैं। वातघ्न के रूप में भी ग्रामीण प्रयोग करते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- मूल-तिक्त, कफघ्न, विषघ्न, बल्य माना जाता है।

यथा – सर्ववश्यकरी सैषाः, सर्पादिविषनाशनी।
छिलहिण्टः परंवृष्यः कफघ्नपवनापहः।। "आनन्दकन्द"

विशेष :- संहिताग्रन्थों में वत्सादनी, गुडूची के प्रयोगों में वर्णित है। सुश्रुत के टीकाकार डल्हण ने वत्सादनी वत्सपत्रक यह अर्थ किया है।

यथा – "वत्सपुत्रक वत्सिया इतिलोके गुडूचीत्पपरे" डल्हण।

जलजमनी को स्थानिक भाषा में वातसनवेल भी कहते हैं। इस आधार पर यह वनस्पति सुश्रुत में वर्णित वत्सादनी हो सकती है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - आकनादी, पाठाभेद,
स्थानिक - पितुशिंग, (मुण्डा)
लैटिन - Stephania hernandifolia Walp.



स्वरूप :- इसकी पाठा सद्यश लता होती है। यह दूसरी झाड़ियों पर आवृत रहती है। पत्र-वृत्ताकार, सवृन्त, मसृण, पुष्प-मज्जरी में पीताभ फल-पकने पर रक्तवर्ण के मूल-कन्दिल होते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- परिवार नियोजन में मूल का उपयोग करते हैं।

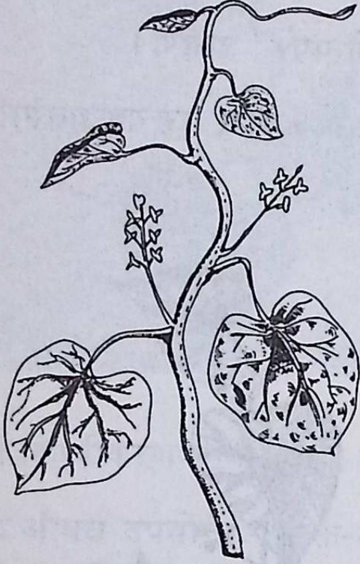
विशेष :- संहिताग्रन्थों में द्वेपाठे के नाम से उल्लेख है। कुछ वैद्य Cyclea peltata का प्रयोग राजपाठा के नाम से करते हैं। लेखक के विचार से आकनादी का पाठभेद से प्रयोग किया जाना चाहिये।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - गुडूची,
स्थानिक - गिलोय, गुरूच, गुड़ची,
लैटिन - Tinospora cordifolia Miers.

स्वरूप :- यह प्रसिद्ध आरोही लता जाति की वनस्पति है। कांड-हरित मांसल, कार्कयुक्त पत्तियाँ, चिकनी, ताम्बूलाकार, काण्ड से कभी-कभी वायब्यमूल निकल कर नीचे झूलते रहते हैं। पुष्प-मज्जरी में पीतवर्ण के फल-गोल-मसृण पकने पर रक्तवर्ण के होते है। इसकी अन्य जाति संथालपरगना में पाई जाती है। जिसे पदमगुलंच, कन्द गुडूची Tinospor malabarica Miers कहते

हैं। कन्द गुडूची का उल्लेख राज निघण्टु कार ने किया है।

यथा – कन्दोद्भवा गुडूची च, कटूष्णा सन्निपातहा।। "रा.नि."



स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग मूल एवं काण्ड का उपयोग ज्वरघ्न प्रमेह, धातुविकार, रक्तविकारो में क्वाथ एवं स्वरस के रूप में करते हैं। त्वक् रोगों में इसे प्रधान औषध मानते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- रस-तिक्त, कषाय, कटु, वीर्य-ऊष्ण, विपाक-कटु, लघु, बल्य-संग्राही, रसायन, त्रिदोषशामक, रक्तदोष, ज्वर, प्रमेह, रक्तपित्त, कुष्ठ, पाण्डु, वातरक्त में उपयोगी है। विषमज्वर एवं जीर्णज्वर में काण्ड का क्वाथ दिन में २-३ बार पिलाने से लाभ करता है। कमला में इसके स्वरस के साथ मधु मिलाकर पिलाने से लाभ होता है। अर्श में गुडूची स्वरस या चूर्ण तक्र के साथ देने से लाभ होता है। गुडूचीसत्व-ज्वरहर के रूप में उपयोग किया जाता है। प्लीहा वृद्धि एवं वस्ति-शोथ में उपयोगी है। जीर्णशोथ, अतिसार, अम्लपित्त एवं मूत्र विकारो में उपयोगी है।

योग :- अमृतारिष्ठ- (ज्वर में), गुडूचीसत्व- (ज्वर-प्रमेह में), गुडूच्यादिचूर्ण- (पाण्डु में), गुडूच्यादिक्वाथ- (कुष्ठ एवं त्वक् रोगों में)।

यथा – गुडूची स्वरसे तिक्ता, कषायोष्णा गुरूस्तथा।
त्रिदोष जन्तु रक्तार्शः कुष्ठ ज्वर हरापराः।।
ज्वरतृड् पाण्डुवातासृक्, छर्दि मेहः त्रिदोषनुत्।
रक्तवातप्रशमनी, कण्डु विसर्प नाशिनी।।
गुडूच्यायुष्य प्रदांमेघ्या, तिक्ता संग्राहिणीबला।। "ध.नि."

अनुपान भेद से गुडूची :-

यथा – घृतेन वातं सगुडा विवन्धं, पित्तं सिताठया मधुना कफं च।
वातास्त्रमुग्रं रूवुतैल मिश्रा, शुंष्ठयस्याऽमवातं शमयेत् गुडूची।। (शा.नि.)

द्रव्य नाम :- स्थानिक - करवैत, तिलियाकोरू,
लैटिन - Tiliacora acuminata Miers

स्वरूप :- इसकी विशाल काष्ठीय लतायें होती हैं। जिनकी पत्तियाँ लट्वाकार, भालाकार, लम्बाग्र, चिकनी एवं चमकीली होती हैं। पुष्प-पीताभ, पत्रकोणीय एवं फल पकने पर रक्तवर्ण के होते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- इसका मूल सर्पविष में उपयोगी माना जाता है। मूल को पीस कर पानी में मिलाकर पिलाते हैं।

निम्बकुल - (MELIACEAE)

द्रव्य नाम :- संस्कृत - रोहीतक (प्रचलित)
स्थानिक - हारिनहरा, सिक्र,
लैटिन - Amoorarohituka W. of A.

स्वरूप :- इसके मध्यम ऊँचाई के हरित वृक्ष पाये जाते हैं। पर्ण-पक्षवत् एक फीट तक लम्बें, पत्रक-अखण्ड, चिकने तीक्ष्णाग्र होते हैं पुष्प- छोटे, श्वेतवर्ण के, फल-तीन खण्डों में विभक्त होते हैं। चम्पारण पुर्णियाँ, सिंगभूमि आदि स्थानों में इसके वृक्ष पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग छाल का उपयोग ग्राही के रूप में प्रयोग करते हैं। प्लीहोदर के रोगी का इसका क्वाथ पिलाते हैं। आमवात में बीज तैल की मालिश तथा पत्ती का लेप व्रणशोथ में करते हैं।

टिप्पणी :- शास्त्रकारो ने शास्त्रीय रोहीतक Tecomella undulata G. Don. को स्वीकार किया हैं। रोहीतक के गुणों में सारक मुख्य गुण है। जबकि उपरोक्त वर्णित प्रचलित रोहीतक में ग्राहीगुण है। शास्त्रीय रोहीतक के पत्र एवं पुष्प दाड़ीम पुष्प एवं सद्यश होने चाहिये। यह विशेषता Tecomella में हैं। नरहरी ने रोहीतक के दो किस्मों का उल्लेख किया है।

यथा – रोहीतकौ कटुस्निग्धौ, कषायों च सुशीतलौ।
क्रिकिदोष व्रण प्लीहा, रक्तनेत्रामया पहौ।। "नरहरि"

(अ) रोहीतक दाडिम पुष्प संज्ञकः, (ब) शुक्लरोहित सितपुष्पः।।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - निम्ब,
स्थानिक - नीम,
लैटिन - Azardirachta indica A. juss.

स्वरूप :- इसके मध्यम आकार के वृक्ष सर्वत्र पाये जाते हैं। पत्र-संयुक्त, एकान्तर, पष्प-गुच्छों में



श्वेताभवर्ण के, फल-एकबीज वाला तैल युक्त होता है। जिसे निमोली कहते हैं। पंचाग का चिकित्सा में प्रयोग किया जाता है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी नीम के पंचाग का प्रयोग मलेरिया, रक्तदोष फोड़े-फुन्सी, नेत्रविकार में प्रयोग करते हैं। तैल को कृमिघ्न, कुष्ठघ्न एवं व्रणशोधक के रूप में ग्रामीण उपयोग करते हैं। नीम तैल को योनि में लेप करने से गर्भधारण नहीं होता ऐसा इन लोगों का कहना है।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- रस-तिक्त, वीर्य-शीत, विपाक-कटु, गुण-कृमि नाशक, प्रमेह, कण्डू, त्वक्रणे आदि अनेकों रोगो में प्रयोग होता है।

योग :- पञ्चनिम्ब चूर्ण - (रक्तरोग), निम्बारिष्ठ- ज्वरों में।

गुण :- निम्बः तिक्तरसः शीता, लघुश्लेष्मास्त्र पित्तजित्।
कुष्ठ कण्डूव्रणान्हन्ति, लेपाहारादि शीतलः।। "ध.नि."

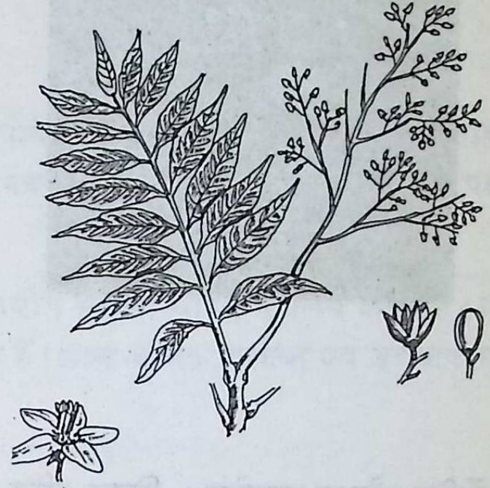


द्रव्य नाम :- प्रचलित नाम - प्रियंगु,
लैटिन - Aglaia Roxburghiana Miq.

स्वरूप :- मध्यम आकार के गुल्म कहीं-कहीं पाये जाते हैं। पत्तियाँ पक्षवत्, पत्रक - १.५ से ५ इंच तक लम्बे, अण्डाकार - प्रासवत्, चिकने होते हैं। पुष्प-ब्यास मे १ इंच लम्बे, पीताभ, मज्जरियों में, फल- गोल, निम्बफल सद्यश। कतिपय औषधि निर्माता इसके फलों का उपयोग प्रियंगु के नाम से करते हैं। शास्त्रीय प्रियंगु Callicarpa macrophylla Vahl. का प्रयोग अधिक व्यावहारिक है।

यथा – प्रियंगुः शीतला तिक्त, दाहपित्तास्त्र दोषजित्।
वान्ति भ्रान्ति ज्वराहरा, कक्त्रजाऽमविनाशिनी।। "रा.च."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - तून, तूणी,
स्थानिक - कटंराई, रोरोगं
लैटिन - Cedrela toona Roxb.



स्वरूप :- इसका मध्यम ऊँचाई का वृक्ष पाया जाता है। पर्ण-एक से दो फीट तक लम्बे, पत्रक जोड़े में प्रासवत् आयताकार, सवृन्त, पुष्प-छोटे टहनियों पर निकलते हैं। बीज-कृष्णाभ वर्ण के सद्यश होते हैं। इसक वृक्ष सभी वन्य क्षेत्रों में सर्वत्र मिलते हैं।

स्थानिक औषध उपयोग :- छाल ग्राही एवं ज्वरघ्न होती है। पुष्पों का क्वाथ गर्भाशय संकोचक के रूप में ग्रामीण उपयोग करते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- कटु, तिक्त, दाहशामक, कुष्ठ, कण्डुनाशक।

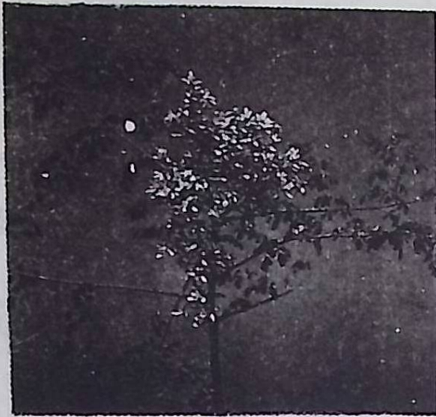
यथा – नन्दी वृक्षः कटुस्तिक्तः, पीतस्तिक्तास्त्रदाहजित्।
शिरोर्ति श्वेत कुष्ठघ्नः, सुगन्धि पुष्ठ वीर्यदः।। "रा.नि."

द्रव्य नाम :- स्थानिक - भरहुल, को. सेंगल-साली,
हिन्दी - मिर्र,
लैटिन - Chloroxylon Swietenia DC.

स्वरूप :- इसके छोटे मध्यम ऊँचाई के वृक्ष पाये जाते हैं। पर्ण-पक्षवत्, पत्रक-१० से २० जोड़े में, चिकने, ग्रन्थियुक्त और कुछ आयताकार होते हैं। पुष्प श्वेतवर्ण के एवं फल त्रिकोण होते हैं। इसके पत्र स्वरस एवं छाल के रस से शरीर पर छाले पड़ जाते हैं। कहीं-कहीं छोटानागपुर में इसके वृक्ष पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- छाल ग्राही एवं वेदना स्थापक मानी जाती है। आघातजन्य शोथ, पीड़ा, दाह आदि की शान्ति के लिये इसका लेप किया जाता है। संन्धिशोथ में भी छाल का लेप किया जाता है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - महानिम्ब, डेंक,



स्थानिक - वकाइन, डैंगण,
लैटिन - Melia azedarach Linn.

स्वरूप :- इसके मध्यम ऊँचाई के वृक्ष गाँवों एवं सड़कों के आस-पास सर्वत्र पाये जाते हैं। पर्ण-त्रिपक्षवत्, २ फीट तक लम्बे, पत्रक-प्रासवत्, लम्बाग्र आरावत् दन्तुर होते हैं। पुष्प-गुच्छों में बैंगनी रंग के सुगन्धित होते हैं। इसकी अन्य जाति भी कहीं-कहीं पाई जाती है जिसे M. Composita Willd कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण लोग छाल एवं फलों का उपयोग त्वचाविकार तथा कुष्ठरोगों मे करते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- तिक्त, शीत, कुष्ठघ्न, रकतविकारों में उपयोगी।

यथा – महोनिम्बों रसे तिक्तः शीत पित्त कफापहः।
कुष्ठरक्त विनाशी च, विषूचीहन्ति शीतलः।। "ध.नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - मांसरोहिणी,
स्थानिक - रोहिनी, रोहन, रक्तरोहन,
लैटिन - Soymida febrifuga A. Juss.

स्वरूप :- इसके मध्यम ऊँचाई के वृक्ष होते हैं। पर्ण-पक्षवत्, पत्रक- ३ से ६ जोड़े में, अवृन्त, आयताकार या अण्डाकार, चिकने एवं त्रिर्यग् आधार वाले होते हैं। काण्ड छाल रक्तवर्ण की होती हैं। पुष्प-श्वेतवर्ण के एवं मज्जरियों में खिलते हैं। इस क्षेत्र में कहीं-कहीं इसके वृक्ष पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग छाल का उपयोग आमातिसार एवं अतिसार में करते हैं। क्वाथ का उपयोग व्रणशोथ में किया जाता है।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- रस-कटु, तिक्त, ऊष्ण, कषाय, ग्राही, कृमिघ्न, वर्ण्य, रसायन, कण्ठशोधक, रोचक।

यथा – विकसा कटुका तिक्ता, तथोष्णां स्वरसादनुत्।
रसायनप्रयोगाच्च, सर्वरोग हरामता।।
कषायाग्राहीप्णी वर्ण्याः, रक्तपित्तप्रसाधनी।। "ध.नि."

विशेष :- निघण्टुकार ने रोहिणी युगलं इस प्रकार दो प्रकार के द्रव्यों का उल्लेख किया जाता है। मांसरोहिणी एवं अन्या मांसी, मांसरूहा के नाम से।

यथा – रोहिणी युगलं शीतं, कषायं कृमिनाशम्।। "रा.नि."

द्रव्य नाम :- स्थानिक - सिलाई, वकम,
लैटिन - Walsura piscida Roxb.

स्वरूप :- इसके गुल्म छोटे आकार के वृक्ष इस क्षेत्र में पाये जाते हैं। पत्रक-तीन-तीन, आयताकार, लट्वाकार एवं चमकीले होते हैं। पुष्प-श्वेत एवं पीताभवर्ण के पाये जाते हैं। सिंगभूमि एवं पलामू क्षेत्र में इसके गुल्म पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग छाल चूर्ण का उपयोग मछली मारने के लिये करते हैं। काष्ठ तैल का उपयोग खुजली एवं त्वचा के विकारों में करते हैं। छाल-वामक, कफघ्न एवं उत्तेजक मानी जाती है।

बब्बूलकुल - MIMOSACEAE

द्रव्यनाम - संस्कृत - खदिर,
स्थानिक - खैर,
लैटिन - Acacia catechu willd.



स्वरूप :- इसके कण्टकित् मध्यम आकार के वृक्ष होते हैं। शाखायें पतली कांटे टेढे तथा उप पत्रों के रूपान्तर होते हैं। पत्रक १० से २० जोड़े में अवृन्त, पुष्प छोटे, श्वेताभ, लम्बी मञ्जरियों में खिलते हैं। फली-पतली-चपटी ४ से ६ बीजों वाली होती हैं। इसके वृक्ष इस क्षेत्र में सर्वत्र पाये जाते हैं। छाल का उपयोग चमड़ा रंगने के काम में करते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण लोग इसके काष्ठसार से क्वाथ बनाते हैं। खदिर सार का उपयोग कण्डू, खूजली आदि रागों में करते हैं। वृक्षों के काष्ठ के अन्दर दरारों में एक रवेदार कृष्णाभ पदार्थ पाया जाता है जिसे खदिर सार कहते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- रस -तिक्त, कषाय, वीर्य-शीत, विपाक-कटु, ग्राही, पित्त-कफशामक, कुष्ठ, मुखरोग, त्वचारोग, प्रमेह, विसर्प, शोथ अतिसार में उपयोगी।

योग :- खदिरारिष्ठ (प्रमेह, रक्तविकार), खदिरादिवटी (कास)।

यथा – खदिरः स्यात् रसे तिक्तो, हिमपित्त् कफास्त्रनुत्।
कुष्ठामकास कण्डूति कृमिदोष हरस्मृतः।।
खदिरः कृमिकुष्टघ्नः कफरेतो विशोषणः।। "ध.नि."

टिप्पणी :- धन्वन्तरि निघण्टुकार ने सोमवल्क (खदिर विशेष) से अन्य प्रकार भेद का उल्लेख किया है। इसे कुब्जकण्टक भी कहा गया है। सम्भवतः यह प्रकार संहिताओं में वर्णित कदर (श्वेत खदिर) है। इसे सोमवल्क भी कहा गया है। बनस्पति शास्त्र में इसे Acacia sum Harn. कहते हैं। उड़ीसा में इसे खैर कहते हैं। इसकी एक अन्य जाति भी पाई जाती है। जिसे Acacia ferruginea DC गुआ-बबूल कहते हैं। इसे कुछ लोग विट्खदिर एवं इरिमेद मानते हैं। संथाली इसे मबूर कहते हैं।

यथा – खदिरः श्वेतसारोंअन्यः कार्मुक कुब्जकण्टकः।
श्वेतस्तु खदिर तिक्तः शीतपित्तकफापहः।।
रक्तदोष हरश्चैव कण्डू कुष्ठविनाशनः।। "ध.नि."



द्रव्य नाम :- संस्कृत - बब्बूल,
स्थानिक - की कर,
लैटिन -Acacia arbica willd.

स्वरूप :- इसके कण्टकित गुल्म होते हैं। छोटानागपुर एवं संथालपरगना क्षेत्र में बहुतायद मात्रा में पाये जाते है। आदिवासी एवं ग्रमीण लोग छाल, बीज तथा गोंद का चिकित्सा में उपयोग करते हैं। छाल का उपयोग चमड़े के रंगने में करते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- रस-कषाय, वीर्य-शीत, विपाक-कटु, कफ-पित्तशामक, कुष्ठ, कास, रक्तातिसार, मूत्रकृच्छ्र, कृमि, अर्तवविकार में उपयोगी।

यथा – बब्बूल स्तूवरः शीतो, रूक्षः पित्त कफापहः।
स्तम्भनस्तु विशेषेणः, कास कुष्ठातिसारनुत्।। "प्रिय.नि."

टिप्पणी :- इसके अतिरिक्त निम्न जातियाँ इस कुल की इस क्षेत्र में पाई जाती हैं। जिनका चिकित्सा में उपयोग किया जाता है।

१. रेमजा, रेंवा - Acacia leucophlea Willd. २. अरार - A. pennata Willd.
३. शिकाकाई - A. concinna D C.

सिकाकाई के पत्ती एवं फली का चिकित्सा में उपयोग बालों को धोने के रूप में किया जाता है। फली में सेपोनीन पाया जाता है। फली - वामक, कफघ्न एवं विरेचक मानी जाती है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - शिरीषः
स्थानिक - सिरस,
लैटिन - Albizzia lebbec Benth.



स्वरूप :- इसके मध्यम आकार के वृक्ष होते हैं। इसके वृक्ष सर्वत्र इन क्षेत्रों में पाये जाते हैं। छाल एवं बीजों का उपयोग आदिवासी लोग घरेलू चिकित्सा में करते हैं। छाल क्वाथ का उपयोग करौंदा के जड़ के क्वाथ के साथ मवेशियों में होने वाले खुरपका रोग में करते हैं। छाल के क्वाथ से कुल्ला करने से दांत मजबूत होते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- रस-मधुर, तिक्त, कषाय, वीर्य-अनुष्ण, विपाक-कटु, ग्राही, स्तम्भक, त्वचारोग, दद्रु, शोथ एवं विषघ्न है। बीजों का उपयोग वीर्य दौर्वल्यता में किया जाता है। शुक्रस्तभन के लिये पुष्पों का प्रयोग किया जाता है।

योग :- दंशागलेप (शोथ में वाह्यलेप)।

महाकवि कालिदास ने शिरीष पुष्प का उल्लेख कामिनियों के कर्ण आभूषण के प्रसंग में किया है।

यथा - च्यूते न कर्णादपि कामनीनां शिरीषपुष्पं सहसा पपात।। "रधु.स.१६—

अति प्रचीन काल के शिरीष पवित्र प्रियदर्शन, व्यवहारोपयोगी छायादार वृक्ष के रूप में जाना जाता है। ग्रीष्मत्रृतु की समृद्धियों में ऊष्ण के सन्तापजनक वातावरण में मधुर सुरभि सम्पन्न पुष्पित छायावृक्ष को कवियों ने बहुत महत्व दिया है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - किणिही, (कटभी),
स्थानिक - किनई, सफेद सिरीस,
लैटिन - Albizzia proceara Benth.

स्वरूप :- इसके मध्यम आकार के वृक्ष इस क्षेत्र में पाये जाते हैं। आदिवासी लोग इसे किनई (सफेद सिरीष) कहते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य जाति भी इस क्षेत्र में पाई जाती हैं। जिसे कटभी A.procera कहते हैं।

विशेष :- लेखक के विचार से संहिताग्रन्थों में वर्णित कटभी, किणही, अपामार्ग, एवं गिरिकार्णिका का पर्यायवाची न होकर भिन्न द्रव्य है। जो कि शिरीष की जातियों में से है। अतः किणही एवं कटभी A. procera हैं। कतिपय ग्रन्थकारों ने इसे कृष्णसिरीष भी कहा है। वाल्मीकीय रामायण में शिरीष का वर्णन किष्कन्धा के पंपासार वन के प्रसंग में मिलता है। महाकवि कालिदास ने अपने काव्यों में शिरीष का उल्लेख पुष्पों को सुन्दरियों के कानों के कुण्डलों के रूप में उपयोग हेतु वर्णित किया है।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - गिलगांछ, कांडरजांघ,
कोल - कारी,
संथाली - गिला, गिलो,
लैटिन - Entada scandens Benth.

स्वरूप :- इसकी विस्तृत आरोही लता होती है। पत्र द्विपक्षवत् पत्रक-अण्डाकार, लट्वाकार, नताग्र एवं २ से ३ इंच लम्बा होता है। पुष्प-अवृन्त, काण्डज, हरित या मलाईरंग के, मन्जरियों में, फली-प्रायः २ फीट तक लम्बी, बीज-चपटे, गोल एवं चिकने होते हैं। यह लता नमी वाले स्थानों में पलामू, सिंगभूमि आदि स्थानों में पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग बीजों का उपयोग शोथ, ग्रन्थिशोथ एवं कण्ठमाला में वाह्य प्रयोग के रूप में लेप करते हैं। इसके अतिरिक्त इसे पौष्ठिक, ज्वरहर, शोथघ्न एवं व्रणरोपक मानते हैं। बड़ी मात्रा में प्रयोग करने पर वामक है। काष्ठ त्वग्दोषहर माना गया है।

यथा – कारी कषाय मधुरा, द्विविधा पित्त नाशिनी।
दीपनी ग्राहिणी रूच्या, कण्ठशोध करी गुरूः।। "रा.नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - लज्जालु,
स्थानिक - लाजवती, लाजवन्ती,
लैटिन - Mimosa pudica Linn.

स्वरूप :- इसके मृदुकांटेदार प्रसरि गुल्म होते हैं। पर्ण-लम्बे वृन्त वाले पत्रक दण्ड २ इंच तक लम्बे, रेखाकार एवं छूने पर सिकुड़ जाते हैं। इसी कारण लाजवन्ती कहते हैं। पुष्प-पत्रकोणीय, गुलावी रंग के मुण्डक में खिलते हैं। इस क्षेत्र के आद्र भागों में सर्वत्र इसके परिसृत गुल्म पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- इसके पंचाग क्वाथ का प्रयोग आदिवासी बवासीर (अर्श) में करते हैं। रक्त तथा पित्त के रोगों में संग्राहक के रूप में प्रयोग करते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- कषाय, शीत, स्तम्भन एवं कफ पित्त शामक यह रक्तपित्त, अतिसार एवं प्रदर में उपयोगी है।

यथा – लज्जालु स्तुवराशीता, स्तम्भनी कफ पित्तजित्।
रक्तपित्तमतीसार, प्रदरं च विनाशयेत्।। "प्रि.नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत -शमी
स्थानिक :- खेजड़ी,
लैटिन :- Prosopis spicigra Linn.

स्वरूप :- इसके मध्यम ऊँचाई वाले कांटेदार वृक्ष होते हैं। कांटे चपटे एवं सीधे होते हैं। पर्ण-द्विपक्षवत् प्रायः दो जोड़े, आमने-सामने, पत्रक ८ से १२ जोड़ो में अवृन्त तिर्यग्, आयताकार, एवं चिकने होते हैं। पुष्प-छोटे अवृन्त, काण्डज, पीताभ तथा मञ्जरियों में निकले रहते हैं। फली ५ से १० इंच लम्बी एवं बीच-बीच में संकुचित होती है। इस क्षेत्र में कहीं-कहीं इसके बृक्ष पाये जाते हैं।



स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग काष्ठ का उपयोग घरेलू सांस्कृतिक कार्यक्रमों में उपयोग करते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- रूक्ष, कषाय, गुरू, मधुर, उष्ण, अतिसार एवं रक्तपित्तनाशक, केशनाशक।

यथा – शमीरूक्षा कषाया चा, रक्तपित्तातिसारजित्।
तत्फलं तु गुरूस्वादुः तिक्तोष्णं केशनाशनम्।। "रा.नि."

विशेष :- राज निघण्टुकार ने दो प्रकार के शमी वृक्षों का उल्लेख किया है एवं दोनों के समान गुणों का निर्देश किया है। वाल्मीकीय रामायण में अरण्यकाण्ड के पंचवटी के प्रसंग में शमी का उल्लेख आया है। शमी वृक्ष का उल्लेख वैदिक साहित्य में मिलता है। यज्ञ की अग्नि प्रज्वलित करने के लिये शमी काष्ठ का उल्लेख है। इस वृक्ष की मान्यता पुजित वृक्षों में से है। इसे प्रायः मरूस्थली वृक्ष माना जाता है। कवियों ने अग्निगर्भा माना है। इसी प्रकार शकुन्तला एवं द्रोपदी के उपमा शमी वृक्ष की भाँति अन्तर्निहित क्रो धाग्नि से है।

शिग्रुकुल - MORINGACEAE

द्रव्य नाम - संस्कृत - शोभाञ्जन, शिग्रु,
स्थानिक - संहिजन, को. मुनगा,
लैटिन - moringa pterygosperma Gaertn.



स्वरूप :- इसके वृक्ष छोटे और नरम काण्ड के होते हैं। छाल मोटी एवं कार्कयुक्त होती है। पत्तियाँ त्रिपक्षवत् एवं लम्बी होती हैं। फल-फलीसद्यश, त्रिकोण, बड़ी-बड़ी रेखाओं से युक्त एवं बीज श्वेतवर्ण के होते हैं। कड़वा और मीठा दो प्रकार का संहिजना इस क्षेत्र में गांवों के समीप पाया जाता है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग पुष्प एवं फली का उपयोग शाक्रों में करते हैं। पत्र एवं छाल का उपयोग चिकित्सा में करते हैं। विशेषकर कृमि वृकविकार एवं उदरविकारों में क्वाथ का सेवन करते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- रस-मधुर, कटु, वीर्य-ऊष्ण, विपाक-कटु, गुण-पाचन, तीक्ष्ण, अनुलोमक, सर, कफ-वातशामक, कृमि, अपची विद्रधी गुल्म एवं महास्त्रोतस् के रोगों में उपयोगी है। आधुनिक खोजों के आधार पर संहिजना का प्रभाव अर्वुद (कैन्सर) में उपयोगी माना गया है।

यथा – शिग्रुस्तिक्तः कटुश्चोष्णः कफ शोफ समीरजित्।
कृम्याम विषमेदोघ्नों, विद्रधि प्लीह गुल्मनुत्।। "रा.नि."

वक्तब्य :- राजनिघण्टुकार ने श्वेतशिग्रु एवं रक्ताशिग्रु दो किस्मों का उल्लेख किया है। श्वेत संहिजना को मीठा संहजना भी कहा है। लाल संहिजना का मुखजाड्यहर गुण विशेष का निर्देश किया है।

वटकुल - MORACEAE

द्रव्य नाम :- संस्कृत - उदुम्बर,
स्थानिक - गूलर,
लैटिन - Ficus racemosa Linn.

स्वरूप :- इसके मध्यम ऊँचाई के वृक्ष होते हैं। काण्ड दुग्धमय, पत्र-एकान्तर मसृण, आयताकार, पुष्प-अञ्जीर सद्यश फीके हरे पकने पर लाल रंग के होते हैं। इस क्षेत्र में नदी-नालों के किनारे सर्वत्र इसके वृक्ष पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग पके फलों का उपयोग प्रदर रोग में एवं कच्चे फलों का शाक के रूप में प्रयोग करते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- कषाय, मधुर, वीर्य-शीत, विपाक-मधुर, गुण-त्वक्-ग्राही, फल-शीतल, पित्त-कफशामक, वर्ण्य, प्रमेह, रक्तपित्त, योनिरोग, प्रदर, भग्नसंधानकर एवं वृक विकारों में उपयोगी, पंचक्षीरी वृक्षों में उदुम्बर का उल्लेख है।

योग :- उदुम्बरसार- व्रण एवं योनिप्रक्षालन में उपयोग मधुमेह में फल या मूल स्वरस का उपयोग लाभ करता है। छाल रक्तसंग्राहक एवं शोथघ्न मानी जाती है।

यथा – उदुम्बरं कषायं स्यात्, पक्वं तु मधुरं हिमम्
कृमिकृत् पित्तरक्तघ्नं, मूर्च्छादाहतृषापहम्।। "ध.नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - अश्वत्थ,
स्थानिक - पीपल,
लैटिन - Ficus religiosa Linn.



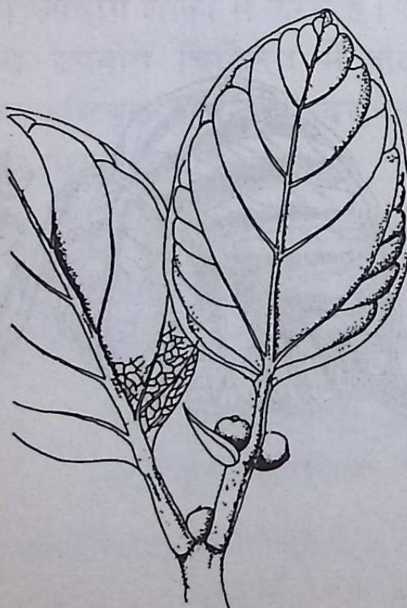
स्वरूप :- इसका मध्यम आकार का वृक्ष होता है। तना-गोल, सीधा पर्ण-सवृन्त, एकान्तर, उपपत्रयुक्त, पुष्प छोटे-रक्ताभ-पीत, इस क्षेत्र में गांवों एवं सड़कों के आस-पास इसके वृक्ष लगाये हुये पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवसी लोग पके हुये फलों को खाते हैं। छाल का उपयोग योनिरोग, कास-श्वास, प्रमेह में करते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- यह पञ्चक्षीरी वृक्षों में से है। मूल, त्वक, फल दूध एवं कोंपलों का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है। रस-कषाय, वीर्यशीत, विपाक-कटु, गुण-रूक्ष, कटु, मूत्रसंग्रहणीय, यानिरोग, रक्तविकार कण्डु, श्वास-कास, त्वक्रोग, दन्तरोग, प्रमेह एवं प्रजनन सम्बन्धी रोगों में उपयोग है। इसकी छाल की राख पानी में डालकर ऊपर का जल पिलाने से हिक्का एवं वमन में लाभ होता है। वाजीकरण के लिये इसके फल-मूल, छाल एवं कोपल को दूध में पका कर मधु एवं शर्करा में पिलाने से लाभ होता है।

यथा – पिप्पलः समधुरः कषायः शीतलश्च, कफपित्त विनाशिनी।
रक्तदाहशमनः सहिसद्योः योनिदोषहरणः किलपक्कः।।
अश्वत्थ वृक्षस्य फलानि पक्कान्यतीव हृद्यानि च शीतलानि।
कुर्बन्त पित्तास्त्र विषार्तिदाहं, विच्छर्दि शोषारूचिरोगनाशनम्।। "रा.नि."

विशेष :- राज निघण्टुकार ने पीपल की दो जातियों का उल्लेख किया है। छोटी पत्र वाली जाति को अश्वत्थी कहा है। यह वन्य जाति विशेष है। सम्भवतः यह Ficus arnttiana हो सकती है। कुछ लोग इसे पारस पीपल कहते है। Ficus rumphii भी पीपल की पत्तियों से मिलती है। वाल्मीकीय रामायण में पीपल का उल्लेख आयोध्याकाण्ड के भारद्वाज आश्रम में एवं अरण्य काण्ड के पंपासर के पास के प्रसंग में उल्लेख मिलता है। पीपल की गणना धार्मिक वृक्षों में की जाती है। इसकी पूजा का विधान पौराणिक ग्रन्थों एवं जलाशयों के समीप विशेष रूप से किया जाता है। धार्मिक मान्यता के आधार पर पीपल वृक्ष का काटना या लकड़ी जलाना पाप माना जाता है। पर्यावरण प्रदूषण की रोकथाम में पीपल विषेश उपयोगी है।



द्रव्य नाम :- संस्कृत - बड़,
स्थानिक - बड़, बरगद,
लैटिन - Ficus bengalensis Linn.

स्परूप :- इसके विशाल वृक्ष पाये जाते हैं। मूल स्तम्भ १०० हाथ से घेराव तक फेला होता है। पत्र-गोल, आयताकार, फल-रक्तवर्ण के होते हैं। काण्ड से प्ररोह निकलते हैं। जिसको वट जटा कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- इसके दुग्ध का उपयोग बाजीकरण हेतु ग्रामीण लोग प्रयोग करते हैं। नवीन कोपलों का उपयोग अतिसार में करते

हैं। छाल का उपयोग व्रण धोने में करते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- रस-कषाय, मधुर, वीर्य-विपाक-मधुर, वर्णरोपक, पौष्ठिक, कामोददीपक, यानिरोग, विसर्प, व्रण, मधुमेह, मूत्रकृच्छ्र, उपदंश एवं प्रजनन सम्बन्धी रोगों में उपयोगी। बटजटा का सोजाक में वाह्य लेप करते हैं। इसके छाल का क्वाथ बहुमूत्र में तथा फलचूर्ण का प्रयोग मधुमेह में करते हैं।

यथा – वटः शीत कषायश्च, स्तम्भनों रूक्षणात्मकः।
तथा तृष्णाच्छर्दि, मूर्च्छा रक्तपित्त विनाशनः।। "ध.नि."

विशेष :- वट (वरगद) से भिन्न नदी वट का भी उल्लेख है। सम्भवतः यह भी वट पत्र सद्यश की जाति में है। वाल्मीकीय रामायण के अरण्य काण्ड के पंपासर के पास के प्रसंग में वट वृक्ष का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त इस जाति में निम्न वृक्ष इस क्षेत्र में पाये जाते हैं।

(१) नन्दी वृक्ष (चुमनहेसा) Ficus retusa., (२) काकोदुम्बर (कठूमर) Ficus his pida Linn., इसके वृक्ष नदी नालों के किनारे पाये जाते हैं। (३) प्लक्ष पाकर Ficus infcetoria Roxb. आदि जातियाँ औषध उपयोग की हैं। पंचक्षीरी वृक्ष में इनका उपयोग किया जाता है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत, तूत, तूद,
स्थानिक - शहतूद,
लैटिन - Morus indica Linn.

स्वरूप :- इसके मध्यम आकार के गुल्मनुमा वृक्ष होते हैं। इसकी दो जातियाँ वन्य एवं ग्राम्य भेद से होती हैं। दूसरी जाति को Morus laevigata Wall. कहते हैं। रेशम के कीड़ों को पालने के लिये इसके वृक्षों का रोपण किया जाता है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग पके फलों को खाते हैं। पतली टहनी का उपयोग टोकरियाँ बनाने के लिये करते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- **तूलस्य फलं स्वादुः बलवर्णाग्निवृद्धिकृत्।**
तूलंतु मधुराम्लं स्यात्, वातपित्तहरंपरम्।।
दाह प्रशमनं वृष्यं, कषायं कफनाशनम्।। "रा.नि."

इसका फल, मधुर, कषाय, कफनाशक, दाहनाशक, वातपित्तहर माना गया है।

विशेष :- राजनिघण्टुकारों ने तूत का एक अन्य भेद क्रमुक माना है। अतः क्रमुक नामक वनस्पति पूग (सुपारी) से भिन्न द्रव्य है।

यथा :- "क्रमुकं विप्रकाष्ठं च, मृदुसारं द्विभूमिजम्"

चरक ने त्वगासव योनिवृक्षों में क्रमुक भी उल्लेख किया है। अतः क्रमुक का पूग न मानकर तूद का भेद मानना चाहिये। तूद की छाल में भी रेचन गुण पाया जाता है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - शाखोटक,
स्थानिक - सिहोरा, सिहोर,
लैटिन - Strebulus asper Lour.

स्वरूप :- इसके गुल्मनुमा मध्यम आकार के वृक्ष होते हैं। पत्तियाँ कर्कश शाखायें मजबूत होती हैं। पुष्प-पीताभ वर्ण को होते हैं। फल पकने पर पीत वर्ण के होते हैं। इस क्षेत्र में कहीं-कहीं इसके गुल्म पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- स्थानिक लोग छाल क्वाथ का प्रयोग हाथीपॉव (श्लीष्पद) में पिलाते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- तिक्त, ऊष्ण, वातनाशक एवं ज्वरघ्न है। शास्त्रकारों ने इसे पीतफल, क्षीरनाश कहा है।

कौशिक्यो अजाक्षीरनाशश्च, सूक्तास्तिक्तोष्णोंअयं पित्तकृत् वातहारि। "रा.नि."

जम्बुकुल (MYRACEAE)



द्रव्य नाम :- संस्कृत - जम्बु,
स्थानिक - जामुन,
लैटिन :- Syzygium cumini Skeels. = (Eugenia Jambolana).

स्वरूप :- इसके मध्यम आकार के वृक्ष पाये जाते हैं। जंगली वृक्ष प्रायः नदी-नालो के किनारे अधिक पाये जाते हैं। इसमें जंगली जाति पाई जाती है जिसे Eugenia operculata टोपा-कुड़ा कहते हैं। इसके वृक्ष छोटे पत्ती प्रायः चौड़ाई लिये हुई अण्डाकार या अभिलट्वाकार तथा पुष्प श्वेत वर्ण के होते हैं। सिंहभूमि, हजारीबाग, रांची आदि स्थानों में नालों के

किनारे इसके वृक्ष पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- पके फलों को खाया जाता है। ग्रामीण लोग सिरका बनाते हैं। टोपाकुड़ा का उपयोग संधिशोथ में किया जाता है। मूल का धनक्वाथ संधियों पर लगाया जाता है। फल का उपयोग सन्धिशोथ में किया जाता है। इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र में जम्बु की प्रजाति में Eugenia caryo-phyllifolia भी पाया जाता है जिसे बुरू-कुड़ा या बीर-कोड़ कहते हैं। इसके पत्तों का रस अतिसार में प्रयोग करते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- रस-कषाय, मधुर, वीर्य-ऊष्ण, विपाक-कटु, गुण-ग्राही, स्तम्भक, कफ-पित्तशामक, अतिसार, बहुमूत्र, यकृत रोग, अमाशय रोग, मधुमेह, संग्रहणी एवं आन्त्र रोगों में उपयोग। बीज चूर्ण का उपयोग २-३ माशा जल के साथ दिन में दो बार मधुमेह में प्रयोग करने से लाभ होता है। इसका सिरका तथा आसव दीपन-पाचन होता है।

यथा – जम्बूः कषाय मधुरा, श्रम पित्तदाह,
कोष्ठार्तिशोथशमनी कृमिदोषहन्त्री।
श्वासातिसार कफकास विनाशिनी च,
विष्ठम्भिनी भवन्ति रोचक पाचिनी।। "रा.नि."

विशेष :- निघण्टुकार ने महाजम्बु, काकजम्बु, एवं भूमि-जम्बू (ह्रस्वफला) भेद से तीन प्रकारों का उल्लेख किया है। काकजम्बु कषाय, मधुर, दाह अतिसार नाशक एवं पुष्ठि वलप्रद माना गया है। काकजम्बु-नदी जम्बु प्रकार विशेष है। भूमिजम्बु-जंगली प्रकार भेद है जिसका फल छोटा एवं कठोर होता है। अतः आदिवासी क्षेत्रों में मिलने वाले जामुन की प्रजातियो में तीनों किस्में हैं।

टिप्पणी :- इस कुल के अन्य उपयोगी पोधे इस क्षेत्र मे स्वयंजात या लगाये हुये पाये जाते हैं। यथा - (१) अमरूद - pasidium guava L., (२) विलायती मेहन्दी - Myrtus communis L., (३) नीलगिरी - Eucalypus की कई जातियाँ लगाई हुई पाई जाती है।

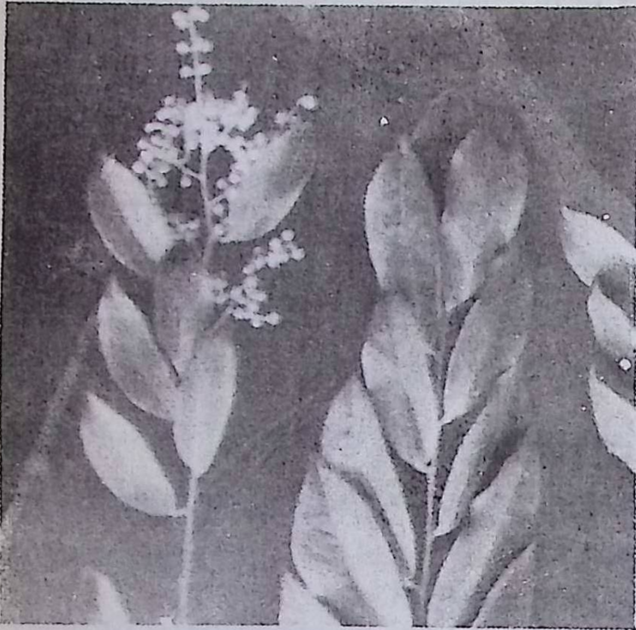
विडंगकुल - (MYRSINACEAE)

द्रव्य नाम :- स्थानिक - रकतफार,
लैटिन - Ardisia solanacea Roxb.

स्वरूप :- मध्यम आकार का गुल्म जातीय वनस्पति है। काण्ड मृदु बहुशाखीय पुष्प-छोटे पत्र-कोणीय पाये जाते हैं। इसके गुल्म छोटानागपुर एवं संथालपरगना में कहीं-कहीं पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- गुम चोट एवं शोथ में छाल का उपयोग प्लास्तर के रूप में सूजन कम करने के लिये करते हैं। मूल का उपयोग आमवातनाशक एवं ज्वरघ्न के रूप में किया जाता है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - विडंगभेद, (अकचूर),
कोल - माटा,
संथाली - भाबरी,
लैटिन - Embelia robusta Roxb.



स्वरूप :- इसका गुल्म नुमा मध्यम आकार का वृक्ष होता है। शाखायें हलकी धूसर रंग की, पत्तियाँ-अण्डाकार, अभिलट्वाकार, पुष्प-एकलिंगि, हरिताभ एवं मञ्जरियों में खिलते हैं। फल-गोल ललाई रंग के लिये होते हैं। छोटानागपुर एवं संथालपरगना में इसके वृक्ष सर्वत्र पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- पके फल खाने में खट्टे-मिठ्ठे होते हैं। शास्त्रीय विडंग Embelia ribes हैं। बाजार में इसके स्थान पर उपरोक्त जाति के बीजों का प्रयोग उदरकृमि के लिये किया जाता है।

आयुर्वेदीय उपयोग :- रस-कटु, वीर्य-ऊष्ण, विपाक-कटु, गुण-लघु, दीपन, अनुलोमन, वातकफशामक, उदरकृमि, अग्निमांद्य एवं त्वचा के रोगों में उपयोगी।

योग :- विडंगारिष्ठ, विडंगावलेह।

यथा - रूक्षोष्णं कटुकंपाके, लघुवात कफापहम्।
ईषत्तिक्तं विषान्हन्ति, विडंगकृमिनाशनम्।। "ध.नि."

कदलीकुल - (MUSACEAE)

द्रव्य नाम :- संस्कृत - कदली,
स्थानिक - केला,
लैटिन - Musa sapientum Linn.

स्वरूप :- इसके बहुवर्षायु कन्द सद्यश एवं मसृण काण्ड वाले गुल्म पाये जाते हैं। पत्र काफी लम्बे सवृन्त, पुष्प मञ्जरियों में एवं फल एक साथ ४० से ५० तक की संख्या में गुच्छों में निकलते हैं। संथालपरगना एवं छोटानागपुर में इसकी खेती की जाती है। इसकी अन्य जाति की खेती इस क्षेत्र

में की जाती है जिसे Musa paradisica L. कहते हैं।



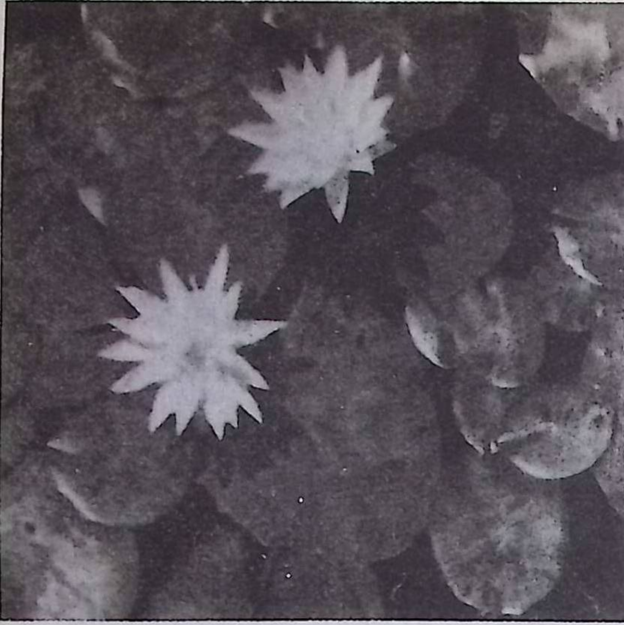
स्थानिक प्रयोग :- कच्चे पुष्प एवं फलों की शब्जी बनाकर खाते हैं। पके फल स्वादिष्ठ, बल्य, एवं मधुर होते हैं। ग्रामीण पुष्प एवं मूलस्वरस का उपयोग रक्तप्रदर में करते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- मधुर, शीतल, कषाय, मृदु, पित्तहर, कफकर, रक्तपित्तहर, बृष्य, कन्द-वात्तल,

यथा :- रूक्ष, शीतल, कृमि कुष्ठनाशक।
कदली मधुरा शीता, रम्यापित्तहरा मृदुः।
कदल्यास्तु फलंस्वादुः, कषायंनातिशीतलम्।।
रक्तपित्तहरं वृष्यं, रूच्यंकफकरं गुरूः।
कन्दस्तु वातलोरूक्षः शीतोडसृंक् कृमिकुष्ठनुत्।। "ध.नि."

विशेष :- निघण्टुकारों ने काष्ठकदली, गिरिकदली, सुवर्णकदली, अमृतकदली आदि भेद से चार अन्य जातियों का उल्लेख किया है। गिरिकदली को बहुबीजा कहा गया है जोकि हाथियों के लिये हितकर बताया गया है। सुवर्णकदली पीतवर्ण की विशेष रूप से मधुर, दीपन, बृष्य एवं दाहनाशक मानी गई है। बिहार एवं बंगाल में कई किस्मों के कदली की खेती की जाती है। बाल्मिकीय रामायण में कदली का उल्लेख अयोध्याकाण्ड में कदली का उल्लेख कौशल्या की कटी से समानता के प्रंसग में, अरण्यकाण्ड के लंका के तट पर, पंचवटी के पास ऋष्यमूक पर्वत पर, एवं लंका के अशोकवन में कदली का उल्लेख आया है। धार्मिक पूजाउत्सवों में कदली का विशेष महत्व है। महाकवि कालिदास ने अपने काव्यों में कदली का उल्लेख पार्वती के उरूओ की उपमा कदली के खम्मों से भी बढ़कर सुन्दर और शीतल बतलाया है। संस्कृत साहित्य में रम्मा, सुफला, सुकुमारा, गुच्छाफला, बालकप्रिया, उरूस्तम्भा आदि कतिपय नामों से कदली का वर्णन मिलता है। हिन्दुसंस्कृति में पञ्चपल्लव वृक्षों में कदली का भी उल्लेख है।

कमलकुल (NYMPHAECEAE)



द्रव्य नाम :- संस्कृत - कुमुद,
स्थानिक - कोंई
लैटिन - Nymphaea alba Linn.

स्वरूप :- कमल की तीन जातियाँ पाई जाती हैं जो कि तालाबों और पानी या कीचड़ के साथ पैदा होती है। इन जातियों की पहिचान निम्न आधार पर की जाती है।

(१) कुमुद N. lotus इसके पत्रतट लहरदार और तीक्ष्ण, दन्तुर, परागकोश बिना वाह्यवृद्धि के, पत्रतट-अत्यन्तलहरदार, दन्तुर एवं अखंण्ड होते हैं। पुष्प-श्वेत एवं रक्तवर्ण के होते हैं। N. lotus के दो उपभेद होते हैं। जिसे Var-lotusproper कहते हैं। इसमें पुष्प श्वेत एवं गुलाबी होते हैं। और दूसरे में Var-rubra कहते हैं। इसके पुष्प गहरे लालवर्ण के होते हैं। इसी तरह Nymphaea stellata willd. में तीन उपभेद पाये जाते हैं। (क) Var-Stellata proper कहते हैं। इसके पुष्प गहरे नील वर्ण के होते हैं।

(२) Var-versicolor कहते हैं। इसके पुष्प श्वेत एवं गुलाबी होते हैं। (ग) Var. major के पुष्प नीले वर्ण के होते हैं।



द्रव्य नाम :- संस्कृत - कमल, पद्म,
स्थानिक - नीलकमल,
लैटिन - Nelumbo nucifera Gaertn.

स्वरूप :- इस जाति में स्त्रीकेशर अलग-अलग होते हैं। पुष्पनाल प्रायः पानी के ऊपर निकले रहते हैं। कुमुद में नाल प्रायः पानी की सतह तक रहता है। कमल के लिये पंकज, अरविन्द, कोकनद, नलिन, पुष्कर, पुण्डरीक, शतपत्र, वारिज, सरोज, श्वेतपत्र आदि नामों का उल्लेख आयुर्वेद में मिलता है। पुष्प वर्ण के आधार पर इसके भेदोपभेदों का उल्लेख है।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीणलोग मूल एवं बीजों

का उपयोग बल्य के रूप में करते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- रस-मधुर, वीर्य-शीत, विपाक-मधुर, बीज-पौष्ठिक, गर्भस्थापक, कफपित्तहर, मूत्रकृच्छ्र, वमन, विसर्प, पित्तविकार एवं अतिसार में उपयोगी है।

योग :- उत्पलादिघृत (गर्भपात) में।

यथा – कुमुदं शीतलं स्वादु, पाके तिक्तं कफापहम्।
रक्तदोषहरं दाहश्रम, पित्त प्रशान्तिकृत्।।
उत्पलं हिमातिक्त, रक्तामयहारिणीचपित्तघ्नी।
ताप कफकास तृष्णाश्रम, वमिशमनी च विज्ञे या।। "रा.नि."

निघण्टुकारों ने पद्म, पद्मबीज, बिस (मृणाल) पद्ममूल एवं पद्मकेशर, कोकनद के गुणधर्मों का विशद वर्णन किया है।

संस्कृत साहित्य में कमल :- बाल्मिकीय रामायण, महाभारत, पौराणिक ग्रन्थों एवं महाकवि कालिदास के काव्यों में कमल, कुमुद का विस्तृत उल्लेख सौन्दर्य, कोमलता, पवित्रता, मादकता, दिव्यता एवं पूजा के रूप में मिलता है। लक्ष्मी जी का प्रिय पुष्प कमल माना गया है। भारतीय वांङ्मय में भी कमल-पुण्डरीक, उत्पल, अरविन्द, पुष्कर, सौगन्धिक, पदम आदि पर्यायों से वर्णित है। लक्ष्मी के हाथ में कमलपुष्प लिये क्षीर सागर से प्रकट हुई है ऐसा उल्लेख विष्णु पुराण में है। श्री मद्भागवत में ऐसा प्रसंग आया है कि लक्ष्मी जी ने भगवान के गले में वह नवीन कमलों की सुन्दर माला पहना दी जिसके चारों ओर मतवाले मधुकर गूंज रहे हैं। अथर्ववेद में भी वृक्षारोपण के साथ पुष्करणी का विधान का उल्लेख है। भगवान् विष्णु व लक्ष्मी का प्रिय पुष्प रहने का सौभाग्य कमल को प्राप्त हुआ है। परन्तु वाग्देवी सरस्वती का प्रिय भी श्वेतकमल रहा है विष्णु भगवान को पदमनाभ भी कहते हैं। अर्थात जिसकी नाभी से कमल निकला हो उसे पद्मनाभ कहते हैं। इसी कमल पर ब्रह्मा का वास है। महात्माबुद्ध का नाम भी पदमसम्भवा कहा है। भारत जैसे गर्म देश में यह घरो के पास कमल के तालाबों का निर्माण आवश्यक है। हमारे देवी देवताओं का आसन कमल सहस्त्रदल है। कमल कीचड़ में पैदा होने पर भी उसके पत्तों पर पानी नही ठहरता है। सम्भवतः इसी लिये कमल को पवित्र माना गया है। कालीदास के यक्षग्राम की पहिचान यही थी कि स्त्रियाँ हाथ में नीलाकमल धारण किये थी।

यथा – हस्तेलीला कमल के बाल मुन्दानुविद्धम्।
नीतालोध्राप्रसवरजसा, पाण्डुतामाननेश्रीः।। "मेघदूत"

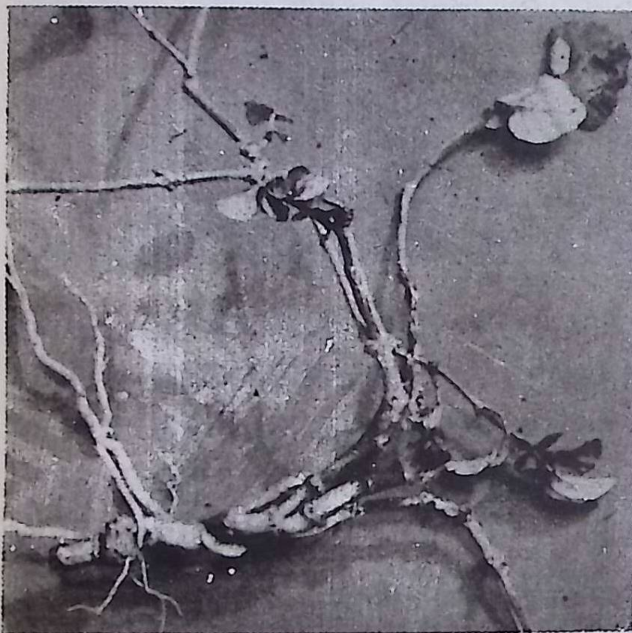
द्रव्य नाम :- संस्कृत - मखान्न,
स्थानिक - मखाना,

लैटिन - Euryale ferox salisb.

स्वरूप :- कुमुद की तरह यह भी पानी में पैदा होने वाली वनस्पति है। इसकी पत्तियाँ पानी के ऊपर तैरती रहती हैं। स्त्रीकेशर चक्राकार स्थित और पूर्णतः परस्पर युक्त, पुष्प लाल रंग के होते हैं। यह पूर्णिमाँ जिले में पाया जाता है।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण लोग मखाना का उपयोग बल्य एवं बाजीकरण के रूप में करते हैं। इसके गुणधर्म कमल बीज के समान मानते हैं।

पुनर्नवाकुल - (NYCTAGINACEAE)



द्रव्य नाम :- संस्कृत - पुनर्नवा,
स्थानिक - ओहेक-अड़ा, गदहपुन्ना,
लैटिन - Boerhaavia diffusa Linn.

स्वरूप :- इसके प्रसरी क्षुप होते हैं। पत्तियाँ-चौड़ी, लट्वाकार, अधर तल प्रायः श्वेताभ, आमने-सामने, पुष्प छोटे गुलाबीरंग के होते हैं। इसके पौध छोटानागपुर एवं संथालपरगना श्रेत्र में सर्वत्र पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग मूल क्वाथ का उपयोग करते हैं मूत्रल और शोथघ्न के रूप में भी क्वाथ का उपयोग करते हैं। इस क्षेत्र में मूलकन्द सद्यश पुनर्नवा की दूसरी जाति भी पाई जाती है। जिसे श्वेतपुनर्नवा B. repanda कहते हैं। आदिवासी लोग इसके मूल का भी चिकित्सा में उपयोग करते हैं। पत्र का शाकों में उपयोग करते हैं।

योग :- पुनर्नवाक्षार (यकृत प्लीहावृद्धि,) पुनर्नवासव (प्रमेह-प्रदर रोग)
पुनर्नवा मण्डूर (सन्धिवात) पुनर्नवाद्यारिष्ठ (जलोदर एक शोथ)

यथा – पुनर्नवा भवेदुष्णा, तिक्ता रूक्षा कफापहा।
सशोफ पाण्डु हृद्रोग कासोरः क्षतशूलनुत्।।
श्वेत पुनर्नवा सोष्णा, कफ विषापहाः।
कासहृद्रोग शूलास्त्र, पाण्डुशोफानिलार्तिनुत्।। "रा.नि."

विशेष :- निघण्टुकारों ने वर्ण भेद से श्वेत, रक्त एवं नील इन जातियों का उल्लेख किया है। जो

कि इस प्रकार से है। १. रक्तपुनर्नवा - B. diffusa. २. श्वेत पुनर्नवा - B. rependa ३. नीलपुनर्नवा को वर्षाभू भी कहा गया है। गुणों में यह तिक्त, कटु ऊष्ण एवं रसायन है। इसके अतिरिक्त हृदयरोग पाण्डु एवं शोथ में इसका उपयोग किया जाता है। महावर्षायु को सद्योमण्डलपत्रक विशेष पुनर्नवा का अन्य भेद माना गया है। अधिकतर विद्धानो ने वर्षाभू Trianthema portulacastrum को माना है। Boerhaavia कई किस्में पाई जाती हैं।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - गुलवांस,
लैटिन - Mirabilis jalapa Linn.

स्वरूप :- गुलवांस के क्षुप २ से ५ फीट ऊँचे होते हैं और उनका मूल बहुवर्षायु स्थूल कन्द सद्यश होता है। काण्ड-न्यूनाधिक मांसल, पत्तियाँ हृदयवत् होती हैं। पुष्प-पीत एवं रक्तवर्ण के होते हैं। बगीचों में इसके पौधे स्वयं उगे हुये पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग पत्ती का प्लेग, शोथ एवं बेदना को कम करने में करते हैं मूल स्नेहन एवं आनुलोमिक होता है।

भूमिचम्पककुल - (OCHANACEAE)

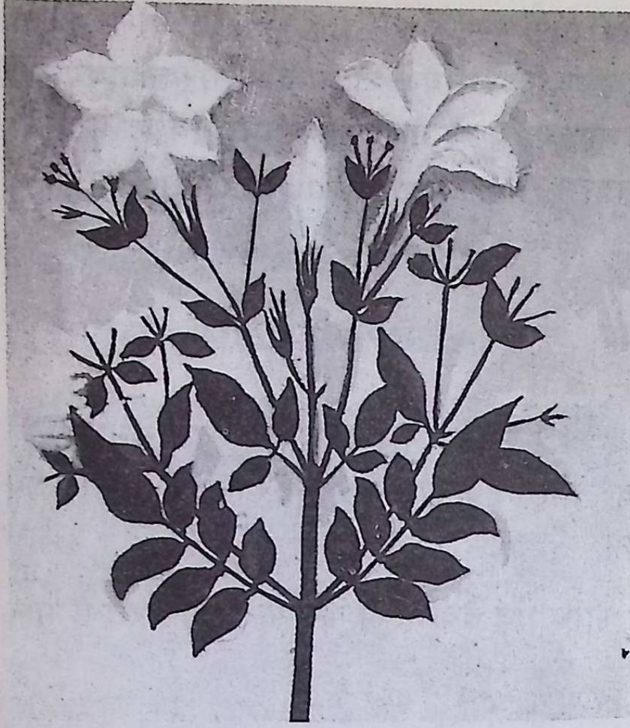
द्रव्य नाम :- स्थानिक - भूंईचांपा, चम्पा-वाहा,
लैटिन - Ochna pumila Ham.

स्वरूप :- इसके सुन्दर गुल्म होते हैं। पत्तियाँ अभिप्रासवत् सवृन्त, आरावत् पुष्प-पीले-सुगन्धित, फल, हरिताभ गाठें लाल रंग के होते हैं। इसकी अन्य किस्में इस क्षेत्र में पाई जाती है। जिसे O. gambbi King. सोनारि कहते हैं। इसके छाल का उपयोग संथाली लोग अस्थिभग्न एवं वेदना में करते हैं। तीसरी जाति भी कहीं-कहीं इस क्षेत्र मे पाई जाती है। जिसे O. squarrosa चम्पा कहते हैं। छाल एवं पत्र का स्थानिक चिकित्सा में उपयोग किया जाता है। इन किस्मों के पौध प्रायः चम्पारण, गयाघाट, रांची, सिंगभूमि, हजारीबाग, पलामू आदि क्षेत्रो में पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासियों का औषधीय गुणों का यह महत्वपूर्ण पौधा है। गठियावात में मूल का उपयोग वाह्य एवं आभ्यन्तर प्रयोग में किया जाता है। संथाल लोग मूल का उपयोग आर्तव सम्बन्धी विकार, श्वास-क्षय एवं सर्प विषघ्न के रूप में करते हैं।

यूथिकाकुल - (OLEACEAE)

द्रव्य नाम :- संस्कृत - यूथिका,
स्थानिक - जुही,
लैटिन - Jasminum auriculatum vahl.



संस्कृत - जाती, मालती,
स्थानिक - चमेली,
लैटिन - Jasminum grandiflorum Linn.

चमेली भेद - Jasminum arborescence.
संस्कृत - बेला, हिन्दी - बेला,
लैटिन - Jasminum sambac Ait.

संस्कृत - कुन्द, मल्लिका,
लैटिन - Jasminum pubescence Willd.

आदि किस्में यूथिका के इस क्षेत्र में पाई जाती है। ये जातियाँ उद्यानों एवं स्वयं जात छोटानागपुर एवं संथालपरगना क्षेत्र में मिलती हैं। आदिवासी लोग घरेलू चिकित्सा एवं मांगलिक कार्यो में पुष्पों तथा पत्रों का उपयोग करते हैं।



आयुर्वेदीय औषध उपयोग :-शीतल, सुगन्धित, शीतवीर्य, पित्त-दाहशामक, त्वक्दोषहर, वर्ण्य एवं व्रणदोषहर।

यथा- यूथिका युगलं स्वादु, शिशिरं शर्करार्तिनुत्।
पितदाह तृषाहारि, नानात्वग्दोषनाशम्।।
सुरूपं सुगन्धास्यं, स्वर्णयूथ्या विशेषतः।। "रा. नि."

विशेष :- यूथिका-श्वेत, पीत, नील भेद से तीन प्रकार की होती है। निघण्टुकारों ने स्वर्णयूथिका, पीतयूथिका एवं गणिका भेद से वर्णन किया है। कुन्द का उल्लेख करते हुये राजनिघण्टुकार ने इसे मुक्तापुष्प एवं मकरन्द कहा है। जो कि शीतल एवं केश्य गुण प्रधान है। जाति (मालती) के गुण धर्मो का उल्लेख निघण्टुकारों ने व्रण-रोगहर, क्रुष्ठघ्न, चक्षुष्य एवं मुखपाकहर बताया है।

यथा - कुन्दो अतिमधुरः शीतः कषायः केष्य भावनः।।
मालती शीत तिक्ता, स्यात्कफघ्नी मुखःपाकनुत्।
कुड्मलं नेत्ररोगघ्नं, व्रणविस्फोट कुष्ठनुत्।। "रा.नि."

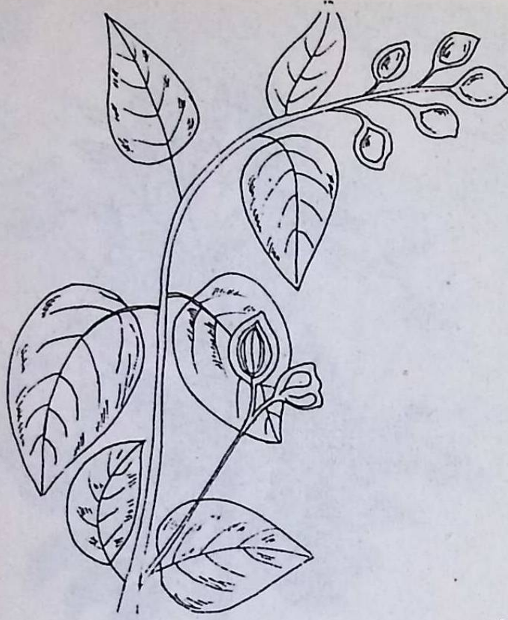


संस्कृत साहित्य में जाती, कुन्द, मल्लिका आदि सुगन्धित पुष्पों का उल्लेख कतिपय स्थलों पर वर्णित है। मल्लिका नामक पुष्प में रंग रूप एवं मनमोहक आदि सभी समृद्धियाँ मल्लिका के कोमलता की समानता दमयन्ती से चित्रित किया है। इसी प्रकार कोमलांगी नायिका की उपमा मल्लिका पुष्प से की गई है। मल्लिका की धवल उपमा की साद्यश्यता दन्तश्री से भी की गई है। मनोरम एवं मधुर गंध के कारण मल्लिका को कामदेव को पंच कुसुमायुधों मे भी सम्मानित स्थान प्राप्त करने का श्रेय विद्यमान है। वामन पुराण में कहा गया है कि शिव द्धारा कामदेव का भस्म किये जाने पर उसका धनुष-बाण पृथ्वी पर गिरकर पांच भागों में विभक्त हो गया। उसी से मल्लिका आदि की उत्पत्ति हुई। कामदेव की प्रसाधन सामग्री में कस्तुरी सद्यश मल्लिका पुष्प को भी सम्मिलित किया गया है। पूजन एवं माल्यादिभरण हेतु कल्लिका की कलियाँ श्रेष्ठ मानी गई हैं। कविकुल शिरोमणि कालिदास कहते है, कि सांयकाल को वन में मल्लिका की सौरभपूर्ण खुलती हुई कलिकाओं पर गुंजारते हुये भौंरे एक-एक फूल पर बैठकर मानों उसकी गिनती कर रहे हों। विष्णु के पूजन में मल्लिका का विशेष महत्व है। सुन्दरियों के शिर के केशों पर पुष्पाभरण एवं माल्यद्वारा नानाविध अलंकृत करने की प्रथा प्राचीन काल से चली आ रही है। स्त्रियाँ इन पुष्प कलिकाओं की माला बनाकर अपने केश पर गूंथी बनाकर लटकाती हैं। इसी कारण इसे मल्लिका कहते हैं। इसी प्रकार अयोध्या की नारियों के स्नान करने के पश्चात धूपवासित खुले हुये बालों में अलंकारणार्थ मल्लिका पुष्प का वर्णन है। वसन्त काल मे पुष्पित होने का मल्लिका का विशेष उल्लेख है। वसन्त काल में पुष्पित होने अयोध्याकाण्ड एवं अरण्यकाण्ड के भरद्वाज आश्रम, पंपासर के अरण्य मे मल्लिका (मालती) का उल्लेख है। इसी प्रकार जाती (चमेली) का भी उल्लेख मरीचि के आश्रम में एवं लंका के समुद्रतट पर जाती का उल्लेख है।

यथा – शिरसि कुलामालां मालतीभिः समेताम्।
विकसितवनपुष्पैः यूथिका कुड्मलैच।। "ऋतु.सं."

अर्थात वर्षा काल में चमेली के विकासित पुष्प बहुत सुन्दर मालूम पड़ते हैं।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - पारिजात (शेफलिका),
स्थानिक - सपरोम, हारसिंगार,



लैटिन - Nyctanthes arbor-tristis Linn.

स्वरूप :- इसके मध्यम आकार के वृक्ष गुल्म सर्वत्र पाये जाते हैं। काण्ड बहुशाखीय, पर्ण-कर्कश, अभिलट्वाकार, पुष्प-पत्रकोणीय, सुगन्धित, गुलाबी, श्वेतवर्ण के होते हैं। छोटानागपुर एवं संथालपरगना के शुष्क भागों में इसके गुल्म सर्वत्र पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- पत्र क्वाथ ज्वरघ्न एवं आमवातनाशक माना जाता है। ग्रामीण लोग कृमिघ्न के रूप में भी इसके पत्रों का क्वाथ का उपयोग करते हैं। बीजों का उपयोग त्वचा रोग में लेप के रूप में करते हैं बीजों का पानी में पीसकर सिर के गंज पर लगाते हैं। सर्पदंश की चिकित्सा में भी हारसिंगार का उपयोग किया जात है।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- रस-कटु, तिक्त, वीर्य-उष्ण, विपाक-कटु, गुण-अनुलोमन, कटुपौष्टिक, कफ-शामक, सन्धिवात, यकृत रोग में, कृमिरोग में, जीर्णज्वर में, गृध्रसी आदि रोगों में उपयोगी। विषमज्वर में पत्रक्वाथ लाभ करता है। फलों से खुशबुदार तैल प्राप्त किया जाता है।

यथा – शेफालिः कटुतिक्तोष्णाः रूक्षाव्रात क्षयापहाः।
स्याद् संधि वातघ्नी, गुदवातादिदोषनुत्।। "रा.नि."

संस्कृत साहित्य में पारिजातः (हारसिंगार) :- परिजात की गणना देव-वृक्षों में की गई। देवार्चन में पारिजात पुष्पों का उल्लेख है। श्रृंगार के लिये मान्यता है कि भगवान श्रीकृष्ण पारिजात को स्वर्ग से अपहरण कर सत्यभामा के लिये लाये थे। शेफाली शब्द का उल्लेख सिन्दुवार के साथ भी मिलता है। सुश्रुत ने लेखन कर्म हेतु शेफालिका के पत्रों का उल्लेख किया है। उत्तर-पश्चिम भारत, विन्ध्यस्थली, दक्षिणापथ तथा लंका के वनों में पारिजात (शेफाली) का सौरभ सम्पन्न पुष्पों के रूप में उल्लेख मिलता है। संस्कृत साहित्य के काव्यों में शेफाली का पुष्पागमन काल सामान्यतया शरद ऋतु बतलायी गयी है। इसके रंजक द्रव्य श्रृंगार एवं धार्मिक मान्यताओं की भारतीय परम्परा अति प्राचीन काल से है। इसे सर्वत्र देवालयों गृहवाटिकोओ एवं पुष्पोद्यानों में रोपित रखने का उल्लेख सर्वत्र मिलता है। पुष्प नालों से लाल रंग का रंजक पदार्थ पाया जाता है। जो कि पानी में खुल जाता है। इससे प्रायः मदिराओं को रंगा जाता है। रेशमी सूती कपड़े भी रंगे जाते हैं। वौद्धभिक्षुओं के वस्त्रों को रंगने के लिये इसके रंग को श्रेष्ठ मानते हैं।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - मोक्षक,
स्थानिक - एकसिरा, धोटो, मूका, मोखा,
लैटिन - Schrlebera swietenioides Roxb.

स्वरूप :- इसके मध्यम ऊंचाई के वृक्ष होते हैं। पत्तियाँ पक्षवत्, सरल, पत्रक-संख्या में ३ - ७ लट्वाकार, आयताकार, फलक-क्रमशः संकुचित होकर सूक्ष्मवृन्तयुक्त एवं लम्ब्राग्र होता है। पुष्प-श्वेताभ घंटिकाकार होते हैं। फल नीचे की ओर लटका हुआ एवं नाशपाती के जैसे होते हैं इसके वृक्ष रांची, छोटानागपुर एवं संथालपरगना में पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- बच्चों के अण्डकोश बढ़ने पर फल को कमर में बांधते हैं। शिरःशूल एवं वातघ्न के रूप में उपयोग मानते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- कटु, अम्ल, रोचक, पाचक, गुल्म, उदररोग एवं प्लीहावृद्धि में उपयोगी।

यथा - मुष्ककः कटुको अम्लश्च, रोचनः पाचनः परः।
प्लीहा गुल्मोदरार्तिघ्नो, द्विधातुल्यगुणावन्तिः।। "रा.नि."

वक्तान्य - निघण्टुकारों ने श्वेतमोक्षक एवं कृष्ण मोक्षक भेद से दो प्रकार केमोक्षक का उल्लेख किया है। कृष्ण मोक्षक Elaeodendron glaucum है।

द्रव्य नाम :- स्थानिक एवं संथाली - पिदकसवोदि,
लैटिन - olax scandens Roxb.

स्वरूप :- इसके मध्यम आकार के वृक्ष पाये जाते हैं। काण्ड बहुशाखीय, पत्र-मसृण एवं चमकीले होते हैं। पुष्प छोटे हरिताभ, पत्रकोणीय, संथाल एवं छोटानागपुर में इसके गुल्म नदी-नालों के समीप पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग पत्रक्वाथ उपयोग उदरशूल में करते हैं। छाल क्वाथ का उपयोग पाण्डुरोग एव् रक्तक्षय में करते हैं। सम्भवतः यह वृत कर्वुदार हो सकता है। कर्बुदार को कांचनार का पर्याय अधिकतर विद्वान स्वीकार करते हैं। चरक ने कर्वुदार, एवं कोविदार नामक द्रव्यो का उल्ले ख किया है।

मुज्जातककुल - (ORCHIDACEAE)

द्रव्य नाम :- संस्कृत - मालाकन्द, चिरमाकन्द,
लैटिन - Eulophia nuda Linn.

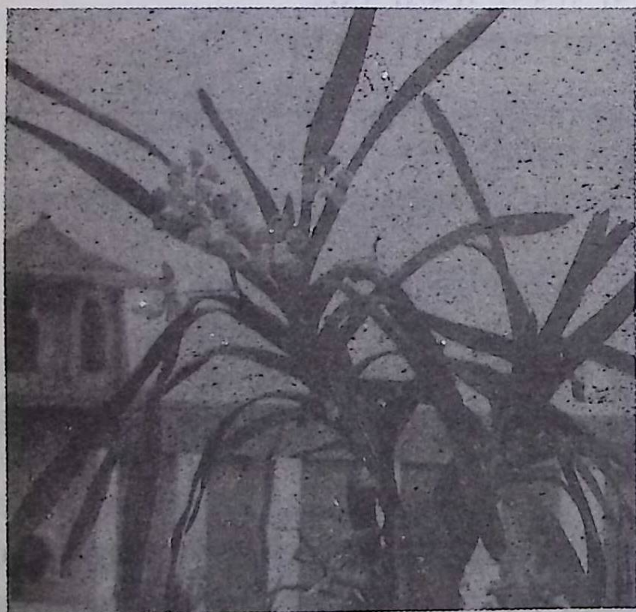
स्वरूप :- संथाल परगना एवं छोटानागपुर में इसके बहुवर्षायु मूलकन्द चिरयाकन्द वनवासी कन्द के नाम से मिलते हैं। ये गोलाकार कन्द माला सद्यश कन्दों में श्वेत-हरितवर्ण के पाये जाते हैं कन्द महीष सद्यश कठोर एवं भीतर से लट्वाकार होते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग शतावरी, असगंध एवं चिरयाकन्द को घी, शक्कर में मिलाकर वल्य एवं बाजीकरण हेतु प्रयोग करते हैं। जीवक ऋषभन्ककसे इन कन्दों क्री समानता मिलती है।

विशेष :- लेखक के विचार से Eulophia की प्रजातियाँ सालप की जातियों में से हैं। सम्भवतः चिरैयाकन्द नरहरिकृत निघण्टु में वर्णित महिषिकन्द हो सकता है।

यथा – कटुष्णो महिषीकन्दः कफवात मयापहः।
मुखजाल्पहरो रूच्योः, महासिद्धिः करसितः।। "रा.नि."

नीलकन्द वाला महिषीकन्द विषैला होता है। जिसे सर्पाख्यं विषकन्दोअन्यः कहा है।



द्रव्य नाम :- संस्कृत - वंगीयरास्ना,
स्थानिक - वांटा, कनचपड़ा,
लैटिन - Vanda Roxburghii Br.

स्वरूप :- यह महुआ-आम आदि पेड़ों पर उगने वाला परोपजीवी वांदा जाति का पौधा है। यह टहनियों का खाद्यरस चूस कर अपना पोषण करता है। इसकी पत्तियाँ मांसल मोटी और कड़ी होती है। पुष्प मज्जरियों में सवृन्त काण्डल होती हैं। पुष्प नील एवं गुलाबी रंग के होते हैं। इसकी कई उप जातियाँ पाई जाती हैं। इस क्षेत्र में यह सर्वत्र पाया जाता है। सिंगभूमि में इसे बामियाबुरू कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासियों में कर्णशूल तथा कर्णपूय में इसके पत्र स्वरस को गरम करके डालने की प्रथा है। कर्णशोथ पर पंचाग का लेप किया जाता है।

विशेष :- बंगाल के वैद्य उपरोक्त वर्णित वांदा का प्रयोग रास्ना के नाम से करते हैं। शास्त्रीय रास्ना Pluchea lanceolata है जिसे वामसुरई कहते हैं।

अहिफेनकुल - (PAPAVERACEAE)

द्रव्य नाम :- संस्कृत - स्वर्णक्षीरी,
स्थानिक - भंड़भांड, सत्यानासी, कंटेल,
लैटिन - Argemorie mexicana L.



स्वरूप :- इसके २ से ३ फीट ऊँचे क्षुप सर्वत्र पाये जाते हैं। पंचाग के सभी अवयव कांटेदार होते हैं। पुष्प-चमकीले, पीतवर्ण के एवं काण्ड को तोड़ने पर पीले रंग के दूध निकलता है। बीज छोटे काले सरसों के बीज सदृश होता है। व्यापारी लोग इसके बीजों की मीलावट सरसों के बीजों के साथ करते हैं। मिलावटी तैल स्वास्थ्य के लिये हानिकर है। बीज तैल में मृदुरेचक सत्व पाया जाता है। पंचाग का धन भी रेचक माना जाता है। यह मैक्सिको का आदिवासी पौधा है।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण लोग इसे खरपतवार के रूप में जानते हैं। खेतों के आसपास काफी मात्रा में पाया जाता है। मूल का उपयोग चमड़ी के बिमारियों वाह्य रूप में करते हैं।

विशेष :- अधिकतर लेखक इसे स्वर्णक्षीरी मानते हैं। परन्तु संहिताग्रन्थो में वर्णित किसी नाम से इस वनस्पति का मेल स्वर्णक्षीरी से नहीं खाता है। प्राचीनों की स्वर्णक्षीरी द्रव्य काश्मीर में प्राप्त हिरखी या थैकल जातीय वृक्ष हो सकते हैं। उत्तर कालीन ग्रन्थों का भंड़भांड़ चोक हो सकता है।

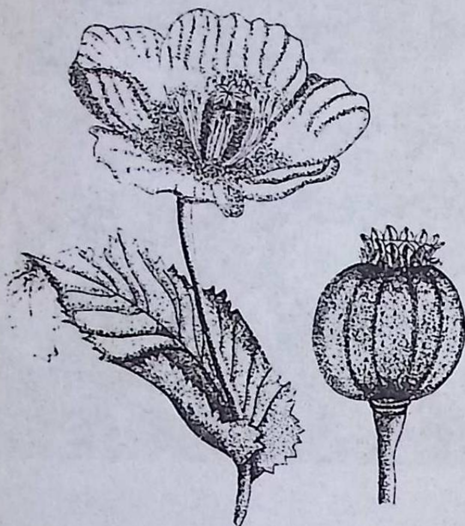
यथा – स्वर्णक्षीरिणी स्वर्णवर्णनिर्यासा क्षीरिणी स्वनामख्यात्ता।
'गंगाधर' काञ्चनक्षीर्यो द्वे एवं, कंकुष्ठं अन्या पीतदुग्धा वृहत्पत्री
यवतिक्ता 'डल्हणः' कनकक्षीरी स्वर्णक्षीरी कंकुष्ठमित्यन्ये' अनन्ता
सद्यश पत्रा हिययावली इति लोके, कंकुष्ठइत्यपरे सुश्रुतः। उपर्युक्त

आधारों से स्पष्ट है किस संहितोक्त स्वर्णक्षीरी Argemone नहीं है। सम्भवतः Euphorleia की जातियों में स्वर्णक्षीरी की सम्भावना है। या Rheum प्रजातियों में पीत वर्ण का मूल हो सकता है।

यथा – स्वर्णक्षीरी रसे तिक्ता, भेदनी रेचनी तथा।
कफ पित हरी रक्तत्वग्रोग क्रिमीनाशिनी।। "प्रिय.नि."

हेमवर्ण पयस्तस्याः हिमवद् भूमि संभवा।
सा नागजिह्वका कारी, तन्मूलंवणिजौषधम्।।

लेखक के विचार से अन्वेषकों के इस वनस्पति के पहिचान के क्षेत्र में अनुसंधान करना चाहिये।



द्रव्य नाम :- संस्कृत - अहिफेन,
स्थानिक - पोस्त, अफीम,
लैटिन - Papaver somniferum L.

स्वरूप :- यह ३ से ४ फीट ऊँची क्षुप जाति की वनस्पति है। काण्ड कोमल, हरित, रोमश, पुष्प, नीलाभ-श्वेत, फल बड़े बिषमकोषीय इसके फलों पर चीरा लगाकर अफीम तैयार किया जाता है। छोटानागपुर एवं संथालपरगना में कहीं-कहीं इसकी खेती की जाती है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग बीज एवं पोस्तदाना का घरेलू चिकित्सा में उपयोग करते हैं। बीज, फल एवं निर्यास का चिकित्सा में उपयोग होता है।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- रस-तिक्त, कषाय, वीर्य उष्ण, विपाक कटु, गुण-स्तम्भक, वेदना स्थापन, कफघ्न, अतिसार, विसूचिका, आन्त्र एवं वातसंस्थान के रोगो में उपयोगी है।

योग :- अहिफेनासव (विसूचिका) निन्द्रोदय वटी (सर्व वेदना)।
कर्पूरस (विसूचिका) दुग्धवटी (गर्भरोग)।

यथा – अहिफेनं परंग्राहि, मादिशूलनिवारणम्।
तीव्रातिसारे अनिद्रायां, शूले प्रायः प्रयुज्यते।। "प्रिय.नि."

तालकुल - (PALMACEAE)

द्रव्य नाम :- संस्कृत - ताल,
स्थानिक - ताड़,
लैटिन - Borassus flabellifer L.

स्वरूप :- इसके मध्यम आकार तलोत्थ वृक्ष पाये जाते हैं। ताड़ के वृक्ष सड़को के आसपास सर्वत्र

मिलते हैं। आदिवासी लोग ताड़ के वृक्षों पर चीरा लगाकर मादकपेय ताड़ी निकालते हैं। ताड़ी हंडिया में एकत्रित करते हैं। पत्तों का उपयोग गृहनिर्माण एवं झाडू बनाने के काम में करते हैं। पके फल खाये जाते हैं।

विशेष :- निघण्टुकारों ने ताल, श्रीताल, हिन्ताल एवं माडभेद से उल्लेख किया है। ताल-मधुर, शीतल, पित्त-दाह एवं भ्रमहर माना गया है। माड को मद्यद्रुम कहा गया है। आदिवासियों का यह मादक पेय का साधन माना जाता है। बाल्मीकीय रामायण में ताल का उल्लेख अयोध्याकाण्ड में, चित्रकूट में एवं श्रीराम की पर्ण कूटी के प्रंसग में है।

ताड़ मदिरा के गुण :- ताड़ की मदिरा कफ कारक, वायुकारक, कास तथा जी की मिचलाहट का नाश करती है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - बेंत,
स्थानिक - बेंत,
लैटिन - Calamus niminalis wild.

स्वरूप :- बेंत की कई जातियाँ छोटानागपुर एवं संथालपरगना क्षेत्र में पाई जाती हैं। इसके काण्ड आरोही, कण्टकित लता सदृश होते हैं। आरोहण के लिये पत्रदण्ड पत्राधार अथवा पुष्प ब्यूह से निकले लम्बे कांटेदार एवं सूत्राकार होते हैं। इसके अतिरिक्त निम्न जातियाँ इस क्षेत्र में पाई जाती हैं। Calamus tenuos एवं C. gurba के कांटेदार बेल पूर्णियाँ, संथाल क्षेत्र में पाई जाती हैं।

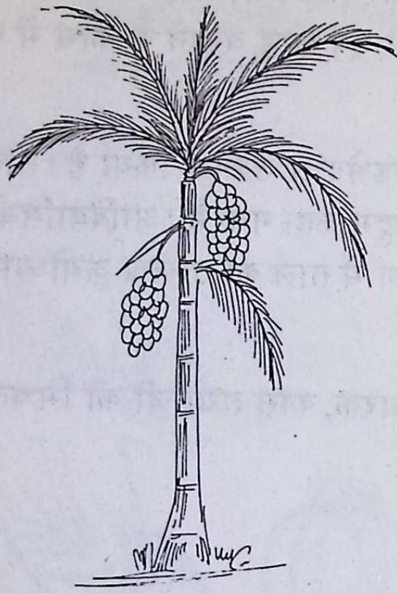
स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग इसके काण्ड का उपयोग टोकरियाँ एवं कुर्सी बनाने के काम में करते हैं।

विशेष :- निघण्टुकारों ने ५ प्रकार के बेंत का उल्लेख किया है। बिहार, उड़ीसा एवं उत्तर प्रदेश के वन्य क्षेत्रों में कई किस्म की बेंत पाई जाती है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - पूगं,
स्थानिक - सुपारी,
लैटिन - Areca catechu L.

स्वरूप :- सुपारी के तालसदृश मध्यम आकार के वृक्ष होते हैं। संथाल एवं छोटानागपुर क्षेत्र में कहीं-कहीं इसके वृक्ष नमी वाले स्थानों पर लगाये हुये पाये जाते हैं। ग्रामीण लोग फलों का उपयोग घरेलू कार्य में करते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- भेदक, विकासी, कफ-पित्तहर, मूखशोधक, वातघ्न, पित्तल।



यथा – भेदि संमोहकृत्पूगं, कषायं स्वादुरोचनम्।
कफ पित्तहरं रूक्षं, वक्त्र क्लेद मलापहम्।।
"रा.नि."

विशेष :- कच्ची सुपारी ज्यादा मादक होती है। दक्षिणी सुपारी चिकनी कठोर होती हैं। कोंकण एवं आन्ध्रप्रदेश की सुपारी के गुणों में भिन्न होती है। ऐसा निघण्टुकारों का मत है। रघुवंश नामक महाकाव्य राजा रघु के दक्षिण प्रदेश में पहुँचने पर समुद्र के किनारे किनारे सुपारी के पुष्पित वृक्षों को देखा। ऐसा उल्लेख मिलता है।

यथा – ततो बेलातटेनैव फलवत्पूगमालिना।।
"रघु.सं. ४–४४"

द्रव्य नाम :- संस्कृत - नारिकेल,
हिन्दी - नारियल,
लैटिन - Cocos nucifara L.

स्वरूप :- नारियल के वृक्ष तालसदृश नमी वाले भागों में कहीं-कहीं लगाये हुये पाये जाते हैं। नारियल के फल गुच्छों में लगते हैं। कच्चे फलों का पानी वल्य एवं उदर विकार में उपयोगी मानते हैं। पके फलों को खोपरा कहते हैं। नारियल के तेल का खाद्य सामग्री में उपयोग किया जाता है।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- गुरू, स्निग्ध, स्वादु, वल्य, मांसवर्धक, वृष्यं, वीर्य-बर्धक। तैल-कुष्ठघ्न, केश्य एवं व्रण रोपक होता है। कच्चाफल - वृंहण, वल्य एवं रक्तपित-शामक होता है।

यथा – नारिकेल गुरू स्निग्ध, पित्तलं स्वादु शीतलम्।
बल मांस प्रदं वृष्यं, वृहणं वस्तिशोधनम्।।
नारिकेल सलिलं लघु, वल्यं शीतलं च मधुरं गुरू पाके,।

पित्त पीनस तृषा श्रम दाह शान्ति, शोषशमनं सुखदायि।। "रा.नि."

संस्कृत साहित्य में नारिकेल :- बाल्मीकीय रामायण में अरण्यकाण्ड में समुद्र तट पर किष्कन्धाकाण्ड के क्षीर सागर के किनारे, पश्चिमी तट पर, सेतु निर्माण के प्रसंग में नारियल का उल्लेख आया है। महाकवि कालिदास ने नारियल का उल्लेख शत्रुओं के दमन हेतु नारियल का आसवपान कराना।

यथा – ताम्बूलीनां दलैःस्तत्र, रचितायान भूमयः।
नारिकेलासवं यथा, शात्रवं च पपुर्यशः।। "रघु.सं. ४"

द्रव्य नाम :- संस्कृत - खर्जूर,
स्थानिक - खजूर,
लैटिन - Foenix sylvestris Roxb.



स्वरूप :- खजूर के तालसदृश वृक्ष छोटानागपुर एवं संथाल परगना क्षेत्र में सर्वत्र पाये जाते हैं। इसकी अन्य जातियाँ भी इन स्थानों में पाई जाती है। जिसे Foenix aculis कहते हैं इसके गुल्म प्रायः ६ फीट तक ऊंचे चम्पारण एवं सिंगभूमि में पाये जाते हैं। पिण्डखजूर नाम की तीसरी जाति को P. aculis कहते हैं। इसके गुल्म छोटानागपुर में पाये जाते हैं। पुष्प गुच्छों में श्वेतवर्ण के फल गुच्छो पकने पर गुलाबी रक्तवर्ण के होते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग पके फलो को खाते हैं। पत्र एवं काण्ड का गृह निर्माण में उपयोग करते हैं। पका हुआ खजूर त्रिदोषशामक, मधुर एवं बल कारक होता है।

आयुर्वेदीय उपयोग :- गुरू, मधुर, शीतल, रक्तपित्तशामक हृद्य, क्षत, क्षयनाशक वृष्य एवं वृंहण है।

पिण्डखजूर दाहनाशक, तृष्णाशामक, शीतल एवं पुष्टिकर माना जाता है।

यथा :- क्षत क्षयापहं हृद्यं शीतलं तर्पणं गुरूः।
रसे पाके च मधुरं खर्जूरं रक्तपित्तजित्।।
दीप्या च पिण्डखर्जूरी दाहघ्नी पित्त शमनी ।। "ध.नि."



द्रव्य नाम :- संस्कृत :- केतकी,
स्थानिक - केवड़ा,
लैटिन - Pandanus fectoris Ex.

स्वरूप :- केवड़ा के बहुशाखीय झाड़ीदार गुल्म होते हैं। पत्तियाँ लम्बी एबं तट कंटकित होते हैं। पुष्प व्यूह पत्रकोषों में ढका रहता है। काण्ड से अनेक अवलम्बक मूल निकले रहते हैं। पुष्प गुच्छों में श्वेत वर्ण के सुगन्धित होते हैं। इस क्षेत्र के नमदार स्थानों पर इसके गुल्म पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग मूल एवं पुष्पों का उपयोग दाहशामक के रूप में करते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- पुष्प-वर्ण्य, केश्य, दौर्गन्ध्यनाशक, पित्त-कफघ्न, रसायन, लघु, तिक्त एवं विपाक में कटु।

यथा – केतकी कुसुम वर्ण्य, केशदौर्गन्ध्यनाशनम्।
हेमाभं मदनोन्मादवर्धनं, सौख्यकारि च।।
रसायन करो वल्यो, देहदार्ढ्यकरपरः।। "रा.नि."

निघण्टुकारों ने केतकी द्वय का उल्लेख किया है। स्वर्णकेतकी अन्य किस्म है। इसके पुष्प कनक सद्यश पीतवर्ण के होते हैं। इसे P. foetidus कहते हैं।

संस्कृत साहित्य में केतकी :- महाकवि कालिदास ने अपने काव्यों के कतिपय स्थलों पर केतकी का उल्लेख सुगन्धित पुष्प रज के प्रसंङ्ग में एवं सुन्दिरियों के नितम्बों पर लगने वाले नखों से स्त्रियाँ विलास निमित दन्तपत्र सदृश पीतवर्ण के केतकी पत्रों को नोचती हुये मालुम पड़ती हैं। ग्रीष्म कालीन उष्णता के शमन करने हेतु कवि ने वर्षा कालीन केतकी पुष्प का उल्लेख किया है। इसी प्रकार सुन्दरियों के चूड़ापाश की शोभा हेतु केतकी पुष्प का वर्णन मिलता है।

यथा – मालाकदम्बकेसर केतकी भिः
आयोजिता शिरसि विभ्रतियोषितान्यः।। "ऋतु.स."

बाल्मिकीय रामायण के अरण्यकाण्ड में, पंचवटी में, ऋष्यमूकपर्वत पर, पंपासर के अरण्य में तुंगभद्रा

नदी के किनारे, वर्षा ऋतु में माल्यवान् पर्वत पर, पश्चिमी समुद्र तट पर एवं सह्यगिरी कानन के प्रसङ्ग में केतकी का उल्लेख मिलता है।

तिलकुल - (PEDALIACEAE)



द्रव्य नाम :- प्रचलित नाम - काकनासा,
स्थानिक - विधुआ, गायमुखी,
लैटिन - Martynia diandra Glox

स्वरूप :- विधुआ के ३ से ४ फीट ऊँचे बहुशाखीय क्षुप पाये जाते हैं। काण्ड मुलायम, मृदुरोमश एवं चिप-चिपे होते हैं। पत्तियाँ लहरदार, हृदवत्, त्रिकोण एवं लट्वाकार होती हैं। पुष्प गुलाबी एवं जामुनी रंग के, फल बहुत कठोर एवं अग्र भाग पर मुड़े हुये छोटानागपुर एवं संथालपरगना में सर्वत्र यह पाया जाता है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग फल को घिसकर बिच्छू के दंश स्थान पर लेप करते हैं। भपके के फल का निकला हुआ तेल का वाह्य प्रयोग चर्मरोग एवं पामा में करते हैं।

विशेष :- स्थानिक व्यापारी फलों का उपयोग काकनासा के स्थान पर करते हैं। काकनासा संदिग्ध वनस्पति है। अधिकतर विद्वनों न Pentatropis microphylla को काकनासा माना है। काक शब्द अनेक द्रव्य वोधक है।

यथा – काकतुण्डी काकनासा, काकसिंहि च रक्तला।
काकदन्ती काकपीलू, वृत रक्त फला तथा।।
काक प्राणा वल्यशल्या, कृष्णवीजा च रज्जकी।
काकनासा कषायोष्णा, कटुकारस पाकयो।।
कफघ्नी वामिनीतिक्ता, शोथार्शः श्वित्रकुष्ठ हृत्।
काकनासा तु मधुरा, शिशिरा पित हारिणी।। "रा.नि."

द्रव्य नाम :- हिन्दी - वड़ागोखरू,
लैटिन - pedalium murex L.

स्वरूप :- इसके मांसल क्षुप होते हैं। शाखायें उन्थित एवं प्रसरी होती हैं। पत्तियाँ एकान्तर १ से

२ इंच तक लम्बी लहरदार एवं दन्तुर तटवाली होती हैं पुष्प-पीत वर्ण के, फल के आधार की ओर चार कांटे होते हैं। ऊपर का भाग शंकुआकार और भीतर से दो कोष वाला होता है। इसके क्षुप बलुई जमीन के आस-पास पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग फलों का उपयोग मूत्रल एवं बल्य के रूप में करते हैं।

विशेष :- बाजार में छोटानागपुर एवं बड़ागोखरू के नाम से दो किस्मों के फल मिलते हैं। छोटागोखरू शास्त्रीय गोक्षुर है।



द्रव्य नाम :- संस्कृत - तिल,
स्थानिक - तिल,
लैटिन - Sesamum indicum L.

स्वरूप :- एक वर्षायु पौधा है। इसकी इस क्षेत्र में खेती की जाती है। बीज का उपयोग तिलहनों में किया जाता है। ग्रामीण लोग तिल का उपयोग वल्य एवं वृष्य के रूप में करते हैं।

यथा - वल्यकेश्यो हिमस्पर्शः त्वचा स्तन्यो व्रणेहितः।
स्नानाभ्यंगावगाहेषु, तिलतैलं विशिष्यते।। "ध. नि."

बाल्मिकीय रामायण में तिल का उल्लेख रामाश्वमेघ यज्ञ के प्रयोगार्थ उत्तराकाण्ड में मिलता है। भारतीय संस्कृति में तिल यज्ञ-होम एवं पिण्डदान आदि धार्मिक कार्यो के उपयोग हेतु पौराणिक एवं ज्योतिष कर्मकाण्ड में वर्णन मिलता है।

पिप्पलीकुल - (PIPERACEAE)

द्रव्य नाम :- संस्कृत - पिप्पली, मागधिका,
स्थानिक - पीपलछोटी, रालीरेड, रानूरैन,
लैटिन - Piper longum L.

स्वरूप :- पिप्पली के परिसृत क्षुप होते हैं। पत्तियाँ एकान्तर दूर से निकली हुई हृदयवत् प्रायः लट्वाकार, आयताकार एवं काण्ड संसक्त होते है। पुष्प एकलिंगी मञ्जरियों में, स्त्रीपुरूषों की मञ्जरियां अलग से फल एक से दो ईचं तक होते हैं। इसके क्षुप नमदार एवं छायादार स्थानों के

चम्पारण, सिंगभूमि, पालमू एवं सथालपरगना क्षेत्र में पाया जाता है।



स्थानिक प्रयोग :- फली एवं मूल का उपयोग ग्रामीण लोग चावल की शराब बनाने के काम में लाते हैं। उदरशूल में पिप्पलीमूल क्वाथ सूतिका को पिलाते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- रस-कटु, वीर्य-अनुष्ण, विपाक-मधुर, गुण-स्निग्ध, दीपन, पाचन, वातकफशामक, जीर्णज्वर, उदररोग, प्लीहारोग, श्वास, प्रसूतिज्वर, आमवात एवं कफज रोगों में उपयोगी है। आयुर्वेद में वर्धमान पिप्पली का प्रयोग उदररोगों में विशेष लाभ करता है।

योग :- गुड़पिप्पली - जीर्णज्वर में, सीतोपलादिचूर्ण-कास में, त्रिकटुचूर्ण-उदर रोग में। अनुपान-मधु।

यथा - पिप्पली कटुका पाके, स्वादुर्हिमा स्निग्धां त्रिदोषजित्।
तृड् ज्वरोदरजन्त्वामनाशिनी रसायनी।। "ध.नि."

मूलं च पिप्पली मूलं श्लेष्म संघात नाशननम्।
दीपनं वातरोगघ्नं, रोचनं पित्तकोपनम्।। ध.नि.

विशेष :- पिप्पली की दो जातियाँ व्यवहार में मिलती हैं। छोटीपीपल एवं बड़ी पीपल, बड़ी पीपल विदेशों से आयातित की जाती है। चब्य के फल को गजपिप्पली कहते हैं। पिप्पली की अन्य जाति सिंहली भी है। जो कि श्रीलंका आदि में पाई जाती है। वन्यपिप्पली का भी निर्देश अन्य जाति विशेष से निघण्टुकारों ने किया है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - चब्य,
स्थानिक - चावो,
लैटिन - Piper chaba Hunter.

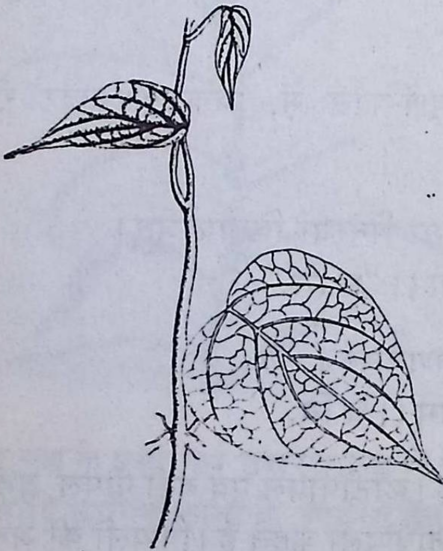
स्वरूप :- चव्य की मूलारोहिणी लता होती है। काण्ड मोटा गुल्मीय एवं चिकना होता है। पत्तियाँ-आयताकार, प्रासवत्, अग्रभाग नोकदार इसकी फलियाँ १ से २ इंच लम्बी होती हैं। यह कहीं-कहीं नमदार स्थानों उड़ीसा के सीमान्त क्षेत्रों में पाई जाती है। ग्रामीण लोग फल एवं मूल

का स्थानिक चिकित्सा में उपयोग करते हैं।

विशेष :- चव्य के फल को गजपिप्पली कहते हैं। यथा "चविकायाको लवल्ली च चव्यं चविकमेव च" चव्य के फल को गजपिप्पली स्वीकार करना चाहिये। कुछ ग्रन्थकारों ने सिन्ड्रोप्सिस औफिसिनिल के फलों को गजपिप्पली माना है।

गुण :- चव्यं तु कटुकोष्णं, स्यात् जन्तुहृत्दीपनं परम्।
कफोद्रेक हरं वातप्रकोपशमनं हरेत्।। "रा.नि."

श्रेयसी (हस्तिपिप्पली) चविका विशेष का निर्देश राजनिघण्टुकार ने किया है। तथा तत्फलं श्रेयसी हरितमगधा गजपिप्पली एवं द्वीप पिप्पली का निर्देश किया है। अतः शास्त्रीय गजपिप्पली की जाति विशेष है।



द्रव्य नाम :- संस्कृत - ताम्बूल,
स्थानिक - पान,
लैटिन - Piper betle L.

स्वरूप :- यह लता जाति की वनस्पति है। काण्ड-हरितरभ, कोमल, पत्र-गोल, पीपल के पत्तों के समान, मूल-साधारण, पुष्प-पीताभ, श्वेत छोटानागपुर एवं संथालपरगना के ऊष्ण एवं आद्र वाले स्थानों पर इसकी खेती की जाती है।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- रस-तिक्त, कटु कषाय, वीर्य-उष्ण, विपाक-कटु, गुण-सर, पाचन, दीपन, हृद्य, स्वर्य, वात-कफघ्न, शुष्ककास व्रण एवं पीनस में उपयोगी। इसका विशेष उपयोग कफ प्रधान रोगों में होता है।

यथा - ताम्बूलं कटुतिक्तोष्णं, रक्तपित्तकरं सरम्।
तीक्ष्ण वातकफध्वंसि, हृद्यं वृष्यंचजन्तुजित्।। "प्रिय.नि."

चुक्रकुल - (POLYGONACEAE)

द्रव्य नाम :- स्थानिक - पनिसगा, सुकरीपुटी,
स्थानिक - सोरिया,

लैटिन - Polygonum glabrum willd.

स्थानिक - सोरिया P. brabatum L.

स्वरूप :- इसके स्वावलम्बी क्षुप होते हैं। पत्तियाँ प्रासवत् या रेखाकर, चिकनी, विन्दुकित, चमकीली, पुष्प-गुलाबीवर्ण के मञ्जरियों में एवं पत्रकोणीय होते हैं। इसकी कई जातियाँ इस क्षेत्र में नमदार स्थानों पर पाई जाती है। जिसे P. flaccidum कहते हैं। इसके जाति के पंचाग से मछलियाँ मारते हैं। अन्य प्रजाति को Polygoum plebejum कहते हैं। इसके पत्तियों का शाक बनाकर गग्रमीण खाते हैं।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - चुक्र,
स्थानिक - चूक्रा,
लैटिन - Rumex vescicarius L.

स्वरूप :- इसके एकवर्षायु क्षुप पाये जाते हैं। पर्ण-सवृन्त, लट्वाकार आयताकार, पुष्प-गुलाबी रंग, मञ्जरी में खिलते हैं। पत्र-खट्टे स्वाद में होते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण लोग चूका शाक बनाकर खाते हैं। शाक ऊष्ण, दीपन, पांचन एवं पथ्य होता है।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- लघु, उष्ण, अम्ल, दीपन एवं वातगुल्म नाशक।

> **चुक्रं स्यादम्ल पत्रं तु, लघुष्णां वातगुल्मनुत्।**
> **रूचिकृद्दीपनं पथ्यं मीषत्पीतकरं परम्।। "रा.नि."**

सेनेगाकुल - (POLYGALACEAE)

द्रव्य नाम :- स्थानिक - गैघूरा, लीलकाठी,
लैटिन - Polygala crotalarioldes.

स्वरूप :- एकवर्षायु क्षुप जाति की वनस्पति है। पत्तियाँ रोमश, अभिलट्वाकार पुष्प, गुलाबी रंग के होते हैं। अन्य जाति भी इस क्षेत्र में पाई जाती है। जिसे P. chinensis कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग मूल का उपयोग चावल की शराब बनाने में करते हैं। मूलस्तम्भ को चबाने पर जीभ में सनसनाहट होती है। सर्पविष में मूल का वाह्य एवं आभ्यन्तर प्रयोग किया जाता है। कफघ्न एवं ज्वरघ्न में भी मूल का उपयोग आदिवासी करते हैं।

लोणीकुल - (PORTULACACEAE)

द्रव्य नाम :- स्थानिक - लोणी,
लैटिन - portulaca tuberosa Roxb.

स्वरूप :- इसके प्रसरणशील एक वर्षायु क्षुप होते हैं। पत्तियाँ अवृन्त, गोल, मांसल, रेखाकार एवं काण्ड पर्व भूरे एवं रोम गुच्छ होते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग विच्छू के विष में इसे उपयोगी मानते हैं। इसी कारण इसे विच्छूबूटी कहते हैं।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - लोणिका,
स्थानिक - लोनिया, कुल्फा,
लैटिन :- Portulaca oleracea Linn.

स्वरूप :- यह अम्लरस युक्त पत्र शाक है। पत्र-मांसल, अवृन्त मंसृण होते हैं। पुष्प पीतवर्ण के होते हैं। दूसरी छोटी जाति भी इस क्षेत्र में पाई जाती है जिसे जंगली लोनियाँ P. ouadrifida L. कहते हैं। खेतों के आस-पास इसके क्षुप सर्वत्र पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण लोग पत्र का शाक में उपयोग करते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में कुल्फा का उपयोग दीपन शाकों में करते हैं।

जोंक़मारीकुल - (PRIMULACEAE)

द्रव्य नाम :- स्थानिक - जिघना, जोंकमारी,
लैटिन - Anagallis arvensis Linn.

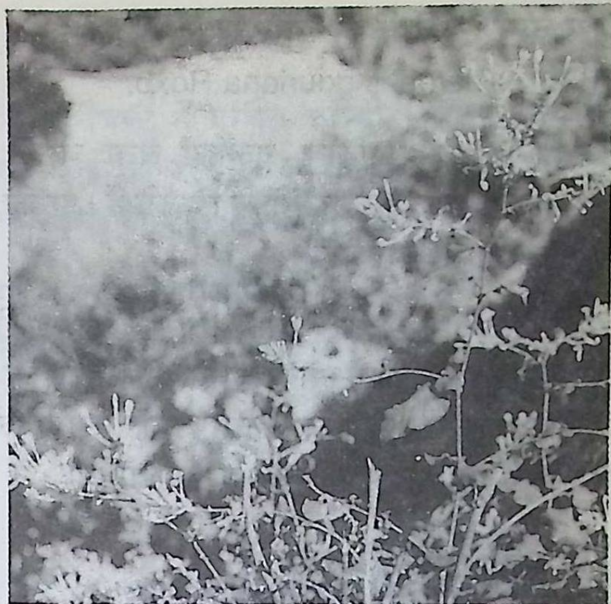
स्वरूप :- इसके एक वर्षायु स्वावलम्बी परिसृत क्षुप होते हैं। पत्तियाँ आमने-सामने, अवृन्त, आयताकार, लट्वाकार, पुष्प-पत्रकोणीय एकाकी एवं नीले रंग के होते हैं। छोटानागपुर एवं संथालपरगना क्षेत्र में खेतों के आस-पास इसके क्षुप सर्वत्र गेहूँ की खेती के साथ पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- पंचाग, कटु, तिक्त, वेदनास्थापन, व्रणरोपण एवं विषहर माना जाता है। संधिशोथ एवं जलोदर, यकृतशोथ में देने से लाभ करता है। मधु के साथ आंख में अज्जन करने से फूली नष्ट होती है। शोथ दंश एवं व्रण आदि पर लेप करने से लाभ होता है। शिरोविरेचन के लिये इसका नस्य लिया जाता है।

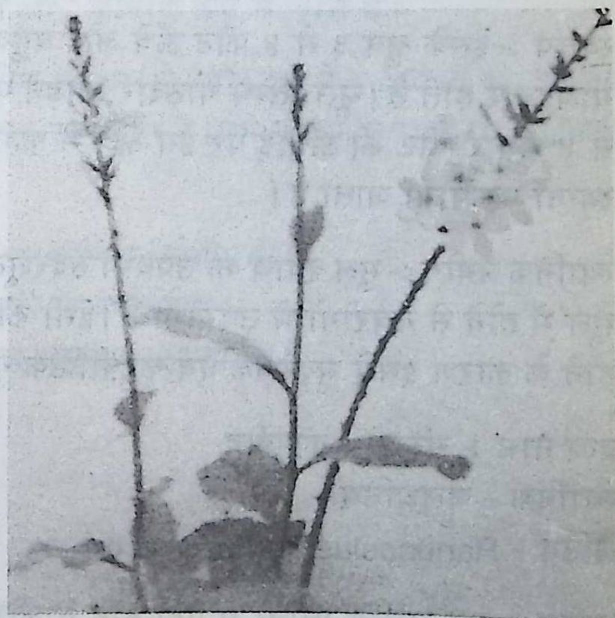
चित्रककुल - (PLUMBAGINACEAE)

द्रव्य नाम :- संस्कृत - चित्रक,
स्थानिक - चितार,

लैटिन - Plumbago zeylenica Linn.



स्वरूप :- चित्रक के छोटे-छोटे गुल्म होते हैं। शाखा-हरितवर्ण की रेखायुक्त, पत्तियाँ प्रायः ३ से ४ इंच लम्बी, आयताकार, लट्वाकार होती हैं। पुष्प मञ्जरियों में श्वेतवर्ण के होते हैं। इससे गुल्म चट्टानी भागों में सिंगभूमि, रांची, मानभूमि, पलामू आदि क्षेत्रों में पाये जाते हैं। इसकी दो किस्में बागों में लगाई हुई पाई जाती हैं। जिसे Plumbago rosea कहते हैं। इसके पुष्प गुलाबी रंग के होते हैं। तीसरी जाति को Plu-mbago copensis कहते हैं। इसके पुष्प नीले रंग के होते हैं। वर्ण भेद से रक्त, श्वेत एवं नील तीन जातियाँ होती हैं।



स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी ग्रामीण दाईयाँ मूल का उपयोग गर्भस्त्राव में करती हैं। इसे उत्तम दीपन-पाचन औषध मानते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- रस-कटु, वीर्य-ऊष्ण, विपाक-कटु, गुण-लघु, रूक्ष, ग्राही, वात-कफहर, पाचन संस्थान में उपयोगी।

रोगोपयोग :- आमातिसार, अग्निमांद्य, अर्श एवं संग्रहणी में उपयोगी।

योग :- चित्रकादिवटी (अग्गिमांद्य)
चित्रकाद्यघृत (संग्रहणी)
चित्रकहरीतकी अवलेह (प्रतिश्याय में।

यथा – चित्रकोग्निसमः, पाके कटु शोफ कफापहः।
वातोदरार्शो ग्रहणी, कृमिकण्डूति नाशनः।। "रा.नि."

रक्तचित्रक को कुष्ठघ्न विशेष माना है। रसवन्धन एवं रसायन के लिये उपयोगी है।

वत्सनाभकुल - (RANUNCULACEAE)

द्रव्य नाम :- स्थानिक - गोलरंग,
लैटिन - Clernatis gouriana Roxb.

स्वरूप :- यह काष्ठीय, गुल्मीय लता जाति की वनस्पति है। पर्ण-द्विपक्षवत्, लट्वाकार, पुष्प-श्वेतवर्ण के मञ्जरियों में खिलते हैं। इसकी लता छोटानागपुर के पारसनाथ एवं पलामू में कहीं-कहीं पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग मूल का उपयोग त्वचा के रोगों एवं स्वेद-जनन के रूप में करते हैं। कतिपय लेखकों ने इसकी जाति को मूर्वा लिखा है। किन्तु धनुर्गुणोपयोग्यां न होने से यह वनस्पति मूर्वा नहीं हो सकती है। राजनिघण्टुकार ने गोपवल्ली का उल्लेख किया है। जिसकी साम्यता मिलती है। सम्भवतः यह गोमबल्ली हो सकती है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - पीतमूला,
स्थानिक - ममीरी,
लैटिन - Thalictrum foliolosum DC.

स्वरूप :- इसके क्षुप ३ से ४ फीट ऊँचे और बहुवर्षायु होते हैं। पर्ण-त्रिपक्षवत्, गोलाई लिये हुये गोलदन्तुर होते हैं। मूल स्तम्भ गांठदार, तोड़ने पर भीतर से पीतवर्ण का होता है। इसके क्षुप ३ से ४ हजार फीट की ऊँचाई पर इस क्षेत्र में कहीं-कहीं नेतरहाट, पारसनाथ एवं सरगुंला आदि स्थानों पर पाया जाता है।

स्थानिक प्रयोग :- मूल क्वाथ का उपयोग उदरशूल एवं ज्वरों में करते हैं। वर्वेरीन नामक पीतसत्व मूल में होने से नेत्ररोगों में उपयोगी है। इसी कारण इसे ममीरी कहते हैं। त्रायमाण सद्दश गुण होने के कारण इसमे मृदुरेचक एवं कटुपौष्टिक गुण पाये जाते हैं।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - काण्डीर,
स्थानिक - जलधनियाँ,
लैटिन - Ranunculus sceleratus Linn.

स्वरूप :- यह जलीय स्थानों में पैदा होने वाली एवं वर्षायु वनस्पति है। काण्ड-मृदु बहुशाखीय, पत्र-त्रिपक्षवत्, धान्यक सद्दश, पुष्प-पीतवर्ण के होते हैं। काण्ड स्वरस दाहकारक एवं स्फोट-जनक होते हैं। इसकी अन्य जाति इस क्षेत्र में पाई जाती है। जिसे R. pensylvanicus Linn. कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग इसे प्लेग की बूटी भी कहते हैं। यह ऊष्ण, रूक्ष, दाहक, स्फोटकारक, पाचक, मंदाग्नि में उपयोग और चर्मरोग नाशक है। यह अनेक धातुओं के मस्मीकरण के काम में आती हैं। पारद को इससे रस में घोट कर भस्म करने पर अत्यन्तदीपक भस्म तैयार

होती है।

विशेष :- यह वनस्पति जलपिप्पली न होकर राजनिघण्टु में वर्णित काण्डीर नामक द्रव्य है। जलपिप्पली के पर्यायों में अग्निज्वाला है। जलधनियाँ को काण्डीर एवं बुक्कनबूटी को जलपिप्पली स्वीकार करना चाहिये जिसे वनस्पतिशास्त्र के आधार पर Lippia nodiflora कहते हैं।

यथा – काण्डीरः कटु तिक्तोष्णः सरोदुष्ठव्रर्णार्तिजित्।
लूता गुल्मोदर प्लीहः, शुलमन्दाग्नि नाशनः।। "रा.नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - उपकुञ्चिका,
स्थानिक - कलौंजी, मंररैल,
लैटिन - Nigella sativa Linn.

स्वरूप :- इसके एक वर्षायु क्षुप होते हैं। काण्ड तलोत्थ, पुष्प श्वेताभवर्ण के होते हैं। बीज पकने पर काले रंग के होते हैं। इन बीजों को कलौंजी कहते हैं। ग्रामीण इसकी इस क्षेत्र मे खेती करते हैं। आदिवासी लोग बीजों का उपयोग मसाले और औषधि रूप में करते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- आयुर्वेद में चतुर्वीज के नाम से चिकित्सा में इन बीजों का उपयोग किया जाता है। यह कृमिघ्न, पाचक, कफघ्न एवं आध्मानहर है। इसे सुषवी, कृष्णजीरक भी कहते हैं।

यथा – पृथ्वीका कटुका पाके, रूच्यापित्ताग्निदीपनी।
श्लेष्माध्मान हराजीर्णा, जन्तुघ्नी च प्रकीर्तिता।।
सुषवी कारखीज्ञेया, पृथ्वीका च चतुर्दशः।। "रा.नि."

बदरकुल (RHAMNACEAE)

द्रव्य नाम :- संस्कृत - कैवर्तिका, लोहिता,
स्थानिक - केवटी, वोणसर्जम्,
लैटिन - Ventilago madraspatana Gaertn.

स्वरूप :- इसकी विस्तृत आरोही लता होती है। पत्तियाँ आयताकार, अण्डाकार एवं दन्तुर धार वाली होती हैं। पुष्प पीताभ हरितवर्ण के, छाल-गहरे भूरे एवं लाल रंग की होती है। इसकी दूसरी जाति भी इन क्षेत्रों में पाई जाती है। जिसे V. calyculata कहते हैं। रांची, संथालपरगना में इसकी लतायें पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग इसकी छाल से रेशा निकालते हैं। छाल से रंग भी निकाला

जाता है। छाल ग्राही एवं मूलत्वक् का फाण्ट बनाकर पीने से इसे पौष्टिक मानते हैं। बीज तैल खाने एवं जलाने के काम में आता है। दूसरी जाति के मूल को पीसकर कर्ण बिन्दु के रूप में प्रयोग करने से बधिरता नष्ट होती है।

विशेष :- राजनिघन्टुकार ने इसे कैवर्तिका लिखा है। इसके लता का द्रुमारूहा, वस्त्ररंगा आदि पर्यायों से उल्लेख मिलता है। सुश्रुतसंहिता में इस लता को लोहितिका कहते हैं।

गुण :- कैवर्तिका लघुर्बृष्या, कषायाकफ नाशनी।
कास श्वास हराचैव, सैवमन्दाग्निदोषनुत्।। "रा.नि."



द्रव्य नाम :- संस्कृत - बदर,
स्थानिक - जनुम-जाम, जोम-जनुम,
लैटिन - Zizyphus jujuba lamk.

स्वरूप :- इसके झाड़ीनुमा, कण्टकित गुल्म होते हैं। इसकी ५-६ जातियाँ इस क्षेत्र में पाई जाती है, जिनके नाम इस प्रकार हैं। बेर- Z. nummularia, कर्कन्धु - Z. oenoplia, Z. xylopyra घोंट आदि जातियाँ इस क्षेत्र में पाई जाती हैं। ये जातियाँ शास्त्रों में वर्णित सौवीर, बदर, उन्नाव एवं घोण्ट हो सकते हैं। ग्रामीण लोग पके फलों को खाते हैं। कठबेर को घोण्ट कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग पत्र का दाहशमन के लिये प्रयोग करते हैं। पके फल खाये जाते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- मधुर, कषाय, अम्ल, वात-पित्तनाशक, रोचक एवं कृमिघ्न, वदर, राजवदर, भूवदर भेद से निघण्टुग्रन्थों में उल्लेख मिलता है।

यथा -बदरं मधुरं कषायम्लं, परिपक्क मधुराम्ल मुष्णमेवतत्।
कफकृत्पचनातिसार रक्तश्रम शोषार्तिविनाशनंरूच्यम्।। "रा.नि."

सूक्ष्मफलोवदरोअन्य:, लघुवदरं मधुरं।। "रा.नि."

बाल्मिकीय रामायण के अयोध्याकाण्ड में भारद्वाज आश्रम से चित्रकूट की राह में, चित्रकूट में माल्यवान पर्वत पर, पिण्डदान के लिये आदि प्रसंगों में बदर का उल्लेख मिलता है।

तरूणीकुल (ROSACEAE)

द्रव्य नाम :- संस्कृत - कुब्जकभेद,
स्थानिक - जंगलीगुलाब, कुजोई,
लैटिन - Rosa involucrata Roxb.

स्वरूप :- जंगली लता जाति की वनस्पति है। प्रायः नदियों के किनारे इसकी लता पाई जाती है। पुष्प-श्वेतवर्ण के होते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण लोग पुष्पों का उपयोग चिकित्सा में करते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ प्रजातियाँ इस कुल की इस क्षेत्र में पाई जाती है। इसमें अधिकतर फल हैं।

(१) आरूक - Prunus persica इसके मध्यम आकार के गुल्म होते हैं। बगीचों में लगाया हुआ पाया जाता है।

(२) लोकाट - Eriobotrya japonica रांची क्षेत्र में सर्वत्र पाया जाता है।

(३) नाशपाती - Pyrus communis संथालपरगना एवं छोटानागपुर के उद्यानों में लगाया हुआ पाया जाता है।

(४) हिंसालु - Rubus ellipticus वन्य जाति चम्पारण एवं सोमेश्वर में पाई जाती हैं।

मञ्जिष्ठाकुल - (RUBIACEAE)

द्रव्य नाम :- संस्कृत - हरिद्रु, हलन्द,
स्थानिक - जातकरम, कुरूम्षा,
लैटिन - Adina cordifolla Hook.

स्वरूप :- करम के बड़े-बड़े वृक्ष पाये जाते हैं। पत्तियाँ वृताकार, लट्वाकार हृद्धत् ४ से ८ इंच लम्बे होते हैं। पुष्प ब्यूह मुण्डाकार, पीतवर्ण के होते हैं। इसका काष्ठ पीत वर्ण का होता है। इसी कारण इसको हरिद्रु कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग छाल को कटु-पौष्टिक मानते हैं। ज्वरघ्न एवं व्रणरोपण में भी काष्ठसार का उपयोग किया जाता है।

यथा – हरिद्रुः शीतलस्तिक्तो, मंगल्यपित्तवान्ति जित्।
अंग कान्तिकरो बल्यो, नानात्वग् दोष नाशनः।। "रा.नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - कदम्ब, नीप,

लैटिन - Anthocephlus cadamba Mig.

स्वरूप :- इसके मध्यम आकार के वृक्ष सड़कों के किनारे एवं बागों में लगाये हुये पाये जाते हैं। पत्र-मसृण, आयताकार, सवृन्त होते हैं। पुष्प-गोल, मुण्डक सद्यश सुगन्धित पीत वर्ण के होते हैं। जंगली जाति Mitragyna parviflora Korth. को करम एवं कैमा कहते हैं। यह भी कदम्ब का भेद है।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- कषाय, शीतल, वातघ्न, व्रणरोपक, कासघ्न एवं विषनाशक है। निघण्टुकारों ने धाराकदम्ब एवं धूलीकदम्ब दो अन्य भेदों का भी उल्लेख किया है।

यथा – कदम्बस्तु कषायः स्याद्रसे शीतोगुणेअपि च।
व्रणसंरोहणश्चापि कासदाह विषापहः।। "रा.नि."

त्रिकदम्बाः कटुवर्ण्याः विषशोफ हराहिमाः।
कषायाः तिक्तः पित्तघ्ना, वीर्यवृद्धिकराः पराः।। "रा.नि."

संस्कृत साहित्य में कदम्ब :- कदम्ब संस्कृत साहित्य में सम्मानित पुष्प वृक्ष माना जाता है। कदम्ब पुष्प सुगन्धित मधुर गन्ध के साथ-साथ प्रकृति प्रेमी आलंकारिक एवं अभिव्यञ्जनात्मक उक्तियों में उल्लेख किया है। श्रृंगारी पुष्प विशेष के रूप में महाकवि कालिदास ने हिमालय की उपत्यकाओं में यथा अलकापुरी, गन्धमादन एवं शिवपर्वत स्थलों में कदम्ब का उल्लेख किया है। श्रृंगारी प्रधान के रूप में कदम्ब पुष्प का कवियों ने विशेष उल्लेख किया है। **"यथा विकचन कदम्बैः कर्णपूरं, वधूनां, रचयतिजलदौधः कान्तवत् कालएव"** ।। **"ऋतुसंहार"** अतः कवियों ने कदम्ब पुष्प को वर्षाकालीन ऋतु समृद्धि पुष्प माना है। कवि ने वनस्पतियों में भी मनुष्य की भांति मानसिक भावों यथा - हर्ष, उल्लास, दुखानुभूति एवं सहानुभूति आदि की अभिब्यजकता की मान्यता स्वीकार की है। क्रीड़ाशैलों में बिहार करते समय अर्जुन, कुटज एवं कदम्ब के पुष्पों की मालाधारण करने के कतिपय प्रसंग मिलते हैं।

विशेष :- कदम्ब की तीन जातियाँ पाई जाती है, जो कि इस प्रकार हैं - (१) धाराकदम्ब - Anthocephalus cadamba Benth. (२) धूलिकदम्ब - Adinacordifolia Hook. F. (३) वन्य कदम्ब - Mitragyma prviflora Korth.

बाल्मिकीय रामायण के अरण्य काण्ड में विरही राम केसीता के अपरहण के विषय में कदम्ब वृक्ष से सीताजी के अपरहण के विषय में जानकारी लेना इस बात का प्रमाण है कि वनस्पतियों में हाव-भाव की अभिब्यञ्जना होती है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - अच्छूक,

लैटिन - Morinda tinctoria Roxb.

स्वरूप :- इसके मध्यम ऊँचाई के गुल्म होते हैं। काण्ड चौकोर एवं रक्ताभ होते हैं। पत्तियाँ बड़ी-लट्वाकार, अण्डाकार एवं सवृन्त होती हैं। पुष्प-श्वेताभ वर्ण के एकाकी, मुण्डाकार एवं गुच्छों में होते हैं। छोटानागपुर एवं संथालपरगना क्षेत्र में इसके गुल्म पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- मूल छाल का उपयोग रंग बनाने के काम में करते हैं। छाल-मूत्रजनन, शोथहर एवं वेदनास्थापक है। फूलों को व्रणशोधक तथा आर्तवजनन मानते हैं।

विशेष :- संहिताओं में वर्णित आक्षिक, आक्षिकीफल का उल्लेख मिलता है। फल-तिक्त, कटु एवं ऊष्ण गुणों वाला होता है। इस वृक्ष की सागपात गुणधर्मो के आधार पर आक्षिकी फल से मिलती है। अतः शास्त्रीय आक्षिकी फल की सम्भावना पर विचार करना चाहिये।

"पित्तश्लेष्ममम्लं च वातलं चाक्षिकी फलम्"। रा.नि.

द्रव्य नाम :- संस्कृत - महापिण्डी, करहाट,
स्थानिक - खरहार, डुडुकी, करहार,
लैटिन - Gardenia turqida Roxb.

स्वरूप :- इसके काँटेदार गुल्म होते हैं। शाखायें परिसृत एवं तीक्ष्ण काँटों वाली, पत्तियाँ-अण्डाकार, प्रायः अभिलट्वाकार, पुष्प-श्वेत, सुगन्धित, फल-गोल, श्वेताभ और कठोर होते हैं। उत्तर प्रदेश के लोग इस वृक्ष को थनैला कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग फूल तथा फल का चिकित्सा में उपयोग करते हैं। मूल का उपयोग रक्तयुक्त कास में करते हैं। फल का प्रयोग स्तनपाक में किया जाता है। वातगुल्म में मूल को कालीमिर्च के साथ पीस कर पिलाया जाता है। उदरशूल में मूल क्वाथ पिलाते हैं, जिससे लाभ होता है। आदिवासी लोग कच्चा फल उबाल कर खाते हैं। पका हुआ फल विषैला एवं वामक होता है।

विशेष :- राजनिघण्टु में वर्णित यह वनस्पति महापिण्डी (करहाट) है जो कि मदनफल से भिन्न द्रव्य है। यह कषाय, ऊष्ण, त्रिदोषशामक चर्मरोग एवं रक्त रोग नाशक है। बाजार में भारंगी के नाम से इसी गुल्म की छाल का विक्रय होता है।

यथा – पिन्डी तरूः कषायोष्ण– त्रिदोष शमनोऽपि च।
चर्मरोगापहश्चैव विशेषात्, रक्त दोषजित्।। "रा.नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - डिकामाली, नाड़ीहिंगु,
स्थानिक - बुरूड़ी, बूरूई,

लैटिन - Gardenia gummifera Linn.

स्वरूप :- इसके बहुशाखीय गुल्म १० फीट तक ऊँचे होते हैं। पत्तियाँ अवृन्त, चमकदार, आयताकार एवं अभिलट्वाकार होते हैं। पत्र-कलिकाओं के ऊपर ऊष्ण ऋतु में पीला गोंद बूंद के रूप में निकलता है। छाल श्वेत-हरिताभवर्ण की एवं छाल पर क्षत लगाने पर पीला गोंद निकलता है। इस गोंद को डिकामाली या नाड़ीहिंगु कहते हैं! छोटानागपुर में इसके गुल्म पाये जाते हैं। इसकी अन्य जाति उड़ीसा से सीमान्त क्षेत्रों में पाई जाती है। जिसे G. lucida Roxb. डिकामाली भी कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग गोंद का उपयोग त्वचा के रोगों एवं कृमिघ्न के रूप में करते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- कटु, ऊष्ण, कफ-वातशामक, विवन्ध एवं उदर रोग नाशक है। वहिःप्रयोग में यह कोथप्रशमन और उत्तेजक होता है। अन्तः प्रयोग में संकोच-विकास प्रतिबन्धक, कोष्ठवात प्रशमन, कृमिघ्न, स्वेदजनन एवं त्वग् दोषहर है।

यथा – नाड़ी हिंगु कटूष्ण च, कफ वातार्तिशान्ति कृत्।
विष्ठम्भनः विवन्धाम, दोषघ्नं दीपनं परम्।। "ध.नि."

विशेष :- निघण्टुकारों ने हिंगु, हिंगुपत्री एवं नाड़ीहिंगु तीन प्रकार का उल्लेख किया है।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - सेरा,
लैटिन - Borreria articularies Linn.

स्वरूप :- इसके तलोथ्य गुल्म होते हैं। संथालपरगना में कहीं-कहीं इसके गुल्म पाये जाते हैं। आदिवासी लोग काण्डत्वक् का उपयोग सर्पदंश में करते हैं।

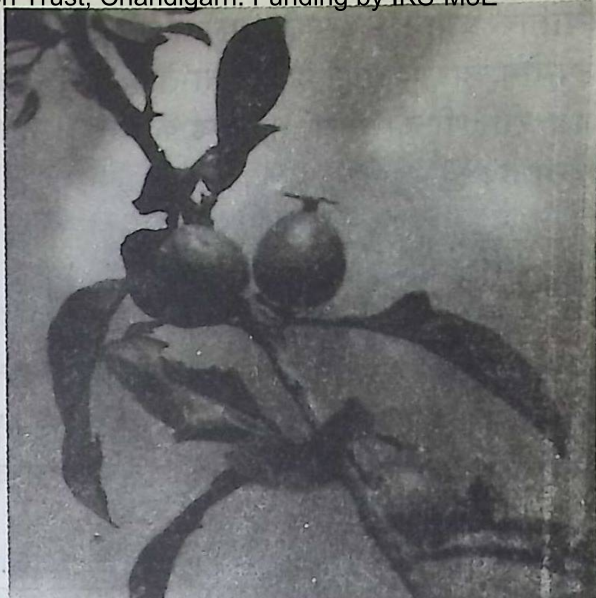
द्रव्य नाम :- संस्कृत - मदन,
स्थानिक - पोडका, पोटुआ, मयना,
लैटिन - Randia dumetorum Lamk.

स्वरूप :- इसके कांटेदार बहुशाखीय गुल्म होते हैं। कांटे सीधे पत्रकोण में स्थित होते हैं। पत्तियाँ छोटी-छोटी टहनियों पर गुच्छवद्ध, अभिप्रासवत्, अभिलट्वाकार होती है। पुष्प-श्वेतवर्ण के बाद में पीतवर्ण के होते हैं। फल-गोल, गण्डाकार पीला एवं अनेक बीजों वाले होते हैं। इसकी निम्न दो अन्य जातियाँ छोटानागपुर एवं संथालपरगना में पाई जाती हैं।

(१) पिंडार, पिरार, थोल्को Randia uligiosa DC. इसके भी मध्यम आकार के काण्टकित गुल्म पाये जाते हैं। पुष्प-श्वेतवर्ण के एवं फल - गोल और मांसल होते हैं। परिपक्व फल को गांगेरूक

कहते हैं। गुणों में यह मधुर, मूत्रल एवं स्तम्भन है।

(२) मौन, पौडक Randia longispina कहते हैं। इसके भी मध्यम आकार के गुल्म पाये जाते हैं।



स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग फलों का उपयोग कपड़े धोने के लिये एवं वामक रूप में प्रयोग करते हैं।

आयुर्वेद में औषध उपयोग :- रस-कटु, तिक्त, वीर्य-ऊष्ण, विपाक-कटु, गुण-वामक, पक्वाश्य एवं आमाशयशोधक, कफ-पित्तशामक, प्रवाहिका, उदरशूल, गुल्म एवं उदरशूल में उपयोगी।

यथा – मदनः कटुक स्तिक्तः, तथा चोष्णो व्रणापहाः।
श्लेष्म गुल्म प्रतिश्याय, गुल्मेषु विद्रधीषु च।।
शोफस्यापि हरवस्तौ, वमने चैव शस्यते।। "ध.नि."

द्रव्य नाम :- सैलोली, सरकापी,
लैटिन - Hamiltonia suaveolens Roxb.

स्वरूप :- यह बहुशाखीय गुल्म जाति की वनस्पति है। पत्तियाँ अभिमुख प्रासवत् एवं आयताकार होती है। पुष्प नीलाभवर्ण के होते हैं। पत्तों को मसलने पर गन्ध आती है। इसके पौध चम्पारण, हजारीबाग एवं संथालपरगना क्षेत्र में पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग मूल का उपयोग अतिसार और विशूचिका मे करते हैं।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - भुरकुण्ड,
लैटिन - Hymenodictyon excelsum Wall.

स्वरूप :- भुरकुण्ड के मध्यम आकार के वृक्ष होते हैं। पत्तियाँ टहनियों के अग्रभाग पर समूहवद्ध होकर रहती हैं। पत्तियाँ लट्वाकार एवं अण्डाकार होती हैं। पुष्प-हरिताभ, अवृन्त काण्डज एवं मज्जरियों में खिलते हैं। छोटानागपुर एवं संथालपरगना के ऊष्ण भागों में इसके वृक्ष पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- इसकी छाल कड़वी होती है। आदिवासी कोल जाति के लोग मूल क्वाथ का उपयोग ज्वर में करते हैं। हो जाति के लोग पूनी रोग में उपयोग करते हैं। गैस्टिक में देवसरई की जड़, रोहिणी की छाल, भुरकुण्ड की जड़ समान भाग में लेकर क्वाथ तैयार कर पिलाने से लाभ होता है।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - भोजराज,
लैटिन - Knoxia brachycarpa BC.

स्वरूप :- इसके एक वर्षायु क्षुप होते हैं। मूल-रक्ताभ, काण्ड-नालीदार पत्तियाँ-आयताकार, २ से ४ इंच लम्बी, कुण्ठिताग्र एवं अवृन्त होती हैं। पुष्प-हल्का, रक्त-नीलवर्ण का, फल दो खण्डों में विभक्त एवं उन्नतोदर होता है। इसकी एक अन्य जाति इस क्षेत्र में पाई जाती है। जिसे K. corymbosa कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- पलामू क्षेत्र में आदिवासी लोग मूल को वल्य एवं पौष्टिक मानते हैं। कामराज, तेजराज एवं भोजराज के साथ इसकी गणना करते हैं।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - जूर,
लैटिन - Canthium didymum Gaertn.

स्वरूप :- इसके मध्यम आकार के गुल्म होते हैं। पत्तियाँ दो-दो कतारों में होती हैं। आकार में ये पत्तियाँ लट्वाकार एवं प्रासवत् एवं ४ से ६ तक बड़ी होती हैं। पुष्प-हरिताभ श्वेत एवं फल काला एवं गोलाकार होता है। नदी-नालों के किनारे सर्वत्र पाया जाता है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग छाल चूर्ण का लेप मोच एवं अस्थिमग्न में करते हैं। छाल चूर्ण का उपयोग मछली मारने के लिये भी किया जाता है।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - खटवा, रंगन, दतरंजन,
लैटिन - Ixora parviflora Vahl.

स्वरूप :- इसके छोटे आकार के गुल्म होते हैं। पत्तियाँ-आयताकार अण्डाकार एवं कुण्ठिताग्र होते हैं। पुष्प-श्वेतवर्ण के गुच्छों में खिलते हैं। प्रायः नालों के किनारे वृक्ष पाये जाते हैं। इसकी अन्य जाति इस क्षेत्र में पाई जाती है जिसे कोरी Ixora arborla Roxb. कहते हैं। मूलत्वक् का उपयोग त्वचा के रोगों में किया जाता है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी फूल को दूध में पीस कर पीते हैं। छाल क्वाथ का कासघ्न के रूप में उपयोग करते हैं।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - कौफी
लैटिन - Coffea benqalensis Roxb.

स्वरूप :- इसके ३ से ४ फीट तक ऊँचे सुन्दर गुल्म होते हैं। पत्तियाँ लट्वाकार, लम्ब्राग्र, पुष्प-श्वेतवर्ण के एवं फल अण्डाकार एवं काले रंग के होते हैं। काफी की अन्य दो किस्मे छोटानागपुर के बागों में लगाई हुई पाई जाती है। जिसे Coffea aratica एवं C. peberica कहते हैं। आदिवासी लोग विशेष रूप से चिकित्सा में उपयोग नहीं करते हैं।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - क्षेत्रपर्पट (प्रचलित)
स्थानिक - खेतपापड़ी,
लैटिन - Oldenlandia corymbosa Linn.

स्वरूप :- इसके बहुशाखीय प्रसरणशील एक वर्षायु क्षुप होते हैं। पत्तियाँ रेखाकार, प्रासवत् एवं पतली लम्बी होती है। पुष्प छोटे एवं श्वेत वर्ण के होते हैं। इसके क्षुप गीले स्थानों एवं धान की खेती के साथ पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग पंचाग का उपयोग शीतल, ज्वरघ्न, दाहशामक और कफघ्न के रूप में प्रयोग करते हैं। कतिपय वैद्य इस बूटी को क्षेत्रपर्पट मानते हैं।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - प्रसारिणी,
स्थानिक - गन्धाली,
लैटिन - Paederia foetida Linn.

स्वरूप :- गन्धाली के दुर्गन्ध युक्त प्रसरणशील आरोही लतायें होती हैं। पत्तियाँ अभिमुख, अण्डाकार, आयताकार होती हैं। पुष्प हरिताभ वर्ण के काण्ड कृष्णाभवर्ण का होता है। पूर्णियाँ, रांची, पलामू एवं संथालपरगना आदि स्थानों के नदी-नालों के आसपास इसकी बेल पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग पत्र तथा मूल क्वाथ आमवात तथा सन्धिवात में उपयोगी मानते हैं।

आयुर्वेदीय औषध प्रयोग :- रस-तिक्त, वीर्य-ऊष्ण, विपाक- मधुर, गुण-सर, वल्य, वामक, रेचक, त्रिदोषशामक, वातसंस्थान में उपयोगी, वातशूल, आमवात एवं शोथ में उपयोगी।

योग :- प्रसारिणी तैल

गुण : प्रसारिणी गुरूस्तिक्त्ता, सरा संन्धान कृन्मता।
त्रिदोष शमनी बृष्या, तेजः कान्तिबल प्रदाः।। "ध.नि."

विशेष :- इसकी अन्य किस्में भी इस क्षेत्र में पाई जाती है, जिसे पापिदि pavetta indica Linn. कहते हैं। मूल का उपयोग अपस्मार में किया जाता है।



द्रव्य नाम :- संस्कृत - मज्जिष्ठा,
स्थानिक - मजीठ,
लैटिन - Rubia cordifolia Linn.

स्वरूप :- मंजीठ की मृदु परिसृत लता होती है। पत्तियाँ चक्रिकाक्रम में रहती हैं। पर्ण-लट्वाकार, प्रासवत्, उर्ध्वतल, रवर-स्पर्श एवं रोमश, पुष्प-पत्रकोणीय- मज्जरी सद्यश-गुलाबी रंग के एवं कुछ पीताभ वर्ण के होते हैं। फल-गोल, मांसल, काण्ड एवं मूल रक्त वर्ण का होता है। छोटानागपुर क्षेत्र के विशेष ऊँचाई वाले भागों नेतरहाट एवं पारसनाथ में यह लता कहीं-कहीं पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग मूल क्वाथ का उपयोग रक्तविकार एवं त्वचा के विकारों में करते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- रस-मधुर, तिक्त, कषाय, वीर्य-ऊष्ण, विपाक-कट्ठ, गुण-त्वच्य, वर्ण्य, रक्तशोधक, वातकफशामक, विसर्प, त्वचारोग एवं योनिरोगों में उपयोगी।

योग :- महामज्जिष्ठादिक्वाथ, मज्जिष्ठाधारिष्ठ। (रक्तविकार)

मज्जिष्ठा मधुरास्वादे, कषायोष्णा गुरूस्तथा।
कफोग्र व्रणमेहास्त्र, विषनेत्रामयाज्जयेत्।। "ध.नि."

द्रव्य नाम :- स्थानिक - कटाय अड़ा, सेराली,
लैटिन - Vanqnenia pubescens

स्वरूप :- इसका छोटा गुल्म होता है। काण्ड-कण्टकित, पत्र-लट्वाकार आयताकार, नोकदार होते हैं। पुष्प-छोटे हरितवर्ण के एवं गुच्छों में खिलते हैं। गुल्म मदनफल के वृक्षों सद्यश दिखाई देते हैं। छोटानागपुर एवं संथालपरगना क्षेत्र में कहीं-कहीं इसके गुल्म पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- नवीन पत्तियों का ग्रामीण शाक के रूप में उपयोग करते हैं। कच्चा फल उबाल कर खाया जाता है। ग्रामीण फल को शीतल, पित्तघ्न और वल्य मानते हैं। अतिसार में पत्र शाक

का उपयोग करते हैं। दूसरी जाति भी इस क्षेत्र में पाई जाती है जिसे Vengneria spinosa कहते हैं।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - तिलका,
स्थानिक - तिलय,
संथाली - हुंग,
लैटिन - Wenleandia exerta DC.

स्वरूप :- तिलक के मध्यम आकार के सुन्दर वृक्ष होते हैं। पत्तियाँ- आयताकार, लट्वाकार, प्रासवत् एवं लम्बाग्र होते हैं। पुष्प-सुगन्धित श्वेत एवं मञ्जरियों में खिलते हैं। इसके गुल्म इस क्षेत्र के नदी-नालों के ढलानों पर सर्वत्र पाये जाते हैं इन वृक्षों के पुष्पित होने पर बनों की सुन्दरता अधिक बढ़ जाती है।

स्थानिक प्रयोग :- स्थानिक लोग इसकी छाल को रेचक मानते हैं। छाल में रक्तस्त्राव जन्यव्रण होने के कारण दन्त रोगों में उपयोगी है। इसकी अन्य जाति भी इन क्षेत्रों में पाई जाती है जिसे Wendlendia tinctoria कहते हैं। ग्रामीण लोग छाल का उपयोग रंगाई में रंग पक्का करने के लिये करते हैं।

विशेष :- राजनिघण्टुकार ने पुनण्ड्रक, प्रपुण्डकारी, तिलक आदि पर्यायों में इस द्रव्य का उल्लेख किया है। यह मधुर, स्निग्ध, हृघ, रक्तदोषनाशक, कृमि शोफ, व्रण एवं दन्तरोग नाशक लिखा है।

गुण : – तिलकत्वग् कषायोष्णा, पुंस्त्वघ्नी दन्तदोषनुत्।
क्रिमिशोफ व्रणान्हन्ति, रक्तदोष विनाशनी।।
तिलको मधुरो स्निग्धोवातपित्त कफापहः।। "रा.नि."

संस्कृत साहित्य में तिलक :- तिलक का उल्लेख वैदिक काल से लेकर संस्कृत साहित्य में सर्वत्र मिलता है। वैदिक समाज कें तिलक काष्ठ की गणना पवित्र काष्ठों में की गई है। तिलक वृक्ष को संस्कृत कवियों ने मूर्धन्य पुष्प वृक्षों में माना है। श्रृंगारी एवं अलंकारिक के अतिरिक्त कवियों ने दोहद् वृक्षो में तिलक की गणना की है। तिलक पुष्प ऋतुराज वसन्तकाल का सूचक है। यह पुष्प भ्रमरों का ईष्ठ और मनमोहक है। यथा - "नरवलु शोभयतिस्म वनस्थली, न तिलक स्तिलक प्रमदामिवः।" "रघुवंश" यह वृक्ष क्रीडोद्यानों, देवोद्यानों एवं गृह उद्यानों को अलंकृत करने वाला वृक्ष विशेष है। कहीं-कहीं अतिरंजित तिलक वृक्ष की शोभा को कामांगना के वास्तविक मुखमण्डन से चित्रित किया गया है। वर्तमान में तिलक वृक्ष उपेक्षित रहा है। किन्तु संस्कृत काव्यों में इसका विस्तृत वर्णन मिलता है।

निम्बुकुल - (RUTACEAE)

द्रव्य नाम :- स्थानिक - ओते-अरमु, अगिनझाड़,
लैटिन - Clausena excavata Burm.

स्वरूप :- इसके शाकीय एक वर्षायु क्षुप होते हैं। पुष्प-हरिताभ मञ्जरियों में, पर्ण-कुन्तल, लट्वाकार, आयताकार, प्रासवत् एवं लम्बाग्र होते हैं। छोटानागपुर एवं शाल के वनों में इसके क्षुप पाये जाते हैं। पंचाग में तीव्रगन्ध है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी इसके पंचाग को उपयोगी मानते हैं। आमातिसार एवं अतिसार में मूल को पीसकर ग्रामीण रोगी को पिलाते हैं। अग्निमांद्य एवं उदरशूल मे पंचाग को कालीमिर्च के साथ मिलाकर गोली बनाते हैं। दिन में २ गोली ३ बार गरम जल के साथ देने से लाभ होता है। कोल जाति के आदिवासी मूलचूर्ण का उपयोग दन्तशूल एवं दन्तकृमि में करते हैं।

विशेष :- सुश्रुत संहिता सूत्रस्थान अध्याय ३० में सुरसी शब्द का उल्लेख है। सम्भवतः ओते-अरमू को सूरसी से ग्रहण करना चाहिये। इसकी अन्य औषध उपयोगी जाति हिमालय की निचली घाटियों में एवं छोटानागपुर में पाई जाती है। जिसे C. pentaphylla कहते हैं।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - रोवन, रतन-जोते,
लैटिन - Clausena pentaphylla DC.

स्वरूप :- गुल्म जाति का सुगन्धित पौधा है। पत्तियाँ अयुग्म पक्षवत् और ५ से ६ पत्रकों वाली होती है। पुष्प-पीताभवर्ण के, फल-अण्डाकार होते हैं। छोटानागपुर में शाल के वनों में इसके गुल्म पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग पशुचिकित्सा में इसका उपयोग करते हैं। मवेशियों के खुरपका में इस गुल्म के छाल क्वाथ से घाव धोते हैं।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - भरूल, बिललुग,
लैटिन - Chloroxylon swietenia DC.

स्वरूप :- इसके गुल्म जाति का पौधा है। पत्र को मसलने पर सुगन्धित, पुष्प-श्वेताभवर्ण का, संथालपरगना क्षेत्र में इसके गुल्म पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी छाल का प्रयोग बल्य एवं वाजीकरण हेतु प्रयोग करते हैं।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - निम्बुक,
स्थानिक - निम्बु,
लैटिन - Citrus medica L.



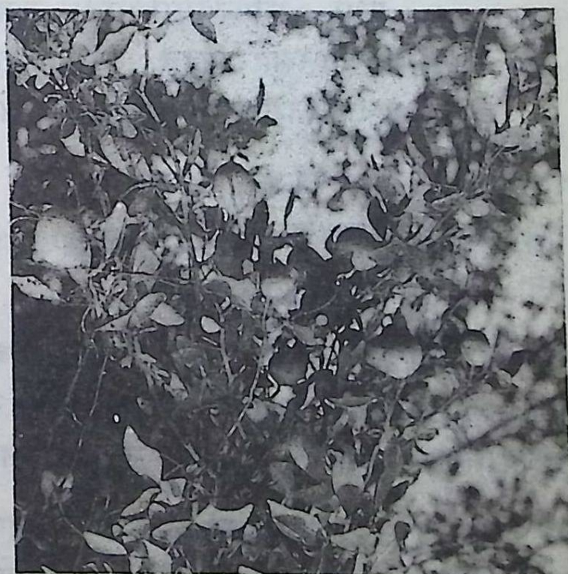
स्वरूप :- इके कंटकित बहुशाखीय गुल्म होते हैं। पर्ण मसृण सुगन्धित होते हैं। पुष्प श्वेत वर्ण के होते हैं। इसके गुल्म प्रायः बागों मे पाये जाते हैं। ये जातियाँ निम्न हैं। (१) जंगली नारंगी - C. aurantium जंगली नारंगी कहते हैं। यह सिंगभूमि की पथरीली भूमि में पाई जाती है। (२) बिजोरानिम्बु - C. decumana को चकोतरा भी कहते हैं। संथालपरगना छोटानागपुर में कागजी निम्बु एवं मीठा निम्बु आदि की किस्में भी पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण लोग घरेलू उपयोग में इन जातियों का उपयोग करते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- रस-अम्ल, विपाक-कटु, गुण-अग्निदीपक, चक्षुष्य, कास, गुल्म, कण्ठविकार, अर्बुद आदि विकारों में उपयोगी बीजोरा निम्बू दीपन-पाचन, उदररोग एवं अग्निमांद्य में उपयोगी। निघण्टु ग्रन्थों में निम्बुक, मधुजम्बीर, नारंग, बीजपूरक, जम्बीर आदि जातियों का उल्लेख मिलता है। उपरोक्त जातियों के गुण प्रायः मिलते जुलते हैं।

गुण :– जम्बीरफलं रसेअम्लं मधुरं वातापहं पिक्तकृत् पथ्यं पाचन रोचनबलकरम्। पक्वं चेन्मधुरं कफार्तिशमनं पित्तास्त्रदोषापनुवर्ण्यं वीर्य विवर्धनं च रूचिकृत्पुष्ठिप्रदं सन्तर्पणम्।। "रा.नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - बिल्व,
हिन्दी - बेल,
लैटिन - Aegle marmelos com.



स्वरूप :- बेल के मध्यम आकार के वृक्ष पाये जाते हैं। काण्ड-बहुशाखीय, कण्टकित, भंगुर, पर्ण-त्रिदली, गुच्छादार, एकान्तर, पुष्प- श्वेत, सुगन्धित, फल- गोल, कठोर, मज्जायुक्त एवं बहुबीज वाला। छोटानागपुर एवं संथालपरगना क्षेत्र में सर्वत्र पाया जाता है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी पके बेल के फलों का उपयोग घरेलू चिकित्सा अतिसार, प्रवाहिका

में करते हैं। गर्मियों में इसका शर्बत बनाकर पीते हैं।

प्रजोज्य अंग-फल, छाल, पत्र।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- रस-मधुर, तिक्त, कषाय, वीर्य-उष्ण, विपाक, मधुर, गुण-ग्राही, दीपन, वात-कफशामक, आन्त्ररोगों में उपयोगी, अतिसार, प्रवाहिका मधुमेह।

योग - विल्वतैल (कर्णरोग बधिरता में उपयोगी) दशमूल घटकों में।

यथा – बिल्वमूलं त्रिदोषघ्नं, छर्दिघ्नं मधुरं लघुः।
बिल्वस्य फलं चाम्लं, स्निग्धं संग्राही दीपनम्।।
कटुतिक्त कषायोष्णं, तीक्ष्णं वातकफापहम्।। "ध.नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - कपित्थ,
स्थानिक - कैंथ, कठ,
लैटिन - Feronia elphantum Crr.

स्वरूप :- इसके मध्यम आकार के वृक्ष होते हैं। काण्ड-बहुशाखीय, पत्र- त्रिपत्रकसदृश, सुगन्धित, पुष्प-हरिताभ वर्ण के, फल-बेल सद्यश। पूर्णियाँ, रांची, हजारीबाग, मूंगेर आदि क्षेत्रों में इसके वृक्ष पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण लोग फलों को उपयोग घरेलू चिकित्सा में करते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- मधुर, अम्ल, गुरू, कफघ्न, श्वास, कास, अरूचिनाशक ग्राही एवं कण्ठशोधक।

यथा – कपित्थमाममस्वर्यं, कफघ्नं ग्राहीवातलम्।
कफानिलहरं पक्वं, मधुराम्लरसंगुरूः।
श्वासकासारूचिचहरं, तृष्णाघ्नं कण्ठशोधनम्।। "ध.नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - कैडर्य, पर्वतनिम्ब,
स्थानिक - मिठीनीम, गन्धेला,
लैटिन - Murrya koengii Sprery.

स्वरूप :- मीठीनीम के छोटे गुल्म एवं काण्ड बहुशाखीय होते हैं। पत्र - मसृण, तीव्रगन्धवाले, प्रासवत्, लट्वाकार, पुष्प-श्वेत, काण्डज, फल- मांसल एवं स्वाद में मधुर होते हैं। संथालपरगना एवं छोटानागपुर आदि स्थानों पर सर्वत्र उपलब्ध हैं।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण पत्तों का उपयोग दीपन, पाचन और ग्राही के रूप में करते हैं। भोजन सामग्री में पत्तों का उपयोग किया जाता है। गन्धेला के मूल स्त्रंसन होता है।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - बेली, बेलसैन,
लैटिन - Limonia crenulata Roxb.

स्वरूप :- इसके कण्टकित बहुशाखीय मध्यम आकार के वृक्ष होते हैं। पत्रक-अभिमुख, पक्षवत्, पुष्प-छोटे पीताभ- श्वेत, फल-गोल पकने पर कृष्णवर्ण के एवं सुगन्धित होते हैं। इसके वृक्ष पलामू, पूर्णियाँ, सिंगभूमि आदि क्षेत्रों में सर्वत्र सुलभ है।

स्थानिक प्रयोग :- मूलक्वाथ का उपयोग मवेशियों में किया जाता है।

विशेष :- संहिताग्रन्थों के आधार पर यह विल्वपर्णी हो सकती है। चरक ने सूत्रस्थान अध्याय २७ में विल्वपर्णी का उल्लेख किया है। कुछ टीकाकार तुलसी की प्रजातियों में विल्वपर्णी मानते हैं।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - बननिंबू, पितौंदी (गोंड)
लैटिन - Glycosmis pentaphylla Correa.

स्वरूप :- इसके बहुशाखीय गुल्म होते हैं। पर्ण-मसृण, अभिलट्वाकार, आयताकार, मसलने पर सुगन्धित, पुष्प-श्वेत वर्ण के होते हैं। इसके गुल्म पारसनाथ एवं संथालपरगना आदि क्षेत्रों में पाया जाता है। आदिवासी लोग घरेलु चिकित्सा में इसका उपयोग कृमिघ्न के रूप में करते हैं।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - तिरफल,
लैटिन - Zanthoxylum budaruga Wall.

स्वरूप :- इसके वृक्ष छोटे तथा मध्यम ऊँचाई के होते हैं। शाखायें सदलपर्ण मोटी टहनियों पर समूहवद्ध होकर रहते हैं। पत्रक आयताकार या प्रासवत् एवं दन्तुरधार वाले होते हैं। पुष्प-पीले, चतुरंगभागी और मज्जरियों में खिलते हैं। फल-दाने-दार नील-कृष्णवर्ण के स्वाद में कालीमीर्च के समान होते हैं। इसके वृक्ष राँची, पलामू, पूर्णियाँ एवं संथालपरगना के नंदी-नालों के आसपास पाये जाते हैं। इस पौधे की अन्य जाति भी इस क्षेत्र में पाई जाती है। जिसे Z. acanthopodium कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- फल-त्वक्, दीपन-पाचन, वातनाशक, उत्तेजक एवं मूत्रजनक माना जाता है।

अरिष्ठकुल - (SAPINDACEAE)

द्रव्य नाम :- संस्कृत - काकादनी (कर्णस्फोटा)
स्थानिक - गलफूला, कानाफार,
लैटिन - Cardiospermum halicabum L.

स्वरूप :- इसकी अरोही, सपर्णशील, मृदुलता होती है। पत्तियाँ द्विपक्षवत् एवं त्रिपत्रक होते हैं।

पत्रक लम्बाग्र एवं त्रिपत्रक होते हैं। पुष्प-श्वेत, सवृन्त्काण्डज एवं मज्जरियों में खिलते हैं। पुष्प-चतुरंगभागी और फल तीन-तीन खण्ड में विभक्त होते हैं। बीज कृष्णवर्ण के एवं सफेद निशान वाले होते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण लोग पत्तियों का उपयोग अनार्तव के लिये करते हैं। इसके क्वाथ सेवन करने से आर्तवजनन होता है। मूल और पत्र सन्धिवात में उपयोगी माना जाता है।

विशेष :- ठा. बलवन्त सिंह ने इस वनस्पति को संहिक्तोक्त काकादनी को स्वीकार करने हेतु अपने विचार व्यक्त किये हैं। निघण्टुग्रन्थों के आधार पर यह कर्णस्फोटा (कनफूल) है। बंगाल के बैद्य इसे तेजवती (ज्योतिष्मति) भी कहते हैं। पंचांग में साबुन तत्व भी पाया जाता है।

यथा – कर्णस्फोटा श्रुतिस्फोटा, त्रिपुटा कृष्णतण्डुला।
चित्रपर्णी स्फोटलता, चन्द्रिका चार्धचन्द्रिका।।
कर्णस्फोटा कटुस्तिक्ता, हिमासर्व बिषापहा।
ग्रहभूतादि दोषघ्नी, सर्पव्याधिविनाशिनी।। "रा.नि."

द्रव्य नाम :- स्थानिक - लीची,
लैटिन - Litchi Chinensis Sonner.

स्वरूप :- इसके बहुशाखीय गुल्म नुमा वृक्ष होते हैं। पत्र-मसृण अभिलट्वाकार तीक्ष्णाग्र होते हैं। पुष्प-हरितवर्ण के मज्जरी में खिलते हैं। फल - मांसल, मधुर पकने पर रक्ताभवर्ण की होती है। इसके वृक्ष बागों में लगाये हुये पाये जाते हैं। यह चाईना एवं कम्बोडिया का आदिवासी पौधा है। भारत में इसकी खेती की जाती है।

स्थानिक प्रयोग :- इसके फल मधुर ग्राही होते हैं।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - अरिष्ठक,
स्थानिक - रीठा,
लैटिन - Sapindus mukorossi Gae.

स्वरूप :- रीठा के सघन, छायादार, मध्यम आकार के वृक्ष होते हैं। पत्तियाँ आयताकार, अभिलट्वाकार एवं द्विविभक्त होते हैं। पुष्प-श्वेताभ, मज्जरी में, फल- आवरण युक्त रक्ताभवर्ण का एवं बीज कृष्णवर्ण का होता है इसकी अन्य जाति भी इस क्षेत्र में पाई जाती है। जिसे Sapindus trifoliatus कहते हैं। इसकी दोनों जातियों के वृक्ष लगाये हुये पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- फलों का उपयोग ग्रामीण कपड़े धोने के रूप में करते हैं। इसमें साबुन तत्व पाया जाते है। फल-वामक रेचक एवं सन्धिवातनाशक है।

आयुर्वेद औषध प्रयोग :- यह तीक्ष्ण, वामक एवं गर्भपातक गुणों वाला है।

यथा – अरिष्ठको बहुफेनः, फेनिलो वस्त्रधावनः।
अरिष्ठको भवेत्तीक्ष्णो, वामको गर्भपातनः।। "प्रिय.नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - कोशाम्र,
स्थानिक - कुसुम, बास,
लैटिन - Scheichera trijuga willd.

कुसुम के घने छायादार और सुन्दर वृक्ष होते हैं। पत्तियाँ पक्षवत् पत्रक-आयताकार अवृन्त और चिकने होते हैं। पुष्प-छोटे हरित पीतवर्ण के, फल -दानेदार एवं तीक्ष्णाग्र होते है। इस क्षेत्र में सर्वत्र इसके वृक्ष पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग बीज तैल का उपयोग चर्म रोगों में करते हैं। फल मज्जा खाई जाती है।

विशेष :- बीज तैल कृमि, कुष्ठ, विषघ्न एवं व्रण में उपयोगी है।

गुण :- सरं कोशाम्रजं तैलं, कृमि कुष्ठ व्रणापहम्।
तिक्ताम्लमधुरं बल्यं, पथ्यं रोचक पाचनम्।। "रा.नि."

पीलुकुल - (SALVADORACEAE)

द्रव्य नाम :- संस्कृत - पीलु,
स्थानिक - पीलु,
लैटिन - Salvadora persica L.

स्वरूप :- इसके बड़े एवं मध्यम आकार के बहुशाखीय गुल्म होते हैं। शाखायें नीचे झुकी दुर्बल होती हैं। पत्तियाँ आमने-सामने मासंल, अण्डाकार, आयताकार एवं गोल होती हैं। पुष्प-हरिताभश्वेत, फल-एक बीज वाला मांसल एवं सूघने पर राई सदृश गन्ध वाला होता है। संथालपरगना, पूर्णियाँ, हजारीबाग आदि क्षेत्रों में कहीं-कहीं इसके गुल्म पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण बीज तैल को रेचक एवं मूल छाल को स्वेदजनन एवं मूत्रल मानते हैं।

आयुर्वेदीय औषध प्रयोग :- कषाय, मधुर, अम्ल, सर, तीक्ष्ण, कफ-वातनाशक एवं गुल्म एवं अर्श में उपयोगी है। फल आकृति भेद से लघु एवं वृहत्पीलू दो भेद निघण्टुकारों माना है।

गुण :- रक्तपित्तहरः पीलु, फलं कटुविपाकि च।
अर्शोघ्नं बस्तिशमनं, सस्नेहं कफ वातजित्।।

अन्यश्चैव वृहत्पीलु, महापीलुः महाफलः।। "रा.नि."

कटुकाकुल - (SCROPHULARIACEAE)

द्रव्य नाम :- संस्कृत - ब्राह्मी, नीरब्राह्मी,
स्थानिक - जलनीम, एन्दरीवसई,
लैटिन - Bacopa monnieri Pnnel.

स्वरूप :- इसके नमदार स्थानों में परिसृत क्षुप होते हैं। पत्तियाँ मांसल, अभिलट्वाकार, स्त्रुवा के आकार की, अखण्ड, अवृन्त, एवं कुण्ठिताग्र होती हैं। पुष्प जामुनी एवं श्वेताभवर्ण के होते हैं। आदिवासी लोग जलनीम का उपयोग चिकित्सा में करते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी पंचांग का उपयोग त्वचा के विकार एवं रेचक के रूप में प्रयोग करते हैं। मस्तिष्क विकारों में भी इसके पंचांग का उपयोग किया जाता है।

विशेष :- ब्राह्मी एवं मण्डूकपर्णी को भिन्न-भिन्न वनस्पति शास्त्रकारों ने स्वीकार किया है। मण्डूकपर्णी को सेन्टिला एशाटिका कहते हैं।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - कोलाहल,
लैटिन - Celsia coromande-liana wall.

स्वरूप :- इसके एक वर्षायु क्षुप कृष्णाभवर्ण के होते हैं। पत्तियाँ अण्डाकार, लट्वाकार, लहरदार एवं दन्तुर तटवाली होती हैं। पुष्प- पीले मज्जरियों में लगे रहते हैं। फल-गोलाकार, चिकने और ग्रन्थियुक्त होते हैं। इसके क्षुप छोटानागपुर एवं चम्पारण के नदी नालों के आसपास पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग पत्र स्वरस का उपयोग चर्म रोग, रक्तार्श में एवं मूल का उपयोग पित्तज्वर एवं आँव में करते हैं।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - भीतचट्टी,
लैटिन - Linden-bergia urticacifolia.

स्वरूप :- इसके एक वर्षायु क्षुप होते हैं। पत्तियाँ लट्वाकार एवं आरावत् तटवाली होती हैं। पुष्प छोटे सूक्ष्मवृन्तवाले तथा पत्र कोणों से निकले होते हैं। ये क्षुप दीवालों एवं नदी नालों के किनारों पर पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- पुराने कफ रोगों में इसका स्वरस दिया जाता है। चर्म रोगों में पत्तियों का लेप किया जाता है।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - घंबुली, हेमचा,
लैटिन - Limnophila gratioloides Br.

स्वरूप :- इसके सुगन्धित क्षुप जलाशयों के आसपास पाये जाते हैं। पत्तियाँ खण्डित एवं चक्रिक क्रम में रहती हैं। पुष्प-श्वेताभ एवं गुलाबी रंग के होते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग पंचाग को व्रणरोपक, पूतिहर एवं रक्त कोशिकाओं के लिये संकोचक मानते हैं। हाथी पांव (फाईलेरिया) में पत्र स्वरस की मालीश करते हैं। पोन्टपोरू L. sessilifera का उदर विकारों में प्रयोग करते हैं।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - टांटधनियाँ, मधुपापूड़ी,
लैटिन - Scoparia dulcis L.

स्वरूप :- इसके स्वावलम्बी दुर्गन्धयुक्त एक वर्षायु क्षुप होते हैं। पत्तियाँ चक्रिकाक्रम में आमने-सामने एवं आरावत् होती है। पुष्प छोटे श्वेतवर्ण के एवं पत्रकोणों से निकले रहते हैं। पत्तियाँ स्वाद में मधुर होती है।

स्थानिक :- आंव में इसकी पत्तियाँ पीसकर चीनी के साथ आदिवासी प्रयोग करते हैं। बार-बार उपयोग करने पर यह वामक है।

कण्टकारीकुल - (SOLANACEAE)

द्रव्य नाम :- संस्कृत - कृष्णधतूर,
स्थानिक - कालाधतूरा,
लैटिन - Datura stramonium L.



स्वरूप :- इसके एक वर्षायु क्षुप होते हैं। काण्ड-हरा तथा अन्य जाति का कृष्णाभवर्ण का होता है। पत्तियाँ-अण्डाकार, लट्वाकार एवं खण्डित और दन्तुर तट वाली होती हैं। फल-अण्डाकार, काँटेदार एवं चार फांक में खुलने वाला होता है। बीज काले रंग के होते हैं। छोटानागपुर, संथाल परगना में अन्य जातियाँ भी स्वयंजात पाई जाती हैं। जिसे सफेद धतूरा Datura fastuosa कहते हैं। स्थानिक ग्रामीण इसे विषैला मानते हैं। पत्र

एवं बीजों को ग्रामीण शोथहर, कासश्वासहर के रूप में प्रयोग करते हैं।

आयुर्वेदीय प्रयोग :- कटु, उष्ण, त्वग्-रोग, ज्वरहर, कासहर एवं श्वासघ्न है। राजनिघण्टुकार ने उपविषों में इसका उल्लेख किया है। इसके तीन भेद हैं। श्वेतधतूर, कृष्णधतूर एवं राजधतूर।



गुण :- धुत्तूरः कटु रूष्णश्च, कान्तिकारी ब्रर्णार्तिनुत्।
कुष्ठानिलहन्तिलेपेन, प्रभावेण ज्वरं जयेत्।।
"रा.नि."



द्रव्य नाम :- संस्कृत काकमाची,
स्थानिक - मकोय,
लैटिन - Solanum nigrum L.

स्वरूप :- इसके स्वावलम्बी मृदु शाखाओं वाले क्षुप होते हैं। पत्तियाँ-अखण्ड, लहरदार, लट्वाकार एवं प्रासवत् होते हैं। पुष्प-मूर्धजक्रम में श्वेतवर्ण के होते हैं। फल- गोल, पकने पर काले एवं लाल रंग के होते हैं। संथालपरगना एवं छोटानागपुर में इसके क्षुप सर्वत्र पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- शाक के रूप में पत्रों का उपयोग करते हैं। बीज एवं पत्र मूत्रल और शोथघ्न मानते हैं।

आयुर्वेदीय औषध प्रयोग :- पंचाग-शोथघ्न, कटु, तिक्त, उष्ण, त्रिदोषघ्न, कुष्ठ, कण्डुनाशक।

यथा – काकमाची त्रिदोषघ्नी, रसास्वर्या स तिक्तका।
हन्तिदोषत्रयं कुष्ठं, वृष्या सोष्णा रसायनी।। "ध.नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - बृहती
(बड़ी कण्टकारी)
स्थानिक - अंजड, हंजड,
लैटिन - Solanum indicum L.



स्वरूप :- इसके ३ से ६ फीट ऊँचे कण्टकित बहुशाखीय गुल्म होते हैं। पत्तियाँ लट्वाकार, आयताकार, लहरदार या खण्डित पत्रतट वाली होती हैं। पुष्प-नील वर्ण के कभी-कभी श्वेताभवर्ण के। फल-पीले एवं मांसल होते हैं। छोटानागपुर के पलामू, सिंगभूमि एवं हजारीबाग के क्षेत्रों में कहीं-कहीं इसके पौधे पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त Solanum torvum एवं S. melongena वनभंडा दोनों जातियाँ इस क्षेत्र में पाई जाती हैं। बड़ी कटेली के नाम से उपयोग होता है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी फल का लेप शिरःशूल में करते हैं। पंचाग क्वाथ का प्रयोग कास में करते हैं। वनभंटा का भी उपयोग बृहती के नाम से किया जाता है।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- रस-तिक्त, कटु, वीर्य-उष्ण, विपाक-कटु, गुण-ग्राही, स्वेदल, वातकफहर, वातरोग, श्वास-कास, अग्निमांद्य, कफरोग एवं मूत्राधात में उपयोगी है। दशमूलघटक द्रव्यों में बड़ी कण्टकारी का उल्लेख है।

योग :- दशमूलक्वाथ, दशमूलारिष्ठ, दशमूल तैल,

गुण :– बृहती कटु तिक्तोष्णा, वातजित् ज्वरहारिणी।
अरोचकास कासघ्नी, श्वासहृद्रोग नाशिनी।। "ध.नि."

विशेष :- राजनिघण्टुकार ने सर्पतनु (बृहती बिशेष) श्वेतबृहती, (बृहतीबिशेष) एवं वृन्तावली (बृहतीबिशेष) से तीन जातियों का उल्लेख किया है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - कण्टकारी,



स्थानिक - कटेरी,
लैटिन - Solanum zanthocarpum Sch.

स्वरूप :- इसके कांटेदार प्रसरी क्षुप होते हैं। पत्तियाँ लट्वाकार, आयताकार, पक्षवत्, खण्डित होती हैं। पुष्प-गहरे नीले रंग के फल-गोल, चिकने एवं पकने पर पीतवर्ण के होते हैं। इसके क्षुप रेतली जमीन पर सर्वत्र पाये जाते हैं। इसकी अन्य जाति भी कहीं-कहीं इस क्षेत्र में पाई जाती हैं। जिसे S. khassianum कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग मूल एवं पंचांग को कफघ्न, कासघ्न एवं मूत्रल के रूप में प्रयोग करते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- रस-कटु, तिक्त, गुण- उष्ण, फल-वात नाशक, ज्वरघ्न, कासघ्न, श्वासनाशक एवं प्रतिश्यायहर है।

योग :- दशमूलक्वाथ, कण्टकारी अवलेह, दशमूलारिष्ठ।

गुण :- कण्टकारी कटुस्तिक्ता, तथोष्णा श्वासकासजित्।
अरूचिज्वर वाताम दोषहृदगदनाशिनी।। "ध.नि."

विशेष :- राजनिघण्टुकार ने लक्ष्मणा (वृहती विशेष) कासघ्नी वृहतीबिशेष एवं वृन्तावली (वृहती विशेष) से तीन प्रकार की जातियों का उल्लेख किया है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - अश्वगन्धा,
स्थानिक - असगंध,.
लैटिन - Withania Somnifera Don.

स्वरूप :- अश्वगन्धा के गुल्म २ से ४ फीट ऊँचे होते हैं। पत्तियाँ अखण्ड, लट्वाकार फल मूल क्रमशः संकुचित रहता है। पुष्प- छोटे, हरिताभ या पीताभ पत्रकोणों पर समूह रूप में पाया जाता है। फल-मांसल अनेकों बीजों वाले होते हैं। मूल मांसल स्टार्च युक्त एवं पुराना होने पर काष्ठीय होता है। जिसे जंगली असगंध कहते हैं। मध्य प्रदेश नागौर, कटनी आदि स्थानों पर बड़े पैमाने पर इसकी खेती की जाती है। जिसे नागोरी अश्वगन्धा कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग मूल का उपयोग कमजोरी, वातविकार तथा वल्य के लिये अश्वगंधा चूर्ण का दूध के साथ प्रयोग करते हैं।



आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- रस-मधुर, तिक्त, कषाय, वीर्य उष्ण, विपाक मधुर, गुण-बल्य, पौष्टिक, स्तन्यवर्धक, रसायन शुक्रसम्बन्धी रोग, वातव्याधि, स्नायुदौर्वल्य, मानसिक रोग एवं बालशोष में उपयोगी हैं।

योग :- अश्वगन्धा चुर्ण (धातुरोग) अश्वगन्धारिष्ठ (वातरोग)।

गुण :- अश्वगन्धा कषायोष्णा, तिक्तावात कफापहा।
विषव्रण क्षयान् हन्ति, कान्तिवीर्यवलप्रदाः।। "ध.नि."

टिप्पणी :- इस कुल की अन्य उपयोगी वनस्पतियाँ इस क्षेत्र में पाई जाती हैं। जिनका कि ग्रामीण लोग प्रायः खेती करते हैं एवं भोजन सामग्री में तथा धूम्रपान में इनका उपयोग करते हैं। (१) लालमीर्च - Capsiunm annum L., (२) आलू - Solanum tuberosum L, (३) टमाटर - Lycopersicum esculentum, (४) तम्बाकू - nicotiana tabacum, (५) रसभरी - Physalis peruviana इसके पौधे खेतों एवं बागों में लगाये हुये पाये जाते हैं।

चन्दनकुल - (SANTALACEAE)

द्रव्य नाम :- संस्कृत - (श्वेत) चन्दन,
स्थानिक - चन्दन,
लैटिन - Santalum album L.

स्वरूप :- इसके मध्यम आकार के वृक्ष होते हैं। काण्ड-बहुशाखीय पत्र-लट्वाकार, आमने-सामने मसृण होते हैं। पुष्प-पत्रक कोणिय, हरिताभ-पीताभ वर्ण के। फल-गोल एक बीज वाले होते हैं। पुरानाकाष्ठसार सुगन्धित एवं तैल युक्त होता है।छोटानागपुर एवं संथालपरगना के बागों में इसके वृक्ष लगाये हुये पाये जाते हैं। ग्रामीणलोग फोड़े-फुन्सी दबाने के लिये चन्दन का लेप करते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- रस तिक्त, कषाय, मधुर, वीर्य-शीत, विपाक-मधुर, गुण-मूत्रल, दाहशामक, तापहर, वृकविकार, मूत्रकृच्छ्र एवं पूयमेह में उपयोगी।

योग :- चन्दनासव (पूयमेह एवं मूत्रविकार)

योग – श्रीखण्डं शीतलं स्वादु, तिक्तं पित्तविनाशनम्।

यथा – रक्तप्रसादनं वृष्यं अन्तर्दाहापहारकम्।।
पिक्तास्त्र बिषतृड्, दाह कृमिघ्न गुरूरूक्षणम्।।
सर्वं सतिक्तमधुरं मधुरं चन्दनं शिशिरपरारम्।। "ध.नि."
चन्दनं द्विविधं प्रोक्तं बेट्टसुक्काडिसंज्ञकमू।
बेट्टं साद्रविच्छेदं स्वयं शुष्कं तु सुक्कडि।
मलयाद्रिसमीपस्था पर्वताबेट्ट संहिता।। "रा.नि."



संस्कृत साहित्य में चन्दन :- बाल्मिकीय रामायण में चन्दन का उल्लेख अयोध्याकाण्ड में राज्यभिषेक के समय धूप के लिये, रामाश्वमेघ यज्ञ में, भारद्वाज के आश्रम, चित्रकूट में पंचवटी में, किष्कन्धा काण्ड के पंपासर में, बाली के दाह संस्कार में मलयागिरी में, रावण के अंगों पर लेपन के लिये लंका के अशोक वाटिका में , रावण द्वारा शिव के पूजन के उपयोग में, उवटन के लिये, कैलाश में रम्भा अप्पसरा के देह पर प्रलेप के लिये आदि कतिपय प्रसंगों में श्वेत चन्दन का वर्णन मिलता है। चन्दन काष्ठ अति सुगन्धित होने के कारण उन पर सर्प लिपटे रहते हैं। ऐसा प्रसंग रघुवंश महाकाव्य में मिलता है। राजा रघु ने मलय पर्वत पर चन्दन के वृक्ष देखे। कवि ने ऋतुसंहार नामक खण्डकाव्य में ग्रीष्म कालीन ताप निवारण हेतु चन्दन लेप का निर्देश किया है।

यथा – पयोधराः चन्दनपङ्क, शीतला,
स चन्दनाम्बु व्यजनोदभवानिलः।। "ऋतु संहार"
स्तनेषु गौरषु विलासिनीभिः।
आलिप्यतेचन्दनमङ्गनाभिः।
करोती कामः प्रमदाजनानाम्।। "ऋतु संहार"

लोघ्रकुल - (SYMPLOCACEAE)

द्रव्य नाम :- संस्कृत - लोघ्र,
स्थानिक - लोघ, लुदम्, लोदम,
लैटिन - Symplocos racemosa Roxb.

स्वरूप :- लोध के छोटे-छोटे वृक्ष होते हैं। पत्तियाँ-आयताकार, अण्डाकार, प्रासवत् एवं आरावत् दन्तुर होती हैं। पुष्प-श्वेत, सवृन्त, पीताभ मञ्जरियों में। फल-अष्ठिल, आयताकार कृष्णाभ वर्ण के होते हैं। लोध की अन्य जाति सिंगभूमि आदि स्थानों में पाई जाती हैं।

स्थानिक प्रयोग :- संग्राही के रूप में छाल का आदिवासी लोग उपयोग करते हैं। छाल को शोथघ्न एवं व्रणरोपण के रूप में भी उपयोग किया जाता है। रंगने के रूप में काष्ठ एवं छाल का उपयोग करते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- रस-कषाय, वीर्य, शीत, विपाक-कटु, गुण-लघु, ग्राही, चक्षुष्य, कफ-पितशामक, रक्तविकार, श्वेतप्रदर, अत्यार्तव, ज्वर, अतिसार में उपयोगी।

योग :- लोघ्रासव (श्वेतप्रदर)

गुण :- लोघ्र शीतकषायश्च हन्तितृषामरोचकम्।
विषविध्वसनः प्रोक्तो, रूक्षोग्राहीकफापहः।।
लोघ्रयुग्मं कषायं तु, शीतं वातकफास्त्रजित्।

विशेष :- राजनिघण्टुकार ने दो प्रकार के लोघ्र पट्टिका लोघ एवं शावरक लोध का उल्लेख किया है।

संस्कृत साहित्य में लोघ्र :- बाल्मिकीय रामायण में लोघ्र का उल्लेख अयोध्याकाण्ड के चित्रकूट के प्रसंग में पंपासर के अरण्य में, हिमालय पर्वत पर, विन्ध्यपर्वत पर, आदि स्थलों पर लोघ्र का वर्णन है। महाकवि कालिदास ने अपने काव्यों में लोघ्र का उल्लेख लेपन एवं मुखमण्डन हेतु प्रसंग में किया है। कवि ने हेमन्तकाल में पुष्पित लोघ्र पुष्प का उल्लेख किया है।

प्रफुल्ल लोघ्र परिपक्व शालीः।
बिलीनपंतत् प्रपतत्तुषारो,
हेमन्तकालः समुपागतः "ऋतु संहार"
नीता लोघ्र प्रसव रजसा, पाण्डुलताभानने श्रीः।। "मेघदूत"

मुचुकुन्दकुल - STERCULIACEAE

द्रव्य नाम :- संस्कृत - आवर्तनी,

स्थानिक - ऐंठनी, मरोड़फीली,
लैटिन - Helicters isora L.

स्वरूप :- इसके गुल्म, बहुशाखीय होते हैं। पत्तियाँ असमान, पाणिवत्, पुष्प-टेडे अनियताकार एवं सिन्दूरवर्ण के होते हैं। फल-कुन्तलक्रम में लिपटे हुये, ऐंठनी की तरह होते हैं। इसी कारण इसे मरोड़फली कहते हैं। इस क्षेत्र में सर्वत्र इसके गुल्म पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी मूल और फल का उपयोग शूल में करते हैं। पेट की विमारियों में इसके चूर्ण को घी-शक्कर के साथ भूनकर दिया जाता है। आन्त्र के मरोड़ में भी फलचूर्ण का उपयोग संथालरगना क्षेत्र के आदिवासी लोग करते हैं। बच्चों के दूध के अपचन में इसके फलों को बच्चों के गले में बांधते हैं।

आयुर्वेदिय औषध उपयोग :- कषाय, शीतल, तिक्त, ग्राही। अतिसारनाशक, कृमि, कुष्ठ नाशक है।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - मस्वामी, सरकापीरेड,
लैटिन - Buettendria herbacea coleber.

स्वरूप :- अनेक शाखाओं वाला क्षुप होता है। पत्तियाँ लट्वाकार, प्रासवत्, लम्बाग्र, पलामू में कहीं-कहीं इसके क्षुप पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी इसे सरकापी-रेड कहते हैं। जिसका अर्थ है शेर और कापी (लोहु को काटने वाला हथियार) द्वारा बने हुये घाव भरने वाली वनस्पति। गाँव में इसे मस्वामी कहते है। इनका कहना है कि इस बूटी के प्रयोग से मांस जुड़ जाता है। संथाली में इसे इदेलसांगा कहते हैं। संरोहणी नामक बूटी सम्भवतः हो सकती है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी मूल को उत्तम व्रणरोपक मानते हैं। असके मूल का लेप करने से मांस जुड़ जाता है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - बन्धूक,
स्थानिक - दुफरिया, वारिवाह,
लैटिन - Pentapetes phorvicea Linn.

स्वरूप :- इसके बहुशाखीय क्षुप होते हैं। पत्तियाँ प्रासवत् लम्बाग्र एवं दन्तुर होती हैं। पुष्प-बड़े रक्तवर्ण और नीचे की ओर लटके रहते हैं। यह जलाशयों में पाया जाता है। तथा दोपहर के समय इसके पुष्प खिलते हैं। इसी कारण इसे दुपहरिया फूल कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग सर्पविष में इसका उपयोग करते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- यह ज्वरहर, भुतवाधाहर एवं वामक है। पुष्प भेद से यह श्वेत, रक्त पीत एवं असितभेद से चार प्रकार का होता है।

गुण – ज्वरहारी विविध ग्रह पिशाचशमनः सवितुः स्यात्।। "रा.नि."

संस्कृत साहित्य में बन्धूक :- बन्धूक पुष्प की मान्यता संस्कृत साहित्य में रक्तवर्ण के पुष्पों के लिये सुप्रसिद्ध है। आज भी दुर्गा की पूजा में बन्धूक पुष्प का विशेष महत्व है। शरत्कालीन प्रकृतिसुषमा में रक्तवर्ण पुष्प का उल्लेख कवियों ने कतिपय स्थलों पर किया है। प्रमदवनों, पुष्पोद्यानों,अन्तःपुरू के क्रीडाद्यानों में इस वनस्पति के आरोपित करने का वर्णन मिलता है। प्रकृति के शरत्कालीन सुषमा समृद्धि में महाकवि कालिदास ने कतिपय स्थलों पर उल्लेख किया है। परिणयोपरान्त शिव-पार्वती के प्रसंग में श्रृंगारी सुषमा के रूप में बन्धूक का वर्णन मिलता है। तत्कालीन नारी समाज में शिरीष, चम्पक आदि अन्य अलंकारभरणीय एवं प्रसाधनिक पुष्पों की भांति बन्धूक पुष्प का भी चित्रण किया है। अधरोष्ठ की प्रबृद्ध लालिमा की उपमा बन्धूक पुष्प से देते हैं।

यथा – इत्थं मधूत्थं रसमुद्गिरन्ती, तदोष्ठबन्धूकर्धनुविर्सष्ठा। नैषध।।
निधाय बन्धूक दलं कपोलयो उपमाबिशेषः ।।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - मुचकुन्द,
स्थानिक - मुचकुन्द,
लैटिन - Pterospermus acerifolium willd.

स्वरूप :- मुचकुन्द सुन्दर एवं ऊँचे वृक्ष होते हैं। पत्तियाँ बड़ी चौड़ी, अखण्डित या कभी-कभी खण्डित, दन्तुर, शिराविन्यास पाणिवत् पुष्प बड़े श्वेत और गन्धयुक्त हाते हैं। इसके क्षुप उत्तरी चम्पारण के जंगलों में संथालपरगना क्षेत्र मे पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग पुष्पों का लेप शिरःशूल मे करते हैं। पत्तों का उपयोग पत्तलों के रूप में किया जाता है।

आयुर्वेदीय उपयोग :- कटु तिक्त, कफघ्न, त्वगदोषहर शोफ, वर्ण एवं पामानाशक है।

यथा – मुचकुन्दः कटुतिक्त, कफकास विनाशनश्च।
त्वगदोष शोफ शमनों, वर्ण पामा विनाशनश्चैव। "रा.नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - उद्दालक, कतीरा,
स्थानिक - उदालो, कौझी,
लैटिन - Sterculia urens Roxb.

स्वरूप :- इसके मध्यम आकार के वृक्ष होते हैं। पत्तियाँ, खण्डित ५ भागों में विभक्त, पुष्प लाल

एवं भूरे वर्ण के होते हैं। वृक्ष की छाल सफेद कागज़ की तरह छूटने वाली होती है। पथरीली पहाड़ियों पर इसके वृक्ष पाये जाते हैं। इससे कतीरा गोंद निकलता है।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण लोग कतीरा गोंद का उपयोग बल्य के रूप में करते हैं। छाल का उपयोग कास में किया करते हैं एवं बीजों को खाते हैं।

विशेष :- उद्दालक नामक द्रव्य के बारे में मतभेद है। कुछ टीकाकार कोद्रव (कोदों) क्षुद्रधान्य का मानते हैं। तथा कुछ विद्वान वहुवार (cordiamyxa) को मानते हैं।

यथा – उद्दालको वनको द्रवः उल्हनः, उद्दालः काञ्चनः गंगाधरः

परूषककुल - (TILIACEA)

द्रव्य नाम :- संस्कृत - चञ्चु,
स्थानिक - चेंच, पाट,
लैटिन - Corchorus capsularies L.

स्वरूप :- इसकी कतिपय जातियाँ संथालपरगना एवं छोटानागपुर क्षेत्र में राँची, पलामू, सिंगभूमि, नेतराहट आदि क्षेत्रों में पाई जाती है। इनके पौधे २ से ४ फुट तक ऊँचे होते हैं। पत्तियाँ प्रासवत् आयताकार, लम्बाग्र एवं दन्तुर होती हैं। फल गोल होते हैं। ये जातियाँ इस प्रकार से हैं। (१) चेंच - C. olitorius, (२) बड़ाचेंच - C. trilouilaris, (३) बड़ाचेंच - C. auetangulus आदि जातियाँ पाई जाती हैं। निघन्टुकारों ने चञ्चु भेद से तीन जातियों का उल्लेख किया है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग बीजों का प्रयोग बल्य एवं संग्राही के रूप में इन जातियों का उपयोग करते हैं। पत्ती का उपयोग भी स्थानिक चिकित्सा में करते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- मधुर, तीक्ष्ण, कषाय, मलशोधक, गुल्म, उदर, विबन्ध, अर्श, ग्रहणी आदि रोगों में उपयोगी।

**गुण :- चञ्चुस्तु मधुरा तीक्ष्णा, कषायामशोषणी।
गुल्मोदर विवन्धार्शो, ग्रहणी रोगहारिणी।
महाचञ्चुः कटूष्णा च, कषाया कलरोधनी।
क्षुद्रचञ्चु मधुरा कटूष्णा च, कषायिका।। "रा.नि."**

चञ्चु बीजं कटूष्णां च, गुल्मशूलादरार्तिजित्।। "ध.नि"

द्रव्य नाम :- संस्कृत - रूद्राक्ष,
लैटिन - Elacocarpus ganitrus Roxb. (Elaeocarpaceae)



स्वरूप :- इसके मध्यम आकार के वृक्ष होते हैं। पत्तियाँ अण्डाकार, प्रासवत्, सूक्ष्म-दन्तुर एवं चिकनी होती हैं। पुष्प-श्वेत मञ्जरी में फल गोल, गुठलीदार बीज-उभार युक्त होते हैं। पुर्णियाँ एवं हजारी बाग में इसके वृक्ष कहीं-कहीं बागों में पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग इसके बीजों की माला बनाकर पहनते हैं। माला धारण करने से हृदय विकार एवं रक्तचाप में लाभ होता है।

आयुर्वेदीय उपयोग :- उष्ण, वातघ्न, कफनाशक, शिरोविकारहर एवं भूतवाधा हर, संहिताग्रन्थों में रूदाक्ष का उल्लेख नहीं है।

गुणः– रूद्राक्षमम्लमुष्णं च, वातघ्नं कफनाशनम्।
शिरोर्तिशमनं रूच्यं भुतग्रह विनाशनम्।। "रा.नि."

शिवपुराण में रूदाक्ष की विशेष महिमा बताई गई है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - धन्वन,
स्थानिक - धामिन,
लैटिन - Grewia tiliafolia vahl.

स्वरूप :- फालसा के बहुशाखीय छोटे-छोटे वृक्ष होते हैं। पत्तियाँ लट्वाकार, अभिलट्वाकार, सवृन्त एव कुण्ठिताग्र होते हैं। पुष्प-पीतवर्ण के फल मांसल होते हैं। फालसा के नाम से ४ - ६ जातियों की किस्मे पाई जाती हैं। पटधामिना, कालाधामिना नाम से ग्रामीण कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग इसके पके फलों को खाते हैं। छाल का उपयोग रक्तातिसार में प्रयोग करते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- मधुर, कषाय, वीर्य-शीत, विपाक-मधुर, गुण रूक्ष, लघु, वृंहण, बल्य, त्रिदोषशामक, रक्तातिसार, कास एवं व्रण रागों में उपयोगी है।

गुण :– धन्वन रक्तकुसुमों, धनुवृक्षों–महाबलः।
धन्वन कटु कोष्णश्च, कषायः कफनाशनः।

दाहशोषकरो ग्राही, कण्ठामयशमप्रदः।। "रा.नि."



द्रव्य नाम :- संस्कृत - परूषक,
स्थानिक - फालसा,
लैटिन - Grewia asiatica L.

स्वरूप :- इसके प्रसिद्ध फलदार वृक्ष होते हैं। प्रायः बागों में लगाये जाते हैं। पर्ण-लट्वाकार या अभिलट्वाकार, पुष्प पीताभ नारंगी वर्ण के होते हैं। फल-मांसल जामुनी रक्ताभ वर्ण के होते हैं। इसकी अन्य जाति भी इन क्षेत्रों में पाई जाती है। जिसे डभेर, गुड़भेली G. scleophylla ओलट G. elastica कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- पके फल खाये जाते हैं। छाल का उपयोग संथाल के आदिवासी अतिसार एवं प्रवाहिका में करते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- अम्ल, मधुर, वात-पितशामक, रूचिकर, शोफहर।

परूषमम्लं कटुकुं, कफार्तिजिद्वातापहं तत्फलमेवपित्तदम्।
सोष्णं च पक्वं मधुरं, रूचिप्रदं पित्तापहं शोफहरं चपीतम्।। "रा.नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - नागबला, गांगेरूकी,
स्थानिक - गुलसकरी, सेतारेपड़ी,
लैटिन - Grewia hirsuta vahal.

स्वरूप :- इसके बहुशाखीय गुल्म होते हैं। पत्तियाँ रेखाकार, लट्वाकार, आयताकार एवं तीक्ष्ण दन्तुर होती हैं। पुष्प-पीतवर्ण के फल चारखण्ड वाले और मृदु रोमों से युक्त होते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग मूल का उपयोग शुक्रदौर्बलय में करते हैं। फोड़े पकने पर इसके छाल का उपयोग किया जाता है। सर्वागंवेदना णएवं शोथ में मूल का उपयोग करते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- मधुर, अम्ल, कषाय, उष्ण, कण्डू, कुष्ठ, एवं वर्ण विकारों में उपयोगी है।

गुण :– मधुराम्ला नागबला कशायाष्णा गुरूः स्मृता।
कण्डूति कुष्ठवातध्नी व्रणपित्तविकारलित्।। "रा.नि."

विशेष :- वलापञ्चक में नागबला का उल्लेख मिलता है। कुछ विद्वान गागेरूकी से नागबला का प्रयोग करते हैं। एवं कुछ विद्वानो के मत में गुलशकरी से गुडशर्करा है।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - झिंझिरीटा,

स्वरूप :- इसके ३ से ४ फीट ऊँचे बहुशाखीय गुल्म होते हैं। पत्तियाँ त्रिखण्डित एवं अधर तक रोमश होते हैं। फल-कण्टक सद्यश होते हैं। इसके गुल्म अधिक मात्रा में सर्वत्र पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- मूलक्वाथ को अतिसारनाशक, कषाय एवं वल्य मानते हैं।

विशेष :- राजनिघन्टुकार ने इसे झिंझिरीटा के नाम से उल्लेख किया है। यह कटु, शीत, कषाय, अतिसारनाशक, बल्य एवं बृष्य मानते हैं।

गुण :- झिंझिरिटा कटुः शीता कषायाचातिसारजित्।
बृष्यां सन्तर्पणीवल्या, महिषीवृक्षवर्धिनी।। "रा.नि."

एरकाकुल - (TYPHACEAE)

द्रव्य नाम :- संस्कृत - एरका,
स्थानिक - होगल
लैटिन - Typha elephantina Roxb.

स्वरूप :- यह तृण जाति की वनस्पति है। जो कि जलप्रायः स्थानों में समूहबद्ध होकर पेदा होती है। पत्तियाँ काफी लम्बी एवं नतेदर हाती हैं। पुष्प वाहक काण्ड के अग्रभाग पर नर एवं नारी पुष्प व्यूह में होते हैं। इसकी दूसरी जाति भी पाई जाती है। जिसे Typha angustata कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- मूलचूर्ण का वाहृय उपयोग घाव पर करते हैं। यह शीतल, मूत्रल, एवं अश्मरीहर होता है।

आयुर्वेदीय उपयोग :- यह शीतल, मुत्रल, बुष्य, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी एवं रक्तपित्त नाशक है।

गुण :- एरका शिशिराबृष्या, चक्षुष्या वातकोपनी।
मूत्रकृच्छ्राश्मरीदाह, पित्तशोणित नाशनी।। "कै.नि."

ढाहीकुल - (TACCACEAE)

द्रव्य नाम :- स्थानिक - ढाही,
लैटिन - Tacca pannififida¦ Fkorest

स्वरूप :- यह बहुशाखीय कन्द वाली वनस्पति है। पत्तियाँ मांसल, मूलीय त्रिविभक्त एवं लम्बे बृन्त

वाली होती है। देखने में यह पौधा सूरण के पत्र सद्यश होता है।

स्थानिक प्रयोग :- ढाही के कन्द कटु तिक्त और विषेले होते हैं। ग्रामीण लोग इन कन्दो को काटकर एवं बार-बार पानी में धोने के बाद इसका उपयोग आंव में करते हैं।

विशेष :- यह रसबन्धन में वाराहीसद्यश कन्द है। यह गृष्ठीका कन्द सद्यश बल्य एवं रसायन गुणों में उपयोगी है। यह बाहरी सद्यश महौषधि है। सम्भवतः यह चण्डाल कन्द है।

यथा – मुशलीकन्दवत् कन्दा, एकपत्र द्विपत्रक।
सुक्षीरा रोमशा सोक्त, वाराही रसवन्धनी।। "रा.नि."

चण्डालकन्द :–

प्रोक्तः चण्डालकन्दः स्यात्, एकपत्रद्विपत्रक।
चण्डालकन्दों मधुर, कफपित्तास्त्रदोषजित्।
विषभूतादि दोषघ्नी, विज्ञेयेश्च रसायनः।। "रा.नि."

चायकुल - (TERNSTROEMIACEAE)

द्रव्य नाम :- स्थानिक - चाय,
लैटिन - Camellia sinenesis (Linn) cuntze (sy. c.theifera)

स्वरूप :- चाय के बहुशाखीय गुल्म होते हैं। इनके गुल्म बागों में लगाये हुये पाये जाते हैं। छोटानागपुर के पारसनाथ की पहाडियों पर आज भी इसके गुल्म पाये जाते हैं। नवीन पत्तियों का उपयोग चायपत्ती के लिये किया जाता है।

चिरविल्कुल - (ULMACEAE)

द्रव्य नाम :- संस्कृत - चिरविल्व, चचोर, करञ्जी,
स्थानिक - चिलविल,
लैटिन - Holoptelea intergrifolia planch.

स्वरूप :- चिलविल के मध्यम आकार के वृक्ष होते हैं। वृक्ष की पत्तियाँ दो कतारों में विभक्त होती हैं। आकार में पत्तियाँ लट्वाकार, अखण्ड एवं नोंकदार होती हैं। पुष्प, हरित, सुक्ष्म और पतझड़ होती हैं। फल सपक्ष एवं नताग्र होते हैं। इसके बीज तैलीय होते हैं। इस क्षेत्र में इसके वृक्ष सर्वत्र पाये जाते हैं। पत्तियों में दुर्गन्ध होती है।

स्थानिक प्रयोग :- बच्चे बीजों को खाते हैं। ग्रामीण लोग शोथहर के रूप में प्रयोग करते हैं।

विशेष :- चिरविल को शोथहर एवं सर माना गया है। आयुर्वेद में तीन करंज भेदों में चिरविल भी करञ्जी मानते हैं। चरक भेदनीय गुण में इसका नाम पत्राकुल औषध में प्रयुक्त किया जाता है। यह तिक्त, सारक तथा आध्मान, आनाह एवं गुल्म में विशेष लाभ करता है।

गुण :- चिरविलः सरस्तिक्तो, बीर्योष्णों गुल्मभेदनः।
आनाहे जठराध्माने, शूले, गुल्में प्रशस्यते।। "प्रिय.नि."

निधन्टु ग्रन्थों में कण्टककरंज, पूतिकरंज, महाकरंज, कुवेराक्षी, उदकीर्या, चिरविल्व, प्रकीर्य एवं अंगारल्लिका आदि पर्यायों एवं भेदों का उल्लेख है।

वृश्चिकाकुल - (URTICACEAE)

द्रव्य नाम :- संस्कृत - वृश्चिकाली,
स्थानिक - विच्छुबूटी,
लैटिन - Girardina heterophylla Dcne.

स्वरूप :- विच्छुबूटी के ४ से ६ फीट ऊँचे बहुशाखीय पौध होते हैं। समस्तकाण्ड दंशक रोमों से ढके होते हैं। पत्र अभिलट्वाकार, खण्डित, दन्तुर होते हैं। पुष्प मञ्जरियों में हरिताभ होते हैं। इस क्षेत्र में यह वनस्पति दो हजार फीट के ऊँचे स्थानों पर पाई जाती है। इसके दंशक रोवों के शरीर पर लगने से खुजली एवं छाले होते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- नवीन पत्तों को उबाल कर शबजी खाई जाती है। मूल क्वाथ का उपयोग शिरोवेदना में करते हैं।

विशेष :- सम्भवतः यह वनस्पति वृश्चिकाली हो सकती है। कुछ विद्वानों के विचार से Pergularia extensa का मूल वृश्चिकाली है। इस पर अध्ययन किया जा रहा है। नाडकर्णि ने Trigia involcratia को वृश्चिकाली लिखा है।

गुण :- वृश्चिकाली कटुस्तिक्ता, सोष्णा हृत्वक्त शुद्धिकृत्।
रक्तदोषहराबल्या, विबन्धो रोचका पहाः।। "नरहरि"

शतपुष्पाकुल - (UMBELIFEREA)

द्रव्य नाम :- संस्कृत - यवानी,
स्थानिक - अजवान,
लैटिन - Carum copticum Benth.

स्वरूप :- इसके एक वर्षायु क्षुप होते हैं। पत्तियाँ खण्डित, रेखाकार प्रासवत् पुष्प श्वेत वग। के होते

हैं। इस क्षेत्र के किशन गंज में इसकी खेती की जाती है। घरेलू चिकित्सा में बीजों एवं मूल का उपयोग किया जाता है।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- दीपन, मूत्रल, गुल्मनाशक, वातघ्न एवं वातशलेमनाशक माना गया है। आजमोद के नाम Apium graveolens के बीजों का उपयोग विशेष रूप से किया जाता है।

गुण :- यवानी कटुतिक्तोष्णा वातश्लेष्मा द्विजामयान्।
हन्तिगुल्मोदरं शूलं, दिपयत्याशुचानलम्।। "रा.नि."

राजनिघन्टुकार ने यवानी, यवानिका एवं यवानीविशेष इन तीन किस्मों के गुण धर्मों का अलग-अलग उल्लेख किया है।



द्रव्य नाम :- संस्कृत - ब्राह्मी, मण्डूकपर्णी,
स्थानिक - चोक-आ, वेंगशाक,
लैटिन - Centella asiatica (Linn) Urban.

स्वरूप :- यह नमदार स्थानों में मिलने वाली प्रसरणशील वनस्पति है। इसके पत्र भिन्न-भिन्न प्रकार के पाये जाते हैं। पत्र ग्रन्थियों से मूल निकलते हैं। पत्र गोल, बृकाकार, अखण्ड, गोलदन्तुर एवं सबृन्त होते हैं। पुष्प श्वेताभ वर्ण के फल और बीज चपटे होते हैं। इसकी अन्य जाति भी छोटानागपुर के नेतरहाट आदि स्थानों पर पाई जाती हैं। जिसे Hydrocotyle rotundifoilia कहते हैं।
स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग पत्रों का उपयोग शाकों में करते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- यह तिक्त, कषाय, मधुर, वीर्यशीत, विपाक मधुर, गुण-रसायन मेध्य, स्वर्य, हृद्य, बातकफशामक, निद्राजनक, रोगोपयोग-कुष्ठ, प्रमेह, ज्वर, कास, वात-रक्त एवं मस्तिष्क रोग में उपयोगी।

योग :- ब्रह्मींपाक (स्मरणशक्ति) सारस्वारिष्ठ (मेध्ययाग) सारस्वतचूर्ण (स्वर्य)

गुण :- ब्राह्मी हिमाकषाया च, तिक्तावातास्त्रपित्तजित्।
बुद्धि प्रज्ञां च मेधां च, कुर्यादायुष्यवर्द्धनी।। "कैय्यदेव"

यथा – ब्राह्मी लघुतिक्तरसा सोष्णा सरावात शोफजित्। "रा.नि."

टिप्पणी :- मण्डुकपर्णी एवं ब्राह्मी दोनों भिन्न-भिन्न वनस्पति हैं। ऐसा विद्वानों का मत है कि ब्राह्मी Bacopa moneieri एवं मण्डुकपर्णी Cantalla asiatica है। नरहरि ने क्षुद्रब्राह्मी भिन्न जाति की वनस्पति मानी है। जो कि ब्राह्मी से भिन्न है। सम्भवतः क्षुद्रब्राह्मी Hydrocotyle की जातियों में है।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - वनमसाल
लैटिन - Peucedanum dhana Ham.

स्वरूप :- इसके एक वर्षायु क्षुप होते हैं। पत्र मूलोद्भव आयताकार प्रासवत् एवं तीन-तीन शिराओं वाले होते हैं। पुष्प-छोटे पीले, सवृन्त मूर्धजक्रम में खिलते हैं। छोटानागपुर के नेतरहाट जिले में इसके पौधे पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग मूल को उत्तम पोष्ठिक मानते हैं।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - कामराज, तिड़रीवांसी,
लैटिन - Peuecedanum nagprense.

स्वरूप :- इसके स्वाबलम्बी ३ से ४ फीट ऊँचे क्षुप होते हैं। मूल कन्द सद्यश, काण्ड पोला, चमकदार और रेखायुक्त होते हैं। पुष्प हरित भूरे रंग के होते हैं।फ फल पंखदार होते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- मूल का उपयोग शुक्रदोर्बल्य के रूप में किया जाता है। मूत्रकृच्छ्र में मिश्री में साथ इसके कन्द का सेवन किया जाता है। इसका मूल दीपन एवं पाचन गुणों वाला माना जाता है। यह वृष्य एवं मूत्रल द्रव्य है। यह आठ राजों में मूख्य कन्द है। जबकि कामराज, भोजराज, सेवराज, वलराज आदि भेद मध्यप्र देश, बिहार, उत्तरप्रदेश के आदिवासी क्षेत्रों में प्रचलित है।

टिप्पणी :-कामराज, कामबृद्धि में उपयोगी एवं वाजीकर द्रव्य है। शतपुष्पाकुल में कुछ घरेलू एवं आयुर्वेद चिकित्सा उपयोगी वनस्पतियाँ इन क्षेत्रों में पाई जाती हैं। जिनका मसालों के रूप में भी उपयोग किया जाता है। इनके नाम इसे प्रकार हैं। (१) धान्यक (धनिया) - Coriandrim sativumn L. (२) मिश्रेया (सौफ) - pencedium sowa Kurz. (३) गृजनक - (गाजर) - Dencus Corata L. (४) मिश्रेया (सौंफ) - Foeniculum vulgare अधिकतर लेखकों के विचार से गृजनक गाजर नहीं है। उनके विचार से शास्त्रीय पलाण्डू (प्याज) का प्रकार भेद है। जो कि लशुन कन्द सद्यश होता है। गृजनक गर्जरम्इति।।

वनप्शाकुल - VIOLACEAE

द्रव्य नाम :- स्थानिक - रतनपुरूष, चराति,

लैटिन - Hydarthos enneaspermus F. Muell.

स्वरूप :- इनके बहुशाखीय गुण होते हैं। पत्तियाँ कुन्तलक्रम में अवृन्त और भालाकार होती हैं। पुष्प एकांकी और गुलाबी वर्ण के होते हैं। छोटानागपुर में कहीं-कहीं इसके गुल्म पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- मूलपचांग शीतल एवं मूत्रजनन माना जाता है। मधुमेह और शिरःशूल में अधिक उपयोगी मानते हैं।



द्रव्य नाम :- यूनानी - बन्पशा,
लैटिन - Viola serpens Wall.

स्वरूप :- इसके एक बर्षायु क्षुप होते हैं। छोटानागपुर के ऊँचाई बाले क्षेत्र नेतरहाट आदि स्थानों में इसके क्षुप पाये जाते हैं। इसके पुष्प कुछ श्वेताभ गुलाबी रंग के होते हैं। बहुत कम मात्रा में इसके पौधे ऊँचाई बाले क्षेत्रों में पाये जाते हैं। आदिवासी लोग पचांग का उपयोग खांसी-नज़ले में करते हैं।

निर्गुण्डीकुल - VERBENACEAE



द्रव्य नाम :- संस्कृत - प्रियङ्गु, गन्धप्रियङ्गु,
लैटिन - Callicarpa macrophylla Vall.

स्वरूप :- इसके बहुशाखीय गुल्म पाये जाते हैं। पत्तियाँ अण्डाकार, कभी-कभी लट्वाकार, प्रासवत् एवं पत्रतट गोल दन्तुर होते हैं। पुष्प गुच्छों में पत्रकोणीय एवं गुलाबी रंग के होते हैं। चम्पारण, पूणिया, राँची, सिंहभूमि एवं संथालपरगना क्षेत्र में इसके गुल्म पाये जाते हैं। कुछ लोग इसके पुष्प को प्रियङ्गु मानते हैं। आदिवासी लोग कच्चे फलो का उपयोग मूखपाक में करते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- बीज एवं पत्र गन्ध युक्त होने से गन्धप्रियङ्गु कहते हैं। प्रियङ्गु का पाठ अधिकतर कइगु क्षुद्रधान्यों में आया है। बजार Prunus mahaleb एवं Aglara के किस्मों में बीजों का उपयोग प्रियङ्गु के नाम से किया जाता है। यह शीतल, तिक्त, पित्तनाशक, ज्वर, दाह एवं दौर्गन्ध्यहर माना जाता है।

गुण :- प्रियङ्गुः शीतला तिक्ता, दाहापित्तास्त्र दोषजित्।
ब्रान्तिभ्रन्तिज्वरकापहा, वक्ताताण्ड्यविनाशनी।। "रा.च."

संस्कृत साहित्य में प्रियङ्गुः क्षुद्रधान्यों में प्रायः प्रियङ्गु (कंगुधान्य) का उल्लेख है। किन्तु श्रृंगारी एवं प्रसाधनोपयुक्त उपयोगी वनस्पति है। इसमें मन्द, मधुर, सुरभि एवं व्रणप्रसाधन गुण विद्यमान हैं। इसलिये इसे लताप्रियङ्गु गंधप्रियङ्गु एवं श्यामा कहा गया है। महाकवि कालीदास ने प्रियंङ्गु का उल्लेख हेमन्त ऋतुक का वर्णन करते कालियक, कुंकुम आदि सुगन्धित द्रव्यों के साथ आलेपन हेतु उल्लेख किया है।

यथा - प्रिंयगु कालियक कुंकुमपादरक्तम्।
स्तनेषु गौरषु बिलासिनीभिः।।
आलिप्यते च ˙र मङ्गनाभिः।
मदालसाभि मृगनाभियुक्तम्।। "ऋ.सं."

प्रिये प्रिंयगुः प्रियविप्रयुक्ता।
विपाण्डुता याति विलासिनीभि।। "ऋ.स."

प्रिंयगुं वर्ण्य प्रसाधन सामग्री की उपयोगी बनस्पति है। बाल्मिकीय रामायण के किष्कन्धाकाण्ड में संग्रीव के राजभिषेक हेतु प्रिंयगुं का उल्लेख है। अतः प्राचीन भारत का प्रसिद्ध प्रसाधनिक द्रव्य है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत -लघु, अग्निमन्थ,
स्थानिक - टेकार, रैन,
लैटिन - ब्समतवकमदकतवद चीसवउपकपे स्ण

स्वरूप :- इसके बहुशाखीय गुल्म होते हैं। पत्तियाँ चौड़ी, लट्वाकार, तिर्यकायताकार, सवृंत एवं गोलदन्तुर होती हैं। पुष्प श्वेताभवर्ण के पत्रकोणीय, फल शुष्क होकर चार खण्डों मे विभक्त होते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग पंचाग का उपयोग जानबरों की प्रवाहिका एवं कृमि रोग में उपयोग करते हैं। इसे उत्तमावातघ्न मानते हैं।



आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- यह मधुर, तिक्त, कषाय, वीर्य-उष्ण, विपाक मधुर गुण, अग्निदोष, सारक पौष्ठिक है। वात-कफहर, गर्भाशय के रोग, मधुमेह नाशक। इसके अतिरिक्त यह पाण्डु, शोथ, सूतिका रोग, लघु अग्निमन्थ की दो किस्मों का उल्लेख किया है।

गुण :- तर्कारी कटु तिक्ता, तथोष्णा ऽःनिलपाण्डुजित्।
शोफ श्लेषमाद्यांविवन्धांश्चनाशयेत्।। "ध.नि."

योग :- दशमूलारिष्ठ, (सूतिकारोग) दशमूलअर्क।

द्रव्य नाम :- संथाली, गोखल, भटेस,
स्थानिक - कुलामारसल, भांट,
लैटिन - Clarodendrion infortunatum Gaertn.

स्वरूप :- भांट के ४ से ६ फीट ऊँचे गुल्म होते हैं। शाखायें धनरोमश, पत्तियाँ लट्वाकार, गन्धयुक्त, पुष्प श्वेत गुच्छों में एवं काण्डज क्रम में निकलते हैं। फल-नीलाभ वर्ण के होते हैं। इस क्षेत्र के सभी भागों में ये गुल्म पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- पंचाग क्वाथ का उपयोग त्वचा के विकारों में किया जाता है। यह कटु पौष्ठिक, कृमिघ्न एवं ज्वरघ्न है। यह मलेरिया एवं अतिसार में लाभदायक है। पत्रघन को गुड़ के साथ गोलियाँ तैयारकर सुखी खांसी में देते हैं। अरणी पंचाग से इसका भी सग्रह किया जाता है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - ब्रह्माणयष्ठिका,
स्थानिक - वामनहारी,
लैटिन - Clerodendron siphonantus Br.

स्वरूप - इसके गुल्मीय शाखीय पौधे होते हैं। शाखायें नालाकार, एकवर्षायु, पत्तियाँ तीन या पांच के क्रम में लम्बी प्रासवत्, रेखाकार, अभिःप्रासवत् एवं लहरदार तट वाली होते हैं। पुष्प श्वेताभ वर्ण के सुन्दर पत्रकांणीय गुच्छों में होते हैं। पलामू, रांची, चम्पारण एवं संथालपरगना क्षेत्र में यह पाया जाता है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग मूल का उपयोग कास-श्‍वास में करते हैं। कुछ क्षेत्रों में भारंगी नाम से इस वनस्पति का सग्रह किया जाता है। ब्राह्मणयाष्ठिका एवं भारंगी के मिलते जुलते गुण हैं। भारंगी के स्थान पर उपयोग किया जा सकता है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत, भारंगी,
स्थानिक - सरम, लूडर,
लैटिन - Clerodeneron serratum Spreng.



स्वरूप :- इसके बहुवर्षायु गुल्म होते हैं। मूलसतम्भ बहुवर्षायु काण्ड एक वर्षायु, पत्तियाँ आमने-सामने, अवृंत, रेखाकार, अभिलट्वाकार, आरावात् एवं दन्तुर होती हैं। पुष्प नीलाभ वर्ण के सुन्दर होते हैं। फल-अष्ठिल एवं मांसल होते हैं। इसके गुल्म सिंगभूमि, पूणिया, पलामू आदि क्षेत्रों में पाये जाते हैं।

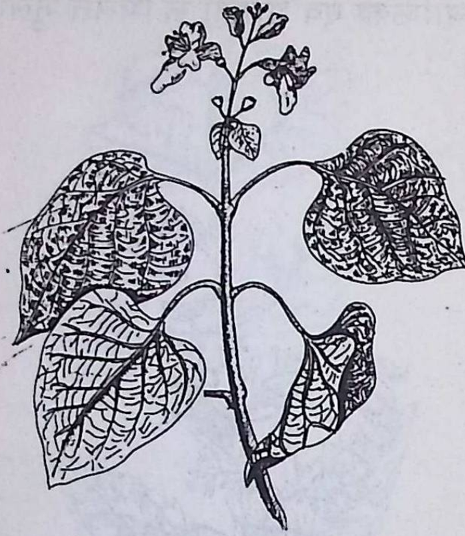
स्थानिक प्रयोग :- मूल क्वाथ का उपयोग ज्वरघ्न के रूप में प्रयोग करते हैं। आदिवासी लोग पंचाग क्वाथ का उपयोग श्वास एवं शोथघ्न के रूप में करते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- तिक्त, कटु, वीर्य-उष्ण, विपाक कटु, गुण दीपन एवं वात कफशामक, प्रतिश्याय, वातकफज्वर, कास, फुफ्सविकार, जलादर, गलगण्ड, आदि रोगों में उपयोगी हैं।

गुण :- भांर्गी स्यात्स्वरसे, तिक्ताचोष्णा, श्वासकफापहा।
गुल्मज्वरासृग्वातघ्नी, यक्षमाणं हन्तिपीनसम्।।
भांर्गी गर्दभशाकं च पद्मा, ब्राह्मणयष्ठिका।
अंगारवल्लीफंञ्जीच, सैव ब्राह्मासुवर्चला।। "ध.नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - गम्भारी,
स्थानिक - कासमर, गम्हार,
लैटिन - Gmelina arborea Roxb.

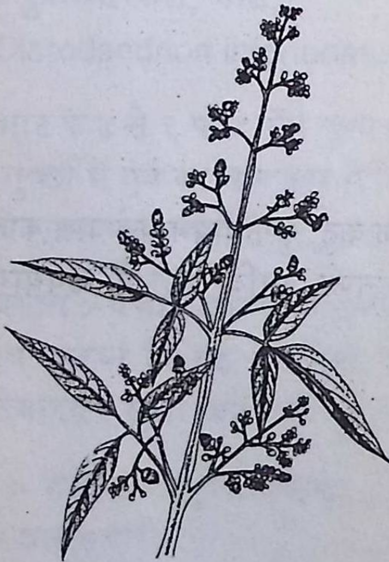
स्वरूप :- गम्भार के मध्यम ऊँचाई के वृक्ष होते हैं। पर्ण आमने-सामने सवृंत एवं तीक्ष्णाग्र होते हैं। पुष्प पीताभ वर्ण के फल गोल, मांसल पीतवर्ण के होते हैं। इसके वृक्ष इस क्षेत्र में सर्वत्र पाये जाते हैं।



आयर्वेदीय औषध उपयोग :- रस कटु, मधुर, तिक्त, कषाय, वीर्य-उष्ण, विपाक मधुर, गुण दीपन, भेदन मेध्य रसायन, त्रिदोषशमन रोगोपयोग तृष्णा, दाह, रक्तपित्त, ज्वर, मूत्रकृच्छ्र रक्तपित्त, शाथघ्न।

योग :- दशमूलारिष्ठ, दशमूलअर्क (सूतिका रोग)।

गुण :- काशमरी कटुकातिक्ता, गुरूष्णा कफशोफनुत्।
त्रिदोष विषदाहार्ति, ज्वरतृष्णारक्तदोषजित्।।
काश्मर्य कुसुमंबृष्य, बल्यं पित्तम्लनाशनम्।।
"रा.नि."



द्रव्य नाम :- संस्कृत - निर्गुण्डी,
स्थानिक - सिनुआर, सम्भालू, सुरसिंग,
लैटिन - Vitex negundo L.

स्वरूप :- सम्भालू के बड़े-बड़े गुल्म ६ से १२ फीट तक ऊँचे होते हैं। पत्तियाँ सदल ३ से ५ पत्रक प्रासवत् लम्बाग्र एवं दन्तुर होते हैं। पुष्प श्वताभ रंग के मञ्जरियों में खिलते हैं। इसके पौध प्रान्त सर्वत्र वाड़ी में नदियों के किनारे पाये जाते हैं। पत्र सुगन्धित होते हैं। इसकी अन्य जाति पाई जाती हैं। जिसे Vitextrifolia L. कहते हैं। पुष्प भेद से श्वेताभ, नीलाभ दो भेद हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग पंचाग का चिकित्सा में उपयोग करते हैं। शोथघ्न एव वातघ्न के रूप में भी प्रयोग किया जाता है।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- रस कटु, तिक्त, कषाय, वीर्य-उष्ण, विपाक मधुर, गुण स्वेदल, रूक्ष, वात-कफशामक, रोगोपयोग-वातसंस्थान, आमवात्, आमदोष एवं वात-व्याधियों में उपयोगी है।

निर्गुण्डीतैल (व्रणरोपक एवं शोथकः)

गुण :– निर्गुण्डी कटु तिक्तोश्णा, कृमिकुष्ठ रूजापहा।
वातश्लेष्म प्रशमनी, प्लीह गुल्मारूचीर्जयेत्।। "ध.नि."

यथा :– सिन्दूवारः श्वेतपुष्पः, सिन्दूकः सिन्दुवारकः।
नीलपुष्पः शीतसहो निर्गुण्डी नीलसिन्दूका।। "रा.नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - शेफलिका,
स्थानिक - सिमजंधा, मारा-काटा,
लैटिन - Vitex peduncularis wall.

स्वरूप :- इसके छोटे एवं मध्यम ऊँचाई के गुल्म होते हैं। शाखायें मृदुरोमिल, पत्तियाँ त्रिपत्रक एवं सदल होती हैं। पुष्प नीलाभ श्वेत मञ्जरी में खिलते हैं। संथालपरगना एवं छोटानागपुर में यह पाया जाता है। इसकी अन्य जाति भी इस क्षेत्र में पाई जाती हैं। इसे चिरईगाडी कहते हैं। इसके पुष्प भी श्वेत वर्ण में होते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- ब्लैकवाटर फीवर में इसकी पत्तियों का फांट पिलाया जाता है। विषमज्वर एवं पेत्तिक बुखार में इसके पत्तों का फांट आदिवासी देते हैं।

विशेष :- कुछ विद्वान स्थानिय नामों के आधार पर इसे शास्त्रीय काकजंघा मानते हैं। काकजंघा का जीर्णज्वर एवं विषमज्वरों में उपयोगी माना गया है। राजनिघन्टुकार ने शेफालिका, शुक्लाङ्गी आदि निर्गुण्डी की जातियों में उल्लेख किया है।

गुण :– शेफालिकान्या, निर्गुण्डी वनजानीलमंजरी।
शुक्ला अन्या श्वेतसुरसा, भूतकेशी च कथ्यते।।
शेफालिका तु सुवहा शुल्कांङ्गि, शीतमञ्जरी प्रोक्ता।। "रा.नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - बृ. अग्निमन्थ,
स्थानिक - गिनेरी, गनिमारी,
लैटिन - Premna latifolia Roxb.

स्वरूप :- इसके मध्यम आकार के वृक्ष होते हैं। पत्तियाँ दुगन्धयुक्त, प्रायः लट्वाकार, अखण्ड होती हैं। पुष्प मंञ्जरी में गन्धयुक्त होते हैं। पूणिया, चम्पारण, राँची आदि क्षेत्रों में इसके वृक्ष पाये जाते हैं। इसकी अन्य जाति उड़ीसा के सीमान्त क्षेत्रों में पाई जाति है। जिसे Premna integrifolia कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग छाल का उपयोग शोथव्रण एवं कफ विकारों में करते हैं।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - गेडिया गिरहबाज,
लैटिन - Premna herbacea Roxb.

स्वरूप :- इसके भौतिक काण्ड बहुवर्षायु एवं वायवीय शाखाये एक वर्षायु होती हैं। पत्तियाँ प्रायः जमीन के चारों ओर फैली रहती हैं। पत्र अवृंत अभिलट्वाकार, आरावत्, दन्तुर एवं लहरदार होते हैं। छोटानागपुर एवं संथालपरगना में सर्वत्र इसके पौध पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग शराब बनाने में इसका प्रयोग करते हैं। मूल गाठों को गीलहावृद्धि में उपयोग करते हैं। इसे उत्तम वातघ्न एवं शोथहर मानते हैं।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - जलपिप्पली,
स्थानिक - बुक्कनबूटी,
लैटिन - Lippia nodiflora Rich.

स्वरूप :- इसके प्रसरी क्षुप होते हैं। पत्तियाँ आमने-सामने, अभिलट्वाकार, आरावत्, दन्तुर एवं कुण्ठिताग्र होती है। पुष्प हरिताभ श्वेत, पत्र-कोणीय, मुण्डाकार ब्यूह युक्त होती हैं। फल पिप्पली सद्यश दिखाई देते हैं। छोटानागपुर एवं संथालपरगना के सभी नमदार स्थानों पर इसके पौध पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग मूत्रल एवं ज्वरघ्न के रूप में इसके पंचाग का उपयोग करते हैं। चरक सूत्रस्थान अध्याय २७ में जलपिप्पली का उल्लेख है।

गोक्षुरकुल - (ZYGOPHYLLACEAE)



द्रव्य नाम :- संस्कृत - गोक्षुर,
स्थानिक :- गोखुला,
लैटिन - Tribulus terrestris L.

स्वरूप :- यह एक प्रसिद्ध औषध द्रव्य है। क्षुप धन-रोमश एवं प्रसरणशील होता है।पुष्प-पीले, फल-रोमश एवं छोटे-छोटे कंटकोंयुक्त होते हैं। इस क्षेत्र में सड़कों के आस-पास सर्वत्र इसके पौध पाये जाते हैं। छोटा एवं बड़ा भेद से दो प्रकार का होता है।

स्थानिक प्रयोग :- फलचूर्ण का उपयोग मूत्रविकार एवं वृकशूल में करते हैं।

आयुर्वेदीय उपयोग :- मधुर, तिक्त, वीर्य-शीत, विपाक-मधुर, गुण-बल्य, दीपन, मूत्रल, त्रिदोषघ्न, रोगोपयोग, वस्तिरोग, मूत्रकृच्छ्र, पूयमेह, वातरोग, वीर्यक्षीणता, आदि रोगों में उपयोगी।

दशमूलक्वाथ (वातरोग)
गोक्षुरादिगुग्गुलू (मूत्ररोगाधिकार)।।

गुण :- गोक्षुरस्य तु मूलं स्यादुष्णा वातकफापहम्।
तत्फलं शीतलं स्वादु, बल्यंबृष्यंच मूत्रलम्।। "प्रिय.नि."

आद्रककुल - (ZINGBERACEAE)

द्रव्य नाम :- संस्कृत - कर्चूर
स्थानिक - कचूर,
लैटिन - Curcuma zedoaria Rosc.

स्वरूप :- कचूर के पौधे ३ से ४ फीट ऊँचे, पत्तियाँ लट्वाकार, लम्बाग्र एवं मध्य शिरा पर रंगीन धब्बों से युक्त होती हैं। कोणपुष्प रक्ताभ वर्ण के होते हैं। संथालपरगना एवं मानभूमि में इसके पौधे पाये जाते हैं। मूलकन्द एवं चिक्त्सिा में उपयोग किया जाता है।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- रस कटु, तिक्त, वीर्य-उष्ण, विपाक-कटु, गुण-दीपन, रूच्य, ग्राही, वात-कफशामक, रोगोपयोग-मुखरोग, अर्श, श्लेष्मलकास, अजीर्ण, गुल्म, सूतिकारोग, फुफ्फुस एवं महास्त्रोतस् के रोगों में उपयोगी। श्वेतप्रदर एवं पुयमेह में यह लाभदायक है।

गुण :- कर्चुरः कटु तिक्ताष्णों रूच्यों वातबलासजित्।
दीपनः प्लीहगुल्मार्शः, शमनः कुष्ठकासहाः।। "ध.नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - तवक्षीर,
स्थानिक - तिखूर,
लैटिन - Curcuma angustifolia Roxb.

स्वरूप :- तिखूर के भौमिककन्द बहुवर्षायु एवं एक वर्षायु होते हैं। पत्तियाँ प्रासवत्, अण्डाकार एवं लम्बाग्र होती हैं। पुष्पदण्ड बगल से निकलता है। मूलस्तम्भ शक्वाकार और काटने पर भीतर हलकापीला, तथा बाहर की ओर सफेद होता है। इस क्षेत्र में सर्वत्र यह वनस्पति पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोगों का कहना है कि तिरबुर में काफी स्टार्च होता है। इससे अरारोट निकलता है। यह पचने में हल्की, पौष्ठिक और ग्राही होती है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - आम्रहरिद्रा,

स्थानिक - आमाहल्दी,
लैटिन - Curcuma amada Roxb.

स्वरूप :- आमाहल्दी के पौधे २ फीट तक ऊँचे होते हैं। पत्तियाँ आयताकार, अण्डाकार, प्रासवत् एवं पत्र तट श्वेताभ वर्ण के होते हैं। पुष्प श्वेताभ-हरितवर्ण के होते हैं। मूलस्तम्भ को काटने पर आम्र जैसी गन्ध आती है।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- रस-अम्ल, वीर्य-शीत, विपाक-अम्ल, गुण-दीपन, लघु, सारक, त्रिदोषहर, रोगोपयोग-सर्पविष, शिरःशूल, उदरशूल, श्वास, हिक्का एवं कास में उपयोगी है। अभिधातज शोथ में अधिक उपयोगी माना जाता है।



द्रव्य नाम :- संस्कृत - हरिद्रा,
स्थानिक - हल्दी,
लैटिन - Curcuma Longa L.

स्वरूप :- हल्दी के २ से ३ फीट ऊँचे काण्ड होते हैं। इसके भौमिक काण्ड के पास से पुष्प निकलते हैं। मूलकन्द पीतवर्ण के होते हैं। इन क्षेत्रों में इसकी खेती की जाती है।

स्थानिक प्रयोग :- घरेलू चिकित्सा के मसालों में इसका प्रयोग किया जाता है।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- रस-कटुतिक्त, वीर्य-उष्ण, विपाक-कटु, दीपन, ग्राही, रूक्ष, वर्ण्य, कफ-पित्तहर। त्वचा एवं यकृत के रोगों में उपयोगी। कामला, पाण्डु, प्रमेह, कास, कृमि, कण्डू, अर्वुद आदि रोगों में उपयोगी है। एलर्जी में हल्दी उपयोगी है।

योग :- हरिद्राखण्ड - (शीतपित्त) में उपयोगी।

गुण :- हरिद्रा कटुतिक्तोष्णा, कफवातास्त्रकुष्ठनुत्।
मेहकण्डू वणांहन्ति, दमहचर्णाविधायनी।। "ध.नि."

हरिद्रा स्वरसे तिक्ता, रूक्षोष्णाकुष्ठविषनुत्।।

बाल्मिकीय रामायण के आयोध्याकाण्ड में श्री राम के राज्याभिषेकमें सर्दोषधि सुगन्धित औषध द्रव्यों के साथ हल्दी का उल्लेख मिलता है।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - केमुक, केमुक,
स्थानिक - काकेवा, केंऊ,
लैटिन - Costus specious Sm.

स्वरूप :- इसके अदरख सदृश कन्दवत् मूलस्तम्भ होते हैं। बायवीय पत्रयुक्त काण्ड २ से ६ फीट लम्बा, चक्रित तथा ठोस होते हैं। पत्तियाँ अण्डाकार, आयताकार एवं अधरतल पर रोमश होते हैं। पुष्प बड़े श्वेताभ वर्ण के होते हैं। रांची, पलामू तथा संथालपरगना के नम स्थानों पर इसके पौध पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी क्षेत्रों में मूलकन्दों का उपयोग गर्भस्त्रावकर योगों में किया जाता है।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- कटु, तिक्त, लघु, ग्राही, दीपन, पाचन, कफ-पित्तघ्न, हृद्य, ज्वर, कुष्ठ-कास एवं प्रमेहनाशक।

गुण :- केम्बुंक कटुकंपाके, तिक्तं ग्राही हिमं लघुः।
दीपन पाचन हृद्यं, कफपित्त ज्वरापहम्।
कुष्ठ कास प्रमेहास्त्र, नाशन वातालं कटुः।। "रा.नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - कुलञ्जन,
स्थानिक - टारो,
लैटिन - Alpinia galanga Sw.

स्वरूप :- यह भौमिक काण्ड वाली वनस्पति है। वायवीय काण्ड ३ से ५ फीट तक ऊँचे पाये जाते हैं। पत्तियाँ आयताकार, प्रासवत् एवं चिकनी होती हैं। पुष्पदल हरिताभ श्वेत होते हैं। फल रक्ताभ वर्ण के होते हैं। छोटानागपुर, दुआर, तराई तथा पूणियां में इसके पौध कहीं-कहीं पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी मूल का उपयोग गले के विकारों में करते हैं, एवं कतिपय स्थानों में इसे वच के स्थान पर प्रयोग किया जाता है।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- रस कटु, वीर्य-उष्ण, गुण-तीक्ष्ण, दीपन, पाचन, रूच्य, उत्तेजक, कफघ्न, कण्ठरोग, मूखरोग, अमाश्यरोग एवं कास में उपयोगी।

गुण :- कुलंञ्जनों गन्धमूलश्च, तीक्ष्णमूलः कुलंञ्जनः।
कुलंजः कटुतिक्ताष्णों, दीपनों मुखदोषनुत्।। "रा.नि."

द्रव्य नाम :- संस्कृत - आद्रक,



स्थानिक - आदी,
लैटिन - Zingiber officinale Rase.

स्वरूप :- कन्दबहुवर्षायु, वायवीय काण्ड एकवर्षायु होता है। पत्र आयताकार एवं प्रासवत् होते हैं। पुष्प-कोणपुष्पक, श्वेताभ वर्ण के होते हैं। अदरक की भी प्रायः इन क्षेत्रों में खेती की जाती है। विशेष विधि से सुखाई गई अदरक को सोंठ कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- अदरक का घरेलू चिकित्सा एवं मसालों में उपयोग किया जाता है।

आयुर्वेदीय उपयोग :- रस-कटु, दीपन, स्निग्ध, स्वर्य, वातकफशामक, रोगोपयोग-अतिसार, उदरशूल, कास, बिवन्ध, आनाह, जलोदर, शोथ, बमन, कामला आदि रोगों में उपयोगी है। महास्त्रोतस् संस्थान में कारगर है।

योग :- सौभाग्य शुण्ठी (सूतिकारोग) आद्रिकावलेह (श्वास-कास)।

गुण :- कटुष्णा माद्रकं हृद्यं, विपाके शीतलं लघु।
दीपनं रूचिदं शोफं, कफ कण्ठाममापहम् ।।
कफानिल हरं स्वर्य, विवन्धानाह शूलजित्।
कटुष्णा रोचनंबृष्यं, हृद्यं चैव, आद्रक स्मृतम्।। "रा.नि."
शुण्ठी कटुष्णा स्निग्धाच, कफशोफानिलापहाः।। "ध.नि."

द्रव्य नाम :- स्थानिक - जंगली अदराव, पाडो, उरांव,
लैटिन - Zingifer zerumfet Smith.

स्वरूप :- इसके पत्रक युक्त काण्ड ३ से ४ फीट लम्बे, घेरा युक्त, अण्डाकार होते हैं। पत्तियाँ दो कतारों में अण्डाकार एव प्रासवत् होती हैं। पुष्प हलके पीले रंग के होते हैं। पलामू आदि स्थानों पर इसकी खेती की जाती है।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी लोग कन्द का उपयोग अदरक की तरह करते हैं।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - बड़ानीलकण्ठ, जंगीह अदरख,
लैटिन - Zingiber casumunar Roxb.

स्वरूप - इसके ३ से ४ फीट तक ऊँचे पौधे होते हैं। पत्तियाँ प्रासवत्, आयताकार, एव रेखाकार हाती हैं। कन्द भीतर से गहरा हरा रंग का होता है। गन्ध को तोडने पर गन्ध होती है। इसकी अन्य जाति पलामू एवं सिंगभूमि में पाई जाती हैं। जिसे छोटा नीलकण्ठ कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी मूल चूर्ण का उपयोग उदरशूल, आनाह एवे अरोचक में करते हैं। इस वनस्पति पर शोध करना चाहिये।

नग्नबीजपापय - (GYMNOSPERMS)

चीड़कुल - (Pinaceae)

द्रव्य नाम :- संस्कृत, सरल,
हिन्दी - चीड़,

स्वरूप - चीड़ के मध्यम आकार के वृक्ष होते हैं। पर्ण सूच्याकार ३ से ४ तक की संख्या में एक साथ निकलती हैं। पुराने वृक्षों को छिलकर निर्यास निकलता है। जिसे विरोजा कहते हैं। चीड़ के वृक्ष चम्पारण, पूर्णिया एवं सोमेश्वर की पहाड़ियों पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग :- आदिवासी गन्धविरोजा का उपयोग स्थानिक चिकित्सा में करते हैं।

आयुर्वेदीय औषध उपयोग :- कटु, तिक्त, उष्ण, कफवात्-नाशक, त्वग्-दोष, कण्डू, व्रण रोपक एवं कोष्ठशुद्धिकर हैं।

गुण :- सरलः कटुतिक्तोष्णाः कफवात् विनाशनः।
त्वग् दोष शोफ कण्डूति, ब्रणघ्नः कोष्ठशुद्धिदः।। "ध.नि."

अपुष्प कुल की वनस्पतियाँ भी इस क्षेत्र में पाई जाती हैं। इस समुदाय के पर्णाङ्ग समुदाय कहते हैं। इनमें निम्न उपयोगी वनस्पतियों के इस प्रकार से हैं।

द्रव्य नाम :- संस्कृत - हंसपदी,
स्थानिक - कफना,
लैटिन - Adiartum lunulatum Burm.

स्थानिक प्रयोग :- यह अपुष्प जाति की वनस्पति है। स्थानिक लोग पंचाग का प्रयोग कण्ठविकारों में करते हैं।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - मयूरशिखा, मारोजूटी।
लैटिन - Actinopteris radiata Bed.

बरसात के दिनों में पहाड़ियों पर यह वनस्पति पाई जाती है। इसकी पत्तियाँ तालपत्र सदृश होती हैं। कतिपय चिकित्सक पंचाग का उपयोग मयूरशिखा के नाम से करते हैं। इसी प्रकार इस क्षेत्र में हथ्याजोड़ी किस्में पाई जाती हैं। यह ताजी हरी जमीन पर फैली रहती है। उखाड कर इसे पानी में डाल दिया जाये तो यह बहुत फैल जाती है। आदिवासी लोग सूखरोग, मिर्गी एवं अत्यार्तव में इस बूटी का उपयोग करते हैं। चिलम पर इस बूटी का धुआ लेने से मादक प्रभाव होता है। छोटानागपुर एवं संथालपरगना में इसकी जातियाँ पाई जाती हैं। कुछ लोग इस जाति को हत्थाजोड़ा मानते हैं। बाजार में आदिवासी वैद्य संजीवनी नाम से इस बूटी का विक्रय करते हैं।

द्रव्य नाम :- स्थानिक - झांखर, कारीझाक,
लैटिन - Ligodium (Fern)

इसके वर्ग में कई जातियाँ इन क्षेत्रों में पाई जाती हैं। जो कि वृक्षों पर आरोही क्रम में भी उगती हैं। पतली जड़ें गुच्छों में एवं रोमश होती हैं। आदिवासी लोग इन जातियों का घरेलू चिकित्सा में भिन्न-भिन्न रूप से उपयोग करते हैं। आदिवासी ज्वरघ्न विषघ्न बिच्छूदंश पर एवं भूतवाधाहर के रूप में प्रयोग करते हैं। रूद्रजटा के नाम से यह वनस्पति हो सकती है। आदिवासी क्षेत्र के लोग अपुष्प जाति इन वनस्पतियों का अलग-अलग नामों से उपयोग करते हैं। इस वर्ग में परिवार नियोजन में कतिपय जातियाँ उपलब्ध हैं। कुछ किस्मों का शाक बनाकर खाया जाता है जो कि निविर्ष होती है। प्रायः अधिकतर जातियाँ विषेली होती हैं। इन पर अनुसंधान अपेक्षित है। सिंगभूमि में गिडंगुआ नामक जलीय वनस्पति पाई जाती है। ग्रामीण लोग इसका शाक बनाकर खाते हैं।

